दूब जनम आयी

श्री शिवसागर मिश्र के नाम से हिन्दी का प्रत्येक प्रेमी परिचित है। 'दूब जनम आयी' उनका नवीनतम उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो साधारण होते हुए भी महान् है, प्रेमी होते हुए भी संन्यासी है, चाकर होते हुए भी स्वाभिमानी है और दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से दूर है! लेकिन, 'दूब जनम आयी' एक व्यक्ति की ही नहीं, एक बदलती हुई व्यवस्था की भी कहानी है; स्वतन्त्रता के बाद के भारतीय ग्राम्य परिवर्तन, प्रत्यावर्तन और सामाजिक घात-प्रतिघात की कहानी।

उपन्यास के पात्र सजीव और दिलचस्प हैं, कथानक विद्युन्मय है, घटनाएँ सहज और सजी हुई हैं, भाषा प्रवाहमय और शैली तादात्म्य-भाव स्थापित करने में समर्थ!

श्री शिवसागर मिश्र ने भारतीय ग्राम्य जीवन का यह दारुण चित्र प्रस्तुत किया है, जो यथार्थ होते हुए भी अनूठा और अज्ञात है।

डूब जनम आयो

लोकप्रिय, सुन्दर तथा रोचक उपन्यास

जल-समाधि गोविंदवल्लभ पंत ४.००
पर्णा गोविंदवल्लभ पंत ४.००
मैत्रेय गोविंदवल्लभ पंत ६.५०
तारों के सपने गोविंदवल्लभ पंत ६.५०
फॉरगेट मी नॉट ,, ,, ३.५०
डूबते मस्तूल नरेश मेहता ४.५०
युगपुरुष राम अक्षयकुमार जैन ५.००
काली लड़की रजनी पनिकर ३.००
थानेदार अमरनाथ मल्होत्रा ५.५०
समाधान रामावतार त्यागी २.००
बुझते दीप दयाशंकर मिश्र ३.००
परेड-ग्राउण्ड हंसराज रहबर १.५०
अपराजिता चतुरसेन शास्त्री २.००
विद्रूप पृथ्वीनाथ शर्मा ३.००
हरिजन सन्तोष नौटियाल ४.००
तीस दिन सन्तोष नौटियाल ३.५०
जर्जर हथौड़े बरुआ ६.००
हृदय-मंथन सीताचरण दीक्षित ५.००
शराबी पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ३.५०
जी-जी-जी पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ३.००
बीते दिन कृष्णमोहन राजवंशी १.००
इन्सानियत फिर भी जीवित है
करुणेन्द्र ३.००
भोर की किरणें अरुण २.२५
बहके कदम रामकृष्ण २.२५
अधखिली (सचित्र) देवेशदास ४.००
निशिकान्त विष्णु प्रभाकर ५.५०
आत्मदान विजयकुमार पुजारी ३.००
पुनरुद्धार कंचनलता सब्बरवाल ३.५०
मानव की परख देवीदयाल सेन ३.००

पाँच बेल देवदूत विद्यार्थी :
भारती विद्यार्थी ५.००
अधूरी तस्वीर बसन्त प्रभा ३.००
अशू अमृता प्रीतम ३.००
डॉक्टर देव अमृता प्रीतम २.००
पिंजर अमृता प्रीतम २.००
नीड़ से आगे मोहन चोपड़ा ३.००
धरती की पीर यादवेन्द्र 'चन्द्र' ४.००
शैलवधू यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ३.००
बोरीवली से बोरीबन्दर तक
शैलेश मटियानी ३.५०
कबूतरखाना शैलेश मटियानी ३.५०
दूब जनम आयी शिवसागर मिश्र ४.००
पत्ते गिर पड़े शिवसागर मिश्र ३.५०
पथ की खोज डॉ० देवराज ४.५०
झुम्मन राजाराम शास्त्री २.२५
बारक-छाया लक्ष्मण त्रिपाठी २.००
आखिरी चट्टान तक मोहन राकेश ३.००
कुलीन घराना तुर्गनेव ३.००
बाप-बेटे तुर्गनेव ३.५०
बलि का बकरा मन्मथनाथ गुप्त १.५०
सिद्धार्थ हरमन हेस ३.००
चोर की प्रेमिका आर० कृष्णमूर्ति ४.५०
सौंदर्य की रेखाएँ ऑस्कर वाइल्ड ५.००
दो सेर धान
तकषी शिवशंकर पिल्लै २.००
चुनौती तकषी शिवशंकर पिल्लै २.५०
हमराही
मारजौरी किनन ऐलिंग्स २.००
पाप की गली डोरिन मैनरस ३.००

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

दूब जनम आयी

शिवसागर मिश्र



आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

DOOB JANAM AAI

a novel

by

Shiva Sagar Mishra

Rs. 4.00

प्रकाशक
रामलाल पुरी, संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य	:	चार रुपए
प्रथम संस्करण	:	१ ९ ६ ०
आवरण	:	योगेन्द्र कुमार लल्ला
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

प्रकाशकीय

श्री शिवसागर मिश्र के नाम से हिन्दी का प्रत्येक प्रेमी परिचित है। 'दूब जनम आयी' उनका नवीनतम उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक एक ऐसा व्यक्ति है जो साधारण होते हुए भी महान् है, प्रेमी होते हुए भी संन्यासी है, चाकर होते हुए भी स्वाभिमानी है और दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से दूर है ! लेकिन, 'दूब जनम आयी' एक व्यक्ति की ही नहीं, एक बदलती हुई व्यवस्था की भी कहानी है; स्वतन्त्रता के बाद के भारतीय ग्राम्य परिवर्तन, प्रत्यावर्तन और सामाजिक घात-प्रतिघात की कहानी।

स्वतन्त्रता का असर देहात पर भी पड़ा है। अभी तो समुद्र मन्थन हो रहा है। फेन, बुद्बुदे, विष, वारुणी, पहले यही सब निकलेंगे। 'दूब जनम आयी' में विष, वारुणी और फेन के साथ-साथ अखण्ड आस्था का प्रच्छन्न सन्देश भी है। संघर्ष, आसक्ति और परिस्थिति की प्रचण्ड लहरों में भी आशा-दीप प्रज्ज्वलित रहता है; मानवोचित धर्म और मर्यादा की प्रतिष्ठा होती है।

उपन्यास के पात्र साधारण, सजीव और दिलचस्प हैं, कथानक विद्युन्मय है, घटनाएँ सहज और सजी हुई हैं, भाषा प्रवाहमय और शैली तादात्म्य-भाव स्थापित करने में समर्थ !

शिवसागर मिश्र ने भारतीय ग्राम्य जीवन का वह दारुण चित्र प्रस्तुत किया है, जो यथार्थ होते हुए भी अनूठा और अज्ञात है और इसे जानना-समझना उतना ही आवश्यक है जितना आवश्यक भोजन-पानी। कारण—देश की समृद्धि, प्रगति और विकास इन्हीं ग्राम्य देवताओं पर निर्भर करते हैं।

यह उपन्यास 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित हो चुका है और हमें खुशी है कि पाठकों ने इसका अभूतपूर्व स्वागत किया। इस उपन्यास के सम्बन्ध में देश के विभिन्न भागों से आने वाले पत्र लेखक की सफलता को सिद्ध करते हैं।

दो शब्द

परिवर्तन का परिणाम प्रायः कल्याणकारी ही होता है। स्वतन्त्रता के उपरान्त, देश में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए और हो रहे हैं। जमींदारी खत्म हो गई, लाल पगड़ी का भय जाता रहा, समता के भाव जागृत हो उठे, अधिकार की चेतना मचलने लगी और कल-कारखाने, बाँध, जलाशय आदि का निर्माण होने लगा।

किन्तु, विरोधाभास देखिए—

आज, विकेन्द्रीकरण के युग में भी कुछ स्थान, कुछ व्यक्ति और कुछ विचार ही गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र बनकर रह गये हैं।

लोग वे ही हैं, दृष्टिकोण ज्यों-का-त्यों है, संस्कार अपनी जिद पर अड़ा है। रंग बदल गया, ढंग वही है। नीति बदल गयी, रीति वही है।

प्रगति का रथ अभी सामने से गुज़र ही रहा है। धूल के बगूले उठ रहे हैं। कुछ दिखायी नहीं देता। फिर कैसे कहा जाय कि रथ परम है या उत्तम। कैसे देखा जाय कि रथ-चक्र, ईषादंड, अक्ष, युग, कूबर-आदि की लकड़ी गाँठ रहित है या पक्की, ठोस और गाभे की।

तथ्य के नाम पर धूल, गुबारे, बगूले हमारे-आपके सामने हैं। ढंग, रीति, संस्कार और दृष्टिकोण से सत्य परिलक्षित हो रहा है।

किन्तु, निराश होने की जरूरत नहीं है। संघर्ष, उत्पीड़न और परिवर्तन ही विकासशील जीवन का उद्‌गम-स्थल है।

दूब को हमारे यहाँ बड़ा ही पवित्र और अक्षर माना गया है। कारण—सदा पैरों तले रौंदी जाने पर भी शस्य-श्यामल बनी रहती है। गीली जमीन हो या चट्टान की छाती, दीवार हो या दरार—जहाँ मौका मिला—जीवनदायिनी आशा का संदेश लेकर उद्‌भासित हो उठती है। इसे न आँधी का डर, न तूफान का भय!

प्रस्तुत पुस्तक में, मैंने, उपरोक्त विचारों को गाँव की पृष्ठ-भूमि में

स्वरूप प्रदान करने की धृष्टता की है। गाँव का आर्थिक ढाँचा छिन्न-भिन्न हो चुका है। वहाँ की पुरानी सामाजिक मान्यताएँ 'अण्डरग्राउण्ड' होकर अत्यधिक घातक बन उठी हैं। किन्तु, हम शहर वाले, अपनी रंगीनी में डूबे हुए, विकासशील सरल और स्वच्छ गाँव का काल्पनिक स्वरूप देख रहे हैं। कदाचित्, पूरी पुस्तक पढ़कर आप भी मुझसे सहमत हो जायँ कि वास्तविकता कुछ और है, जरूरत कुछ और है! पहले ही इतनी देर हो चुकी है कि शहर से गाँव आने वाली राह पर दूब जनम आयी है।

नई दिल्ली,
शिवरात्रि, १९६०

—*शिवसागर मिश्र*

प्रमुख पात्र

जगनारायण (जग्गू) : सुलझे हुए मस्तिष्क का निर्भय, उदार और संवेदनशील आदमी; दुनिया और दुनियाबी बातों से अलग-थलग रहकर तीस-बत्तीस वर्षों तक निहंग का जीवनयापन करता है; बाप से, विरासत में, नाममात्र की जमीन और रेलवे-गुमटी पर चाकरी मिलती है, रेल की पटरी जैसी नीरस और अछोर जिन्दगी जीता चला जाता है कि प्रौढ़ावस्था के द्वार पर पहुँचते ही अचानक भयंकर भूचाल जैसी घटनाएँ घटित होकर उसके अस्तित्व को झकझोर डालती हैं; प्रेम और प्रतिशोध की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठती है, जीवन का क्रम बदल जाता है, दुनिया किंचित् रंगीन हो उठती है; क्रूरता, कुरूपता और कर्कशता मुखरित हो उठती है; किन्तु, जग्गू जिस ईमानदारी के धरातल पर खड़ा है वहाँ विफलताओं के झाड़-झंखाड़ उगे हुए हैं अतएव······

बिसेसरसिंह : क्रूरता के अवतार हैं किन्तु, मुखमंडल पर करुणा का सागर उमड़ता होता है; उनकी नसों में रक्त की जगह गरल प्रवाहित होता है किन्तु, जबान से अमृत की धार बरसती होती है; जमींदारी छिन जाने से चोट खाए साँप की तरह ऐंठ उठते हैं किन्तु, उनकी ऐंठन की मोहकता देखने वालों के मन में उदारता का भ्रम उत्पन्न कर देती है। बिसेसरसिंह समर्थ हैं, सजग हैं, सफल हैं, किन्तु पतित हैं। रुपये की भूख

उन्हें रेल के डिब्बे काटने की प्रेरणा देती है और तब......

राघव : देहाती नेता है जो हमेशा ही अपने दुर्बल कन्धों पर देश के उद्धार की चिन्ता उठाये फिरता है; अनपढ़ है किन्तु, उसका चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोचना-समझना—सब कुछ भाषण-शैली में ही सम्पन्न होता है। अपनी आदतों के चलते वह बिसेसरसिंह से जा टकराता है। नतीजा यह होता है कि बेचारा......

मुनिदेव : जग्गू का बचपन का साथी; व्यवहारकुशल किन्तु, गरीब दर्जी; दुःख को दिनचर्या का अभिन्न अंग समझकर अपने काम में डूबा रहता है; समय को पहचानता है; दर्द महसूस करता है किन्तु, असमर्थ होने के कारण......

रामपाल : पढ़ा-लिखा ईमानदार अफसर; लगन के साथ काम शुरू करता है; आरोप-प्रत्यारोप के जाल में फँसकर धीरज बनाये रखता है किन्तु, जिस 'भारत' में द्रोणाचार्य जैसे शत्रु हों वहाँ, युधिष्ठिर का ईमान भी डोल जाता है। बिसेसरसिंह के जाल में पड़कर रामपाल की ईमानदारी और उत्साह......

अनुराधा : विधवा; त्याग, प्रेम और धीरज की साक्षात् प्रतिमा; संसार-सागर की उद्दाम लहरों पर भटकने वाली परवश तिनका। बेचारी, प्रेम की सहज धारा में बह जाती है; जग्गू को वह बचपन से देखती आयी है—जन्म-जन्मान्तर से देखती आयी है किन्तु, उँगलियों और भवों के बीच से गुज़रने वाली विधवा को सिर झुकाकर चलना होता है अन्यथा......

शारदा : पढ़ी-लिखी, सजग-चंचल होकर भी भोली-भाली तरुणी; संसार को भी सरल-स्वच्छ समझती है; भानुप्रताप सरीखे अहंकारी, धूर्त्त और निकम्मे नौ-जवान के चक्कर में पड़कर, माँ-बाप के घर से निकल भागती है। अंजाम वही होता है जो······

१

रात के सन्नाटे में, रेलवे लाइन के दोनों ओर घनीभूत अंधकार, अपनी व्यापकता के अहंकार में जड़ीभूत हो रहा था। अभी-अभी ढाई बजे की गाड़ी पास हुई थी।

सुबह जो मेंह बरसना शुरू हुआ, सो दो घंटे हुए, थमा था। अजीब समां था—साँप की आँखों जैसा मोहक, सन्नाटे को मुखरित करती हुई मेंढ़कों की टर्र-टों-टर्र-टों, दूर पर बाढ़ की जवानी में चूर बूढ़ी गंडक की हरहराहट, छपाक से पानी में गिरते-धँसते कँगार, पास ही में—ऊपर, घने बट-वृक्ष के पत्तों में लुक-छिप करती हुई शैतान की आँखों जैसी सिगनल की दो लाल-लाल बत्तियाँ, और कभी-कभी, अंधकार को शत-सहस्र खंडों में छिन्न-भिन्न करती हुई क्रुद्ध बिजली की कौंध, वातावरण में नमी, शरीर को नमक की तरह गला देनेवाली ऊमस और सबसे बीभत्स बात यह कि जग्गू को यह सब देखना-सुनना पड़ रहा था। अभी पूरब जानेवाली मालगाड़ी पास होने को थी। बीस साल से वह इस गुमटी पर नौकर था। लाइन के दोनों ओर फाटक लगा देना और गाड़ी पास होने पर फाटक खोल देना—बस यही काम वह बीस साल से करता चला आ रहा था। कभी कोई चूक नहीं हुई, कभी कोई स्वर्ग नहीं उतरा—बस एक जैसा सीधा-सादा जीवन चलता रहा, जैसे पूरब में सूरज का उगना, पश्चिम में डूब जाना।

जग्गू ग़ौर से सिगनल की बत्तियों को देख रहा था। पहले उसका बाप इसी गुमटी पर नौकर था। जग्गू जब छोटा था, बड़े कौतूहल से इन बत्तियों को देखा करता। रात के अंधेरे में लाल बत्तियाँ अजीब लगतीं—भयानक! डरावनी!! और वह चाह कर भी आँखें नहीं बन्द कर पाता। भय से उसके रोंगटे खड़े हो जाते, देह सिहर उठती, फिर भी वह देखता ही रहता। उसे

लगता जैसे उसने देखना बंद करके सिर घुमाया नहीं कि शैतान की लाल लाल आँखें उसके सिर के पीछे चुभीं नहीं। ये बचपन के टूटे-बिखरे अनुभव थे। अब वह प्रौढ़ था। बत्तीस-तैंतीस साल का हट्टा-कट्टा स्वस्थ गेहुएँ रंग का खूबसूरत निर्भय आदमी। डर उससे कोसों दूर, भ्रम, शंका और बेईमानी की माया से परे, वह अकेला ही गुमटी में जीवन व्यतीत कर रहा था—जीवन को बिना समझे, वृत्तियों को बिना अनुभव किये, अनुराग-विराग की अनुभूति से अछूता।

शैतान की एक आँख हरी हो गयी। दूर पर कुत्ते भूँकने लगे, हवा जरा तेज बहने लगी। ऊमस का पर्दा किंचित् लहरा उठा। बिजली कौंधी तो जग्गू ने देखा—आकाश के जमे बादल फट चले थे। वह खाट पर उठकर बैठ गया। फेंट से सुर्ती निकालकर बायें हाथ की हथेली पर सँजोने लगा। पास ही के गाँव देसौरा में चौकीदार की ललकार अंधकार से टकरा उठी—जंगले रहिह हो ऽऽऽऽऽ···! और जग्गू ने सुर्ती मलकर चुटकी से होठों में दबा लिया। चारों ओर पूर्ववत सन्नाटा छाया रहा! उसने सड़क पर के फाटक बन्द किये क्योंकि पश्चिम में इंजन की रोशनी चमक उठी थी।

जग्गू जब पाँच साल का था, उसकी माँ मर गयी और जब वह उम्र की बारहवीं सीढ़ी पर पहुँचा, उसके पिता भी चल बसे। दोमंज़िले मकान में रहनेवाला आदमी, रोज ही सीढ़ियाँ चढ़ने से नवीनता के आनन्द का अनुभव नहीं करता। जग्गू एक जगह रहता हुआ, एक तरह का जीवन-यापन करता हुआ तेरह वर्ष का हो गया लेकिन उसके मन में किसी नवीनता के लिए न तो कभी आनन्द जगा और न सदा-सर्वदा से गड़ी हुई रेल की पटरी की प्राचीनता के लिए दुःख। जीवन में उसने एक ही स्वप्न देखा था। उसके घर के पास ही गुरुजी का घर था। गुरुजी की लड़की अनुराधा बहुत ही चंचल, नटखट और खूबसूरत थी। वह जग्गू को देखते ही ताली बजा-बजाकर चिल्ला उठती—'पहलवान!' और जग्गू उसे पकड़ने दौड़ता, कभी-कभी पकड़कर पीट भी देता। अनुराधा रोती हुई भाग जाती। लेकिन फिर दूसरे दिन ही वह उछलती-कूदती आ धमकती। जग्गू खुश हो जाता। बस,

सरसता के नाम पर यही एक अध्याय उसके जीवन में 'ओयसिस' की तरह झलमला उठता। शेष सब निस्सार था ! फीका था !

जग्गू के पिता महीनों बीमार रहे। जग्गू उसकी देखभाल भी करता और गाड़ी पास होते समय, हरी झंडी खोलकर बन्द फाटक के आगे खड़ा होकर ड्यूटी भी बजाया करता। खट्-खटाक, खट्-खटाक-खट् करती हर-हराती हुई गाड़ी पास हो जाती। जग्गू झंडी लपेटकर गुमटी के मोखे में खोंस देता और फिर अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा में जुट जाता। और इस तरह महीनों बाद, जग्गू का पिता बीमारी से अच्छा होते-होते मौत की गोद में जा गिरा। जग्गू अवाक्, किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। गाँववाले आये। जग्गू ने बिना कुछ सोचे-समझे, चुपचाप, सब काम किया। वह जाति का भूमिहार था। उसका पूरा नाम था जगनारायण चौधरी। इसलिए पुरोहितों, सम्बन्धियों और समाज की खातिरदारी में उसे पिता की सारी अर्जित पूँजी लगा देनी पड़ी, यहाँ तक कि ऊपर से पाँच सौ रुपये का कर्ज भी चढ़ गया। इज्जत बचाने की ही बात नहीं थी, पिता को अंतिम सम्मान देने की विषादपूर्ण इच्छा भी जग्गू में जागृत हो चुकी थी।

जग्गू ने चुपचाप सभी सामाजिक नियमों-उपनियमों का पालन किया, दान-दक्षिणा दी, सम्बन्धियों को सामर्थ्य भर धन-वस्त्र देकर विदा किया और जब सब शेष हो गया, जग्गू भी अपने खपरैल घर को सदा के लिए प्रणाम कर गुमटी में आकर रहने लगा। तब से, अपने घर में रहने के ख्याल से वह लौट कर कभी नहीं गया। हाँ, हर दीवाली को वह अपना घर साफ करता, रात में वहाँ दिये जलाता और नौ बजे की गाड़ी पास करने के समय, घर में ताला लगाकर, गुमटी पर चला जाता। उसके घर के तीन ओर उसकी जमीन थी—कुल साढ़े तीन बीघा। सो अपनी मेहनत के बल पर, उसने एक साल में ही, जमीन की उपज से पाँच सौ का कर्ज सधा दिया। और तब से वह बेफिक्री की जिन्दगी बिताता हुआ, जी रहा था। गाँववालों ने जग्गू को विवाह के बन्धन में बाँधने की काफी कोशिश की। कुछ दिन तक लड़की वाले भी उसे परेशान करते रहे, लेकिन जग्गू की चुप्पी और दृढ़ता के सामने

सभी हार मान गये और जग्गू अपनी जिन्दगी जीता रहा। जिन्दगी—रेल की पटरी जैसी नीरस, रूपहीन, पुरातन और अछोर !

पश्चिम की ओर रुख किये जग्गू खड़ा था। लगभग पाँच मिनट से माल-गाड़ी के इंजिन की रोशनी ज्यों की त्यों दीख रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मालगाड़ी खड़ी क्यों है। जग्गू कुछ तय नहीं कर पा रहा था। वह एक टक इंजिन की रोशनी को देख रहा था कि पीछे से खटका हुआ। उसने घूमकर देखा—करीब पच्चीस कदम की दूरी पर दो मानव मूर्त्तियाँ चली आ रही थीं। जग्गू को अन्धकार में कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ा कि संयोगवश गहरी बिजली चमक उठी। जग्गू ने देखा—आगन्तुकों में एक पुरुष और दूसरी नारी थी। दोनों मूर्त्तियाँ जग्गू के पास आकर रुक गयीं। पुरुष ने, थोड़ा हकलाते हुए, अशुद्ध हिन्दी में पूछा—"यहाँ एक-दो रात ठहरने के लिए कहीं जगह मिलेगी ?"

नारी अलग खड़ी थी। जग्गू ने अन्धकार में उसे देखने की कोशिश की। लेकिन उसके हाथ कुछ लगा नहीं। उसने नम्रता से पूछा—

"आप लोग कहाँ के रहनेवाले हैं ?"

"राजस्थान के।" पुरुष का संक्षिप्त उत्तर था।

"देखिए, पास ही में बिसेसरसिंह का घर है। उन्हीं के दालान पर चले जाइए। बहुत अच्छे आदमी हैं।"

"लेकिन, इतनी रात को हम लोग उसको कहाँ मिलेगा ? यहीं इस गुमटी में रात भर रहने दीजिये तो बड़ी मेहरबानी होगी।" पुरुष ने बड़ी दीनता से कहा। दूर पर वह स्त्री सिर नीचा किये खड़ी थी। जग्गू ने जरा सोचते हुए कहा, "गुमटी में ?……यहाँ तो बहुत कम जगह है।" जग्गू ने जमीन की तरफ देखा और फिर वह अचानक ही बोल उठा—"अच्छा, मेरे साथ आइये।" यह कहकर जग्गू गुमटी के भीतर से सरकारी हाथबत्ती उठा लाया जिसकी एक तरफ से ही गोल मद्धिम रोशनी निकलती थी और अपने घर की ओर चल पड़ा। दोनों आगन्तुक उसके पीछे हो लिये। चार-पाँच मिनट में ही जग्गू अपने घर पहुँच गया। फेंट से उसने चाभी निकाली, दर-

वाज़ा खोला और आगन्तुकों को राह दिखाते हुए कहा—"ज़रा बच कर आइएगा, बरामदे का छप्पर नीचा है—हाँ, ठीक है—नीचे उतर जाइए।······यह रही कोठरी······।" नारी बरामदे पर ही खड़ी थी। जग्गू ने पुरुष से सरल भाव से पूछा—

"वे······आपकी पत्नी हैं ?"

"जी नहीं, मैं उनका नौकर हूँ।"

जग्गू क्षण भर कौतूहल और सम्मान से चुप रह गया। अपनी भूल सुधारने के ख्याल से उसने जल्दी से कहा—

"तो इन्हें इस कोठरी में ठहरा दीजिए और आप बाहर बरामदे की कोठरी में सो जाइए या चौकी निकाल कर उसी पर लेट जाइए। यह बत्ती मैं यहीं छोड़े जाता हूँ।" और जग्गू जल्दी-जल्दी कदम धरता हुआ घर से बाहर हो गया। गुमटी पर पहुँचकर वह अपनी मूँज की खाट पर सोना ही चाहता था कि उसे मालगाड़ी का ध्यान आया और वह हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। इंजिन की रोशनी बुझ चुकी थी लेकिन मालगाड़ी अब भी जहाँ की तहाँ खड़ी थी। जग्गू की बेचैनी बढ़ने लगी। उसके दिमाग में आज पहली बार कौतूहल, परेशानी, कोमलता, आशंका आदि भाव जगे। वह वहीं चक्कर लगाने लगा। गहन अन्धकार को भेदती हुई, इंजिन की सूँ-सूँ की हलकी आवाज जग्गू के मन में आशंकाओं का तूफान उठा रही थी। लाइन के साथ-साथ कच्ची सड़क जाती थी और वह इसी गुमटी से रेलवे लाइन को पार कर गाँव से गुज़रती थी। जग्गू को ट्रक की हड़हड़ाहट सुनायी पड़ी। लेकिन कहीं कोई रोशनी नहीं थी। इसलिए उसे अपने कान पर भ्रम हुआ। हड़-हड़ाहट की आवाज धीरे-धीरे निकट आती गयी—स्पष्ट होती गयी। जग्गू उस ओर गहरे अन्धकार में देखता रहा। आवाज बिलकुल निकट, गुमटी के पास आ पहुँची। जग्गू ने देखा कि ट्रकों की एक लम्बी कतार गुमटी पर खड़ी थी। अगले ट्रक से आवाज आयी—

"जग्गू भाई, ज़रा फाटक खोल देना।"

"अरे बिसेसरबाबू !" जग्गू कौतूहल से चौंक उठा।

"हाँ, मैं हूँ बिसेसर। ज़रा जल्दी फाटक खोल दो।"

"लेकिन बिसेसर बाबू, अभी तो मालगाड़ी आ रही है। आइए, थोड़ी देर मेरी खाट पर बैठकर आराम कीजिए।" जग्गू पास आकर ट्रकों की ओर देखता हुआ बोला—"कहाँ से आ रहे हैं?"

"शैदपुर हाट गया था। आजकल मैंने गल्ले का व्यापार शुरू किया है। बहुत थक गया हूँ। घर जाकर ही आराम करूँगा। फाटक खोल दो न। अभी तो मालगाड़ी टस से मस होती भी दिखाई नहीं देती।"

जग्गू ने सोचा—"ठीक ही तो। मालगाड़ी कब से खड़ी है और न जाने कब तक खड़ी रहेगी। बिसेसर बाबू गाँव के मुखिया हैं, बुजुर्ग हैं, सबसे धनी और समाजसेवी हैं, इनका अनुरोध टालना अच्छा नहीं। उसने फाटक खोलते हुए कहा—"देखो भाई, एक-एक करके ट्रक बढ़ाओ।" गाड़ी पास होने लगी—एक, दो, तीन, चार और अन्त में स्वयं बिसेसर बाबू। जग्गू ने फिर फाटक लगा दिये। कुछ देर तक वह ट्रकों का जाना देखता रहा और कुछ सोचता रहा, फिर न जाने क्या बुदबुदाता हुआ अपनी खाट पर बैठ गया। उसकी आँखों की नींद उड़ चुकी थी। वह सोचने लगा—'ये राजस्थानी आगन्तुक···यह मालगाड़ी···ये ट्रक···बिसेसर बाबू···यह सब क्या हो रहा है आज? गाँव के कुछ बदमाश ईर्ष्यालु लोग दबी ज़ुबान से कहा करते कि बिसेसर बाबू डकैती करवाते हैं, तभी तो उनके पास हज़ारों रुपये हैं, इतने सुन्दर और ईंट के मकान और दालान हैं···।"

"सुनना जग्गू भाई!" बिसेसरसिंह की पुकार सुनकर जग्गू चौंक उठा। पास गया तो बिसेसरसिंह ने कहा—

"गाँव में या किसी बाहरी आदमी से इन गल्लों की चर्चा मत करना। लोग मुझसे बहुत जलते हैं। इसीलिए मैं, छिपकर, चुपचाप व्यापार करता हूँ। और भी कई बातें हैं जो कल इत्मीनान से बताऊँगा। समझे?"

"अच्छी बात है।"

"तो वचन देते हो? यही पूछने मैं वापस आया हूँ।"

"हाँ, हाँ, आप जाकर आराम कीजिए।" जग्गू ने तपाक से अनजाने

ही कह दिया। 'बिसेसर बाबू जैसे जमींदार ने आज उससे पहली बार अनु-रोध किया है, उससे इस तरह सगा होकर बात की है।' इस उत्साह से जग्गू अपने अस्तित्व के प्रति चेतन हो उठा। बिसेसरसिंह ने निर्लिप्त भाव से इंजिन की रोशनी की ओर देखते हुए कहा—

"माल गाड़ी अब तक खड़ी है। मालूम पड़ता है बिल्कुल निकट है।" बिसेसरसिंह, टॉर्च जलाकर, कुछ देर तक इंजिन और गुमटी के बीच की दूरी नापने का उपक्रम करते रहे और फिर अचानक ही बोल उठे—

"अच्छा, अब चलता हूँ जग्गू भाई। कल मिलूँगा।" बिसेसरसिंह तेज रफ्तार में गाँव की ओर न जाकर स्टेशन की ओर चल दिये। क्षण भर बाद ही मालगाड़ी के इंजिन ने सीटी दी और उसकी रोशनी से पानी में भीगी हुई रेल की पटरी चमक उठी, अन्धकार के बीच रोशनी की राह निकल आई। पूरब में आकाश खुलने लगा। दूर पर वृक्षों की ऊँची-नीची कतार अस्पष्ट हो उठी। शैतान की आँखें मद्धिम पड़ गयीं।

२

"किसी चीज़ की ज़रूरत है ?" जग्गू ने बरामदे पर खड़े होकर आगन्तुक नारी के नौकर से ऊँची आवाज़ में पूछा। नौकर आँगन के उस पार सामने वाले बरामदे पर झाड़ू दे रहा था। वह कुछ बोले तब तक नारी स्वयं कोठरी से बाहर निकल आई और बहुत ही संकोच से बोली—

"डाक-घर कहाँ है ?"

जग्गू ने देखा—श्याम-वर्ण; दुबली-पतली; लम्बी, सुगढ़, कोमल देह; बड़ी-बड़ी आँखें; चेहरे पर स्निग्धता, भोलापन और अपरिमेय आकर्षण; नारी युवती थी—लगभग बीस-बाईस साल की। जग्गू का निश्छल, निर्विकार मन, शायद पहली बार, किसी पीड़ा से तड़प उठा कि वही पूर्ववत मधुर स्वर फिर गूँज उठा—

"नहीं है ?" युवती के स्वर में वेदना और बेचैनी थी। जग्गू ने झेंपते हुए सूखे कंठ से कहा—

"हाँ, हाँ, है क्यों नहीं। लाइए, दीजिए चिट्ठी, मैं छोड़ आता हूँ।" युवती चंचल चरणों से कोठरी में गयी और चिट्ठी लाकर देती हुई बोली—

"एक्सप्रेस कर दीजिएगा। अच्छा ?" और जग्गू के हाथ में दस रुपये का एक नोट रख दिया।

"अच्छी बात है।" जग्गू जाने लगा कि उसे कुछ ध्यान आया। रुककर उसने नौकर से कहा—

"यही सामने दायें हाथ जो सड़क जाती है, उसी पर आगे बट-वृक्ष के नीचे रामू साह की दुकान है। वहाँ सब सामान मिल जायेगा।" और तब जग्गू घर से बाहर निकल आया।

डाक घर वहाँ से पौन मील दूर था—रेलवे स्टेशन से लगभग सौ गज़

की दूरी पर, छोटे से बाज़ार के बीचोंबीच। बाज़ार क्या था—स्टेशन से आनेवाली सड़क के दोनों ओर फूस की दस-पन्द्रह छोटी-छोटी पुरानी झोंपड़ियाँ, पाँच-छ: खपरैल-मकान—बेतरतीब ढंग से बने हुए आगे-पीछे, छोटे-बड़े। सेठ मँहगीराम बुलाकीमल की आलीशान इमारत, बेशक, इस बात को सिद्ध कर रही थी, 'निकालनेवाले बालू से भी तेल निकाल लेते हैं।' आस-पास के इलाके में ऐसी शानदार इमारत कहीं नहीं थी। बाबू बिसेसरसिंह की हवेली भी इसके सामने फीकी थी। लेकिन बिसेसरसिंह तो दूर, यदि इलाके का कोई मामूली किसान भी सेठ बुलाकीमल की दुकान पर आ जाता तो सेठ हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता—बहुत ही दीन मुद्रा में। बिसेसर-सिंह कहा करते—'सारे सेठ ने दाँत निपोड़ के इलाके को लूट लिया।' बिसेसरसिंह के इस कथन के पीछे भाव जो हो लेकिन, यह एक तथ्य था कि सेठ बुलाकीमल का बाप सेठ मँहगीराम एक लोटा और फटी हुई मिरजई पहनकर वहाँ आया था और सबों को देखते-देखते उसने चन्द थान कपड़े की दुकान को हज़ारों गाँठ कपड़े और हज़ारों मन गल्ले की दुकान में बदल दिया।

जग्गू रेलवे लाइन पकड़कर चला था। सो उसे रेलवे स्टेशन के प्लेट-फार्म पर ही फौजा खलासी मिल गया। झुर्रीदार चेहरे पर सुफेद डाढ़ी की बड़ी-बड़ी खूटियाँ निकली हुई, सिर में गन्दा घिनौना अँगोछा बँधा हुआ, नंगी देह में थोड़ा उभरा हुआ बेडौल-पेट, हड्डियों से भरी चौड़ी धसी हुई छाती; मोटे-मोटे काले ओठों पर खिचड़ी-मूँछ, लंबी काली बाहें जिनकी मांस पेशियाँ श्रम गठित किन्तु ढलती उम्र और अभाव के संकेत में झूलती हुई—यह था फौजदार महतो जो, प्लेटफार्म के किनारे अपने दोनों पाँव नीचे लटकाये, सुर्ती मल रहा था। जग्गू को देखते ही बोल उठा—

"आओ, जग्गू बाबू! कहाँ चले?"

"यहीं डाक-घर तक जा रहा हूँ।" जग्गू ने चँगुल पर बैठते हुए कहा—"कल रात भर सो नहीं पाया सो मन कैसा न कैसा हो रहा है।"

"अच्छा तो डाकदर के यहाँ जा रहे हो?"

"अरे नहीं फौजा, डाकदर के यहाँ नहीं, डाक-घर जा रहा हूँ—चिट्ठी डालने।" जग्गू ने किंचित मुस्कराते हुए कहा।

प्लेटफार्म पर लगभग सूनापन ही था। बीच में, स्टेशन के सामने आम की सैकड़ों टोकरियों का अम्बार लगा था और उसी के पास दो आदमी बैठे बातें कर रहे थे। प्लेटफार्म के दूसरे छोर पर, एक अधनंगा भिखमंगा सोया हुआ था। स्टेशन प्लेटफार्म के सामने, लाइनों के उस पार, मालगोदाम था—टीन के शेड का और उसके दोनों ओर काफ़ी ऊँचा प्लेटफार्म था, जिस पर, जहाँ-तहाँ बहुत सी चीज़ें रखी हुई थीं जैसे लकड़ी की सिल्लियाँ, पाल से ढकी हुई कुछ गाँठें और टीन के शेड में भरे हुए बोरों के छोटे-बड़े अम्बार। माल गोदाम की बायीं ओर तीन वैगन खड़े थे। फौजदार ने लाइन पर थूक फेंकते हुए कहा—

"जुलुम हो रहा है। अब तो चलती गाड़ी रोककर लोग-बाग डाका डालने लगे हैं। कल रात मालगाड़ी का एक पूरा डब्बा कट गया। और वह सारा अनाज मधुबनी जा रहा था—सरकार की ओर से गरीब लोगों को मुफ्त बाँटने के लिए। वहाँ भी कमला मइया ने पापियों के अत्याचार से बिगड़कर हजारों घर बहा दिया है, सैकड़ों-हजारों बीघा जमीन अपने पेट में रख लिया। परलय मचा दिया है, परलय!!"

"किस मालगाड़ी का?" जग्गू चौंक उठा।

"अरे चौंकते क्या हो? यह कोई नयी बात तो है नहीं। यह इलाका तो डाकुओं का अड्डा बन गया है। अच्छे-अच्छे बाबू भइया अब चोरी-छिनाली करने लगे हैं।" अन्तिम वाक्य फौजा ने फुसफुसाहट के स्वर में कहा।

"रात तो मेरी गुमटी से कुछ दूर पर पूरब जानेवाली मालगाड़ी भी बहुत देर तक खड़ी थी।" जग्गू ने फौजदार के करीब सरकते हुए धीमी आवाज़ में कहा। फौजदार जग्गू की तरफ तिरछे देखकर ऐसे हँसा जैसे यह सब होना ही था। उसकी हँसी के तीन बार हूँ-हूँ की ध्वनि निकली और फिर वह उसी विश्वास भाव से बोला—"उसी मालगाड़ी की तो बात कर रहा हूँ। ढाई सौ चावल के बोरे काटकर गिरा दिये। आधा घंटे से ऊपर मालगाड़ी खड़ी

रही और लूट चलती रही। और जानते हैं जगनरायन बाबू, इंजिन का सरवा डराइवर भी डाकुओं से मिला हुआ था। भला बताओ तो, लाइन पर लाल बत्ती देखकर उसे गाड़ी रोकने की क्या जरूरत थी और जब ट्रक पर बोरे लादकर, डाकू काफी दूर निकल गए तब जाकर उसने गाड़ी चलायी।"

"क्यों ?" जग्गू कुछ सोचने समझने का प्रयत्न करता हुआ बोला।

"अरे डराइवर तो कहता है कि दो आदमी बनूक लेकर उसे घेरे रहे और जब बहुत दूर से टारच जलाकर डाकुओं के सरदार ने सिगनल दिया तब दोनों आदमी उसे छोड़कर धान के खेत में भाग गये।" फौजा एक चुटकी सुरती जग्गू को देता हुआ मुँह बिचका कर बोलता रहा—"लेकिन मुझे उस साले किरस्तान डराइवर पर बिसवास नहीं है। पुलिस ने उसे तो हवालात में ठूस ही दिया। अब आगे देखें—किसकी बारी है।"

जग्गू को सारी बातें समझते देर नहीं लगी। रात की सारी घटना उसकी आँखों के सामने तैर गयी। बिसेसर बाबू के उस वाक्य का अर्थ और उद्देश्य भी जग्गू के सामने स्पष्ट हो गया कि क्यों उन्होंने दुबारा लौटकर कहा था 'गाँव में या किसी बाहरी आदमी से इन गल्लों की चर्चा मत करना' और अन्त में उन्होंने टार्च जलाकर चार-पाँच बार इंजिन की ओर रोशनी फेंक-कर, टार्च वाला अपना हाथ भी हिलाया था। जग्गू वहाँ से चुपचाप उठ गया और स्टेशन से बाहर जाने के एक मात्र द्वार द्वारा बाहर निकला।

सामने बाज़ार था। काफ़ी भीड़-भाड़ थी। इलाके में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। सैकड़ों गाँव जलमग्न हो गये थे। बूढ़ी गंडक जवानी के उन्माद को भी मात कर रही थी। रेलवे स्टेशन से काफ़ी ऊँची पक्की सड़क मदनपुर तक जाती है। बहुत पहले वहाँ एक निलहा अँग्रेज की कोठी थी। वह नील का व्यापार करता था। इतना रौब था उसका कि उसके अत्याचार की सैकड़ों कहानियाँ आज भी लोग घृणा और कौतूहल से कहते-सुनते पाये जाते हैं। घर बह जाने के कारण हज़ारों गरीब लोग उस पक्की सड़क पर शरण लिये हुए थे। बाजार में तो किसी को नहीं ठहरने दिया गया लेकिन बाजार खत्म होते ही सड़क के दोनों ओर टाट, गुदड़ी या फटे कम्बल की दयनीय

छतों की कतार लगी हुई थी। बहुत छोटे-छोटे गन्दे अधनंगे बच्चे, विकृत चेहरे, बोभत्स पेट, सूखी टाँगें, आँखों में कीच और बालों में दुनिया जहान का मैल इकट्ठा किये, बाजार में चक्कर काट रहे थे या किसी हलवाई की दुकान पर, खाना खाते हुए पसिंजर को ललचाई नजरों से टुकुर-टुकुर देख रहे थे। गरीब, अधनंगी औरतें—बूढ़ी-जवान, खूबसूरत-बदसूरत, खीसें निपोड़कर, रोकर, गिड़गिड़ाकर आने-जानेवालों और दुकानदारों के सामने अपनी हथेलियों की अंजलि बनाकर मुँह के पास ले जातीं, बोलतीं कुछ नहीं। देनेवाले डपट देते जैसे ज़बरदस्त कुत्ता कमज़ोर पिल्ले पर गुर्रा उठता है; कोई पैसा-दो पैसा दे देता तो भिखमंगों की भीड़ उमड़ पड़ती जैसे यात्रियों पर वैद्यनाथ धाम के पंडे या जैसे स्टेशन से बाहर निकलते ही पसिंजरों पर तांगे-फिटिनवाले। बेचारे अधकचड़े सिनेमा प्रेमी बुभुक्षित नव-जवान जिन्हें शहर की बाहरी तड़क-भड़क ने दबोच रखा है, जो न गाँव में खप पाये न शहर के हो पाये—अपने कुत्सित विचारों की अभिव्यक्ति का अनुपम अवसर समझते जब कोई जवान औरत भीख माँगती हुई उनके पास आती या सामने से गुज़रती।

आकाश बादलों से अँटा था। पेड़-पौधे स्थिर थे। मौसम में तीव्र ऊमस भरी हुई थी। हलवाइयों की दुकानों से तेल-घी की कड़वी गंध निकल कर वातावरण में घुटन पैदा कर रही थी। जग्गू की नज़र से सारी चीज़ें गुजर रही थीं, मौसम और वातावरण का भी भास उसे मिल रहा था। फौजा खलासी ने उसे जो कुछ सुनाया था, बिसेसरसिंह ने उसे जो सावधान किया था, वह नारी जो अचानक ही उसके यहाँ आ पहुँची थी आदि सभी कुछ जग्गू के मस्तिष्क में एक साथ एक दूसरे से उलझकर एक अजीब शोर उत्पन्न कर रहे थे—जिस शोर की ध्वनि से तो वह अवगत था लेकिन जिसका अर्थ और उद्देश्य वह समझ नहीं पा रहा था। कल्लू हलवाई की दुकान के आगे बहुत कौए कांव-कांव कर रहे थे।

जग्गू ने अट्ठाईस पैसे का टिकट खरीदकर लिफ़ाफे पर चिपकाया और उसे लेटर-बॉक्स के हवाले किया। वह जल्दी से जल्दी गुमटी पर पहुँच जाना

चाहता था ताकि एकान्त में बैठकर सारी बातों को समझने का प्रयत्न कर सके। इसलिए, वह सब कुछ अनदेखी-अनसुनी करता हुआ बाजार से गुजर रहा था कि किसी भर्रायी-फटी आवाज़ पर उसके पैर रुक गये। देखा मुनि-देव की दुकान पर पल्थी मारे राघव बैठा था और वहीं से आवाज़ दे रहा था—

"अरे जगनारायण बाबू ! ज़रा इस अपने शेवक की बात तो सुनते जाइए।" शुद्ध बोलने की कोशिश में गँवार नेता 'स' 'श' और स्त्रीलिंग, पुल्लिंग का निर्णय अपनी इच्छा से कर लेता। जग्गू इस व्यक्ति से हमेशा कतराने की कोशिश में रहता। राघव नाटे कद का, गठीला जवान था। पेशा के नाम पर वह कभी पत्रकार बन जाता तो कभी सी० आई० डी०, कभी सोशलिस्ट तो कभी जनसंघी और कभी हलवाई यूनियन का सभापति तो कभी रिक्शा-यूनियन का मंत्री। वह गूढ़ जीवी होते हुए भी बेजोड़ था। न तो उसे खाने की सुधि रहती न सोने की चिंता। वह जुबान से मुँहफट, दिल से उदार, बुद्धि से कोसों दूर और शरीर से परिश्रमी था। स्टेशन के तथा कथित बड़े लोगों ने कई बार उसे भगाने की कोशिश की, उसे बुरी तरह मारा-पीटा, बेइज्जत किया लेकिन वाहरे राघव ! जमा रहा हमेशा अखाड़े में। जग्गू उसकी आवाज सुनकर रुक गया।

"जरा इधर तशरीफ़ लाइए, हुजूर।" राघव ने अपने भद्दे काले दाँत दिखाते हुए जोर से कहा। जग्गू, निकल भागने का कोई रास्ता न पाकर मुनिदेव की दुकान पर आकर खड़ा हो गया और अनासक्त भाव से बोला—

"कहिए।"

"जरा बैठिए तो। आपके दर्शन भी नहीं होते।" राघव ने बगल में जगह बनाते हुए कहा। जग्गू जब चुपचाप बैठ गया तब राघव ने पूछा—"आपको तो मालूम ही होगा जग्गू बाबू कि रात आपकी गुमटी के पास मालगाड़ी लूट ली गयी ?"

"जब आप कह रहे हैं तब मालूम ही हो गया।" जग्गू ने ऊब के स्वर में उत्तर दिया। राघव ठहाका मार कर हँसने लगा। मुनिदेव किसी ग्राहक

के कोट की ब्योंत कर रहा था। मुनिदेव और जग्गू बचपन के दोस्त थे। मिडिल पास करने के बाद मुनिदेव कपड़े की सिलाई की शिक्षा पाने के लिए पटना चला गया और जग्गू स्टेशन के हाई स्कूल में दाखिल हो गया। मुनिदेव ने सिलाई का प्रशिक्षण प्राप्त करके अपनी दुकान खोल दी और जग्गू आठवीं कक्षा तक पढ़ने के बाद गुमटी पर ही रहने लगा।

राघव की हरकत मुनिदेव को पसन्द नहीं आयी। वह दाँत पीसता हुआ चीख उठा—

"अरे साला, यहाँ शोर क्यों मचा रहा है ?"

राघव के लिए यह नयी बात नहीं थी। वह हँसता हुआ बोला—"अरे प्यारे, तू अपना काम करता रह। हाँ, जग्गू बाबू ! तो आपको अभी मालूम हुआ ? लेकिन, आपको यह भी विदित हो कि वह अनाज, बाढ़-पीड़ितों में मुफ्त बाँटने के लिए, मधुबनी जा रही थी। वहाँ हजारों-लाखों इन्सान कुत्ते की मौत मर रहे हैं। लेकिन, मैं जानता हूँ कि यह किसका कार्य है। इस इलाके के बड़े-बड़े लोगों का इसमें हाथ है और आप जग्गू बाबू······"

"अरे चुप रहता है कि नहीं, लीडर का बच्चा !" मुनिदेव ने राघव को कैंची से घोंप देने का भय दिखाता हुआ चिल्ला कर कहा। जग्गू अपने चेहरे पर वही पूर्ववत् स्थिरता लिए उठ खड़ा हुआ और बिना किसी से कुछ बात किये वहाँ से चल पड़ा।

पूरब से आनेवाली डाक गाड़ी का समय हो गया था। गुमटी पर पहुँचते ही जग्गू ने फाटक बन्द किये और गुमटी की दीवार के पश्चिमी ओर छाँह में खाट डालकर बैठ गया। जग्गू का मन बेचैन था। पिछली रात से जितनी घटनाएँ घट रही थीं, जितनी चर्चाएँ चल रही थीं उन सभी बातों के लिए जग्गू अपने को ज़िम्मेवार समझ रहा था। कुछ था जो उसके हृदय से काढ़ कर बाहर निकलना चाहता था, कुछ तीव्रता थी जो किसी भाव को ठहरने नहीं देना चाहती थी, कुछ घबराहट थी जो एक पल को एक युग जैसा बोझिल बना रही थी। और पश्चिम जानेवाली डाक गाड़ी का कहीं पता नहीं था।

जग्गू इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि सामने से गोपाल आता दिखायी पड़ा।

गोपाल बाईस-तेईस साल का नव जवान था—पिता का इकलौता पुत्र-लाड़-प्यार में पला हुआ। उसके घर में कोई अभाव नहीं था। उसके पिता बिच्चित्तर सिंह कर्मठ किसान थे। नाम के प्रतिकूल वे बहुत सरल स्वभाव के, हँसमुख, दयालु और सुलझे हुए आदमी थे। अपने बेटा गोपाल को नवीं कक्षा तक पढ़ा कर उन्होंने उसे स्कूल जाने से मना कर दिया। घर पर दो कुशल पहलवान रखकर उन्होंने गोपाल को कुश्ती-कसरत की शिक्षा दिलवानी शुरू की। दुबला-पतला गोपाल दो वर्ष के भीतर ही दारासिंह जैसा दीखने लगा। इलाके में उसकी जोड़ का जवान कोई नहीं बचा। सब बिना आजमाये ही उसका लोहा मान गये। शरीर में हाथी की शक्ति आ जाने पर भी गोपाल हृदय से गीली मिट्टी जैसा मुलायम बना रहा। स्पष्टवादी वह स्वभाव से था, जिसे लोग अहंकार समझ लेते। लेकिन वह जिसके साथ रहता उसी का हो जाता। उसकी अपनी धारणा या अपना मत कुछ नहीं था। जग्गू को वह चाचा कहकर पुकारता था।

"प्रणाम, जग्गू चाचा।" गोपाल ने सहज मुस्कान के साथ हाथ जोड़ दिये।

"आओ, गोपाल, बैठो। किधर चले?" कहकर जग्गू अपनी बेचैनी छिपाने के निमित्त मुसकराने लगा।

"आपको बुलाने आया हूँ। बिसेसर बाबू के दालान पर दारोगा बैठा हुआ है। रात मालगाड़ी रोककर किसी ने एक डिब्बा अनाज लूट लिया था। पूरे गाँव की तलाशी हो रही है।"

"तो मैं क्या करूँगा जाकर?" जग्गू के स्वर में आक्रोश था। थोड़ा रुककर वह फिर उसी स्वर में बोला—

"बिसेसर बाबू के घर की तलाशी हुई है या नहीं?"

"क्या दारोगा के सिंह फूटा है कि बिसेसर बाबू के मकान की तलाशी लेगा। बिसेसर बाबू गाँव के मुखिया हैं, जमींदार हैं, इलाके के नेता हैं और

सबसे बड़ी बात यह कि दारोगा के ऐश-मौज की चक्की में 'घानी' डालने वालों में वे सबसे आगे हैं। तलाशी तो होगी हमारे-आपके घर की ?"

"मेरे घर की ?"

"सो रहे थे क्या, जग्गू चाचा ? आपके घर की तलाशी तो हो भी चुकी है।"

"क्या कहा ?" जग्गू तमककर उठ खड़ा हुआ—"मेरे घर की तलाशी हो चुकी है ?"

"हाँ ! आपके यहाँ दो मेहमान ठहरे हुए हैं। दारोगा उनमें से एक को पकड़कर बिसेसर बाबू के दालान पर ले गया है।"

"किसको ?"

"वह अपने को नौकर बतलाता है।"

जग्गू की बेचैनी उन्माद में बदल गयी। वह खाट पर से अँगोछा उठाकर उसे क्रोध से झाड़ता गाँव की ओर लपका। गोपाल उसके पीछे हो लिया।

बिसेसरसिंह के दालान पर भीड़ लगी हुई थी। दारोगा कुर्सी पर बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था और राजस्थानी नौकर से डपट-डपट कर अजीबो-गरीब सवाल पूछ रहा था। जग्गू भीड़ को चीरता हुआ सीधे दारोगा के सामने पहुँचकर बोला—

"मुझसे बात कीजिए, दारोगा जी। वह मेरा अतिथि है।"

"ओह ! आप आ गये ?" दारोगा के चेहरे पर व्यंगात्मक मुसकराहट और घृणा के भाव स्पष्ट हो उठे।

"जी हाँ !" जग्गू ने दृढ़ता से कहा। बिसेसर बाबू किंचित् परेशान हो उठे। वह अचानक ही चिल्ला उठे—

"अरे कलुआ ! पता नहीं कहाँ मर गया साला !" फिर दारोगा से बोले—

"पहले नाश्ता कर लीजिए हुजूर, फिर तहकीकात कीजिएगा।"

जग्गू की दृढ़ता देखकर दारोगा क्रोध से राख हुआ जा रहा था। पूरे गाँव के सामने, जग्गू जैसा साधारण गुमटीवाला—एक कुली—इस तरह

अकड़कर बोल रहा था। 'ऐसा गुस्ताख !' दारोगा के रक्त में प्रतिहिंसा की उष्णता व्याप गयी। लेकिन अपना क्रोध पीता हुआ उसने आँखें लाल करके पूछा—

"यह कौन औरत है जो इस आदमी के साथ तुम्हारे घर में ठहरी हुई है ?"

"इससे आपको मतलब ?"

"हाँ, मुझे मतलब है !"

"ये लोग मेरे अतिथि हैं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।" जग्गू बिसेसरसिंह की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखता हुआ बोला।

"वाह साहब, एक जवान औरत को बिना कुछ जाने-समझे घर में बिठा लिया। मुझे बुद्धू समझ रखा है क्या ?"

"किसी परदेसी अतिथि को अपने घर में ठहराने के लिए अधिक जानने-समझने की जरूरत नहीं होती।"

"लेकिन चोर और उचक्कों का मिजाज दुरुस्त करने के लिए जानने-समझने की जरूरत होती है और मुझमें इतनी अक्ल है !" दारोगा अपने क्रोध पर से नियंत्रण खोता जा रहा था। जग्गू उबलता हुआ आया था लेकिन पता नहीं क्यों वह दृढ़ता के साथ सहज भाव से जवाब देता रहा—

"आप स्वयं ही कभी तो अपने को बुद्धू समझ लेते हैं और कभी अक्ल-मन्द। अब मैं क्या जानूँ कि आप क्या हैं और क्या चाहते हैं ?"

"चुप रहो, नहीं तो जुबान खींच लूँगा। छोटा मुँह, बड़ी बात !" दारोगा चीख उठा।

"आपने कुछ पूछना शुरू किया था इसीलिए बोल रहा था। यदि आप चुप रहने को कहते हैं तो फिर मेरी यहाँ कोई जरूरत नहीं है।" वह नौकर की ओर देखकर बोला—"चलो भाई। यहाँ से चलें।"

"यह नहीं जा सकता।" दारोगा ने कहा।

"क्यों ?"

"इस पर मुझे शक है।"

"वाह दारोगा जी, आपकी समझ भी निराली है ! डाकुओं पर तो आप विश्वास करते हैं और निरपराधों पर शक !"

"कौन डाकू है ?"

"आप अच्छी तरह जानते हैं।"

"मुझे तुम्हारे इस अतिथि पर शक है।"

"लेकिन मैं जानता हूँ कि यह निरपराध है।"

"तुम्हारे पास इसका क्या सबूत है ?"

"जिस समय मालगाड़ी लूटी जा रही थी, यह अपनी मालकिन के साथ मेरे पास था।"

"या आप अकेले इसकी मालकिन के पास थे ?"

"खबरदार जो इस तरह की बात की !" जग्गू क्रोध से उबल पड़ा। बिसेसरसिंह की परेशानी ने घबराहट का रूप ले लिया, लेकिन, वह बहुत ही पहुँचे हुए आदमी थे। वह दारोगा के पीछे चौकी पर बैठे थे। उठकर दारोगा के सामने आये और शांत स्वर में बोले—

"दारोगा जी, आप नाहक नाराज़ होते हैं। जग्गू-जैसा ईमानदार और साधु पुरुष इस गाँव में तो दूर, पूरे इलाके में नहीं है और......और तुम भी जग्गू भाई व्यर्थ ही क्रोध करते हो। दारोगा जी का तो काम ही है चोरी-डकैती का पता लगाना। यदि ये लोग न रहें तो हम लोगों का सोना, रहना हराम हो जाये। हम लोगों के लिए ही तो दारोगा जी इस तरह के अप्रिय काम करते हैं। ज़रा इनकी मजबूरी भी तो महसूस करो। अच्छा दारोगा जी, आप ज़रा भीतर कोठरी में चलिए। एक कप चाय पी लीजिए, फिर यह सब काम कीजियेगा। चलिए, उठिए।" बिसेसरसिंह दारोगा को आग्रहपूर्वक उठाकर कोठरी में ले गये। दारोगा जाते-जाते अपने सिपाहियों से कहता गया—

"इन लोगों को जाने मत देना।"

"कहाँ चले, दारोगा जी ?" इस भर्रायी फटी हुई आवाज़ को पहचानने में किसी को देर नहीं लगी। ऐसी घटनाओं को तमाशा समझकर दिल-

चस्पी लेनेवाले, राघव के आगमन से, मन-ही-मन खुश हुए। दारोगा और बिसेसरसिंह थमक गये। इन दोनों को राघव का आना बहुत ही बुरा लगा। बिसेसरसिंह ने पितृ-भाव से हँसते हुए कहा—

"तुम ज़रा बैठो, राघव! दारोगा जी अभी चाय पीकर आते हैं। चलिए दारोगा जी, भीतर चलिए।"

दोनों कोठरी में चले गये। भीड़ वाचाल हो उठी। सभी अपनी-अपनी बात, अपना-अपना तर्क उपस्थित करने लगे। आगंतुक नारी का नौकर ठगा-सा घबराया-सा खड़ा था। राघव ने अपनी स्वाभाविक भाषण-शैली में बोलना शुरू किया—

"देखो जग्गू भाई! हर जगह गरीब और कमजोर ही शिकार होते हैं; और असल डाकू मौज उड़ाते हैं। मैं जानता हूँ कि कोठरी में जाकर गरीबों को फाँसने का जाल रचा जा रहा है। लेकिन आप लोगों को होशनहीं है। आप लोग कायर की तरह सब-कुछ सहन करते हैं। बड़े शर्म की बात है।"

"तो आपने ही कौन-सा तीर मार दिया है! भाषण तो सभी दे सकते हैं। ज़रा आगे बढ़कर इस अन्याय का विरोध कीजिए तब जानें।" गोपाल तमककर दायाँ हाथ फैलाता हुआ बोला।

"मेरी बात मत करो, गोपाल। मैं तो हमेशा आगे रहनेवाला आदमी हूँ। लेकिन तुम लोगों-जैसे पढ़े-लिखे नौजवानों के रहते हुए भी एक मामूली दारोगा ने पूरे गाँव को बेवकूफ़ बना दिया! मेरा क्या है? मैं तो फक्कड़ आदमी हूँ। जहाँ कहीं भी मैंने अन्याय देखा है, वहाँ डटकर विरोध किया है। और इसीलिए मैं चारों ओर बदनाम हूँ। लेकिन मुझे अपनी बदनामी का डर नहीं है। मैं आप लोगों के साथ हूँ। आपको चाहिए कि जो आपकी इज्ज़त पर हाथ डाले, आप उसका हाथ तोड़ दें।"

"किसकी माँ बाघ-व्यायी है जो हमारी इज्ज़त पर हाथ डालेगा?" गोपाल आँखें लाल करके बोला।

"यही तो तुम भूल करते हो, गोपाल भाई। तुम्हें पता नहीं है कि इज्ज़त किसे कहते हैं। तुम समझते हो कि तुम्हारी इज्ज़त तुम्हारे घर में

है लेकिन ऐसी समझ तुम्हारी अज्ञानता को ही सिद्ध करती है। देसौरा गाँव तुम्हारा है, यहाँ के लोग तुम्हारे अपने हैं, यहाँ की अच्छाई-बुराई तुम्हारी अपनी अच्छाई-बुराई है और इसी तरह गाँव की इज्जत तुम्हारी अपनी इज्जत है।"

"यह तो मैं भी मानता हूँ।" गोपाल ने गम्भीरतापूर्वक चीखकर कहा।

राघव उत्साह में आकर बोला—

"मानने भर से क्या होता है? जग्गू बाबू तुम्हारे गाँव के रहनेवाले हैं, तुम्हारे अपने हैं। इस गाँव के जितने भी लोग हैं, सब एक दूसरे के सगे हैं। आज दारोगा ने जग्गू भाई के अतिथि को बेइज्जत किया है, कल आप लोगों की प्रतिष्ठा पर हाथ उठायेगा, बल्कि आपकी प्रतिष्ठा तो धूल में मिल भी गयी। क्या शर्म की बात नहीं है कि आपकी आँखों के सामने आपके एक अतिथि को गाली दी जा रही है और आप खड़े मुँह ताक रहे हैं?"

भीड़ से बहुत-सी आवाजें बुलन्द हो उठीं—

"ज़रूर! बिल्कुल शर्म की बात है, आप ठीक कहते हैं।"

राघव ने विजेता की तरह एक बार भीड़ को देखा और फिर गोपाल से कहा—

"प्यारे भाई, तुम मेरे छोटे भाई हो। तुम्हें मुझ पर नाराज नहीं होना चाहिए।"

"आपने डरपोक क्यों कहा?" गोपाल ने कृत्रिम क्रोध से पूछा।

तभी बिसेसरसिंह बाहर आये। भीड़ का कोलाहल कुछ दब गया। बिसेसरसिंह शांत स्वर में बोले—

"आप लोग अपने-अपने घर जाइए। यहाँ भीड़ लगाने से क्या फ़ायदा?"

भीड़ ज्यों-की-त्यों खड़ी रही। बिसेसरसिंह प्रत्येक व्यक्ति को एक-एक कर घूरने लगे—"आप लोगों को कोई काम नहीं है क्या?"

"काम तो बहुत से हैं, लेकिन आप लोग करने दें तब तो।" राघव ने मुस्कराते हुए व्यंग्य किया। बिसेसरसिंह शायद इसी मौके की तलाश में थे। बोले—

"आप बीच में न बोलिए। जाइए स्टेशन जाकर हलवाइयों की यूनियन बनाइए। यह गाँव है।"

"आप मेरी जुबान पर ताला नहीं लगा सकते। इतनी बड़ी सरकार ने भी बोलने की आजादी दे रखी है।"

"कौन कहता है कि आप न बोलिए, लेकिन यहाँ नहीं। यह गाँव है, मेरा घर है।"

"पहले आप अपने गाँव में होनेवाले जुल्म को रोकिए, फिर मेरी जुबान को रोकिएगा।"

बिसेसरसिंह उसी शांत मुद्रा से बोलते रहे—"हम गाँव के मामले में बाहरवालों का दखल बर्दाश्त करने के आदी नहीं हैं। हम आपस में कुछ भी करें, इससे बाहरवालों को मतलब?"

"और यह दारोगा जी कहाँ के हैं? इस दारोगा ने आपके गाँववालों को बेइज्जत किया है और आप उन्हें सम्मानपूर्वक नाश्ता करा रहे हैं, चाय पिला रहे हैं!"

"वे हमारे अतिथि हैं।"

"और मैं?"

"आप-जैसे अतिथियों से हमारे गाँव को भगवान बचाए!" भीड़ ठहाका मारकर हँस पड़ी। राघव ने चारों ओर देखा। उसकी हिम्मत पस्त होती जा रही थी। गोपाल पर जाकर उसकी नजर अटक गयी। वह मुस्करा रहा था। जग्गू एक आम की सिल्ली पर बैठा था—गंभीर मुद्रा में, दोनों हाथों की हथेलियाँ सिल्ली पर रखे हुए।

बिसेसरसिंह ने मुस्कराते हुए कहा—"यहाँ जितने लोग बैठे हैं, सभी मेरे भाई-बन्द हैं। सब लोग मेरे हैं और मैं सबों का हूँ। सुख-दुख में, हम गाँववाले एक दूसरे के काम आते हैं और एक दूसरे से झगड़ते भी हैं। लेकिन बाहरवालों को पंच नहीं बदते। आप-जैसे नेता लोग अपनी माया गाँव से दूर ही रखें तो अच्छा।"

"लेकिन ठाकुरसाहब, मेरी माया तो आपकी माया की छाया-भर है।

आप आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे। समझे?" और बिसेसर बाबू पर एक अर्थ-पूर्ण दृष्टि डालता हुआ राघव वहाँ से चल दिया। राघव की उस दृष्टि से बिसेसरसिंह क्षण-भर के लिए विचलित हुए, लेकिन तत्क्षण स्वस्थ हो गये।

"अच्छा, अब आप लोग भी जाइए।" बिसेसरसिंह ने लोगों से कहा। भीड़ छँटने लगी। जग्गू ने उस नारी के नौकर को अपने पास इशारे से बुलाकर पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"बढ़मदेव।"

"अच्छा तो ब्रह्मदेव, तुम गुमटी पर चलकर बैठो। मैं अभी आता हूँ।" ब्रह्मदेव चला गया। तब तक भीड़ भी छँट चुकी थी। बिसेसर बाबू लोगों का जाना देख रहे थे। लेकिन उनका मन तो जग्गू की ओर ही टँगा था। जग्गू को चुपचाप सिल्ली पर बैठा देखकर बिसेसरसिंह उसके पास पहुँचे—

"क्या बात है, जग्गू भाई? मुझसे नाराज हो क्या?"

जग्गू चुपचाप उठ खड़ा हुआ। बिसेसरसिंह मुस्कराते हुए पितृ-भाव से देख रहे थे। बिसेसरसिंह की आकृति, हाव-भाव और व्यवहार देखकर उन्हें पहचानना कठिन था। उनका गौर वर्ण, खड़ी नासिका, पतले फैले हुए होंठ, बड़ी-बड़ी निश्छल आँखें और दोहरी देह, देखनेवालों के मन में श्रद्धा उत्पन्न करतीं और उनका मधुर व्यवहार अनजान आदमी के अहंकार को सहज ही जीत लेता। उनके चेहरे पर की स्निग्धता योगियों-जैसी थी। जग्गू ने उनकी आँखों में आँखें डालकर आक्रोशपूर्ण स्वर में पूछा—

"आप जानते थे कि मेरे अतिथियों का इस डकैती से कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी आपने मेरे घर की तलाशी करवायी और मेरे अतिथियों को अपमानित करवाया।"

"तुम बड़े भोले हो, जग्गू भाई। दारोगा मेरा नौकर तो है नहीं कि सब काम मुझसे पूछकर करेगा।" बिसेसरसिंह ने स्नेह से अपना बायाँ हाथ जग्गू के कंधे पर रखते हुए कहा। बिसेसरसिंह का तर्क जग्गू में विश्वास नहीं भर सका लेकिन उनके मधुर व्यवहार के सामने जग्गू का क्रोध दब

गया। वह समझौतावादी ढंग से क्रोध प्रदर्शित करता हुआ बोला––

"लेकिन अभी तो आपने ही सबों को रिहा कर दिया जैसे···जैसे आप ही दारोगा हों।"

"पागल हो गए हो!" बिसेसरसिंह ने हँसते हुए कहा––"अरे आखिर दारोगा भी तो आदमी है। समझाया-बुझाया, उसकी आरजू-मिन्नत की तब जाकर उसने मेरी बात मानी। और जरा तुम स्वयं सोचो कि दारोगा ने क्या ग़लत काम किया?" जग्गू ने कौतूहलपूर्ण क्रोध से बिसेसरसिंह को देखा। बिसेसरसिंह शांत स्नेह-स्निग्ध स्वर में बोलते रहे––"तुम्हें भी मालूम नहीं है कि तुम्हारे अतिथि कौन हैं और किस उद्देश्य से यहाँ आए हैं। वह स्त्री जवान है, खूबसूरत है और भले घर की मालूम पड़ती है। मैं तुम्हें जानता हूँ कि तुम साधु पुरुष हो, सच्चे हो, लेकिन संसार या समाज कैसे विश्वास कर लेगा कि वह निरुद्देश्य ही भटक रही है या तुमने वैसे ही उन लोगों को अपने यहाँ ठहरा लिया है। जरा ठंडे दिमाग से सोचो, जग्गू भाई। कोई काम बिना कारण के नहीं होता। इसीलिए कहता हूँ कि क्रोध न करो। जो कुछ हुआ उसे भूल जाओ।"

जग्गू किसी सोच में पड़ गया। उसका हृदय क्रोध, घृणा और प्रतिहिंसा से फटा जा रहा था लेकिन उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस पर और क्यों क्रोध करे। बिसेसरसिंह की बातें उसके मन में जमी नहीं। वह महसूस कर रहा था कि बिसेसरसिंह जो-कुछ कह रहे हैं झूठी, कृत्रिम, और भ्रमपूर्ण बातें हैं। लेकिन, वह अपने मन के भाव खोल नहीं पा रहा था। जग्गू बाज़ी हार चुका था। अब उसके परास्त मन में विजेता का सामना करने की हिम्मत नहीं थी। वह चुपचाप वहाँ से चल पड़ा। उसके मन में यही प्रश्न बार-बार उठ रहा था––"जीवन में पहली बार आज उसने क्यों हार मान ली? क्यों? क्यों? क्यों?"

पश्चिम जानेवाली डाकगाड़ी हड़हड़ाती हुई झमाक् से गुमटी पर से गुज़र गयी। आज पहली बार वह अपनी ड्यूटी पर मौजूद नहीं था। यह सब क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? वह क्यों बर्दाश्त कर रहा है? पता नहीं क्यों? और इन हज़ारों-लाखों 'क्यों' का उसके पास कोई उत्तर नहीं था।

३

जग्गू ने गुमटी पर पहुँचते ही सबसे पहले दोनों ओर के फाटक खोल दिये। ब्रह्मदेव उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जग्गू उसके पास जाकर बैठ गया। कुछ देर दोनों चुपचाप बैठे रहे। ब्रह्मदेव ने चुप्पी तोड़ते हुए पूछा—

"क्या दारोगा मुझे पकड़कर ले जायेगा ?" जग्गू ने देखा कि ब्रह्मदेव का चेहरा भय से पीला पड़ा हुआ था, उसके होंठ सूख रहे थे और उसकी आवाज़ लड़खड़ा रही थी। जग्गू में अहं-जनित दया आ गयी। वह अपनी सारी परेशानियाँ भूल गया।

"नहीं ब्रह्मदेव, तुम्हें कोई नहीं पकड़ेगा। असल में, रात ही तुम लोग यहाँ आये और रात को ही मालगाड़ी रोककर, डाकुओं ने उसे लूट ली। दारोगा उसी की छान-बीन करता फिर रहा है।" ब्रह्मदेव आश्वस्त हुआ। दोनों फिर चुप हो रहे। आकाश में बादलों की दौड़-धूप शुरू हो गयी। इस बार जग्गू ने ही चुप्पी तोड़ी। उसने सकुचाते हुए पूछा—

"तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?"

"मुझे मालूम नहीं।"

"क्यों ?"

"मालकिन ने मुझे कुछ नहीं बताया कि वे कहाँ जायेंगी।"

"तुम्हारी मालकिन की शादी हो चुकी है ?"

"नहीं।"

"क्या घर से भागकर आयी हैं ?"

"हाँ।"

"तुम लोगों ने बहुत बुरा किया। ज़माना बहुत ख़राब है। तुम लोगों को घर लौट जाना चाहिए।"

"मालकिन मानती ही नहीं हैं तो मैं क्या करूँ ?"

जग्गू ने कौतूहल से ब्रह्मदेव को देखा। ब्रह्मदेव के चेहरे पर न दुःख का भाव था, न सुख का। वह अनासक्त भाव से देख रहा था। उसके होठों पर दयनीयता को व्यक्त करनेवाली हलकी मुस्कराहट काँप रही थी।

"अच्छा चलो, मैं तुम्हारी मालकिन को समझाता हूँ ?"

दोनों चल पड़े। घर पहुँचकर जग्गू बाहर बरामदे पर ही रुक गया। भीतर से ब्रह्मदेव की पुकार आने पर घर में पहुँचा। आँगन के उस पार, बरामदे में, खम्भे के सहारे मालकिन खड़ी थी—सद्यःस्नाता, स्निग्धता बिखेरती हुई, निश्छल सौन्दर्य की साकार प्रतिमा-सी। उसके भीगे बाल खुले हुए थे जिस पर पड़ा हुआ आँचल लगभग भीग चुका था। जग्गू ठगा-सा देखता रह गया।

"चिट्ठी गिरा दी ?"

"ऐं···हाँ।" जग्गू चौंककर शरमा गया।

"एक्सप्रेस कर दिया था न ?"

"हाँ, यह रहे बाकी पैसे।" जग्गू को पैसों का खयाल आया। उसने फेंट से पैसे निकालकर ब्रह्मदेव को दे दिये। फिर उसने कुछ हिचकते हुए कहा—

"मैंने सुना है कि आप घर से भाग आयी हैं। क्या यह सच है ?"

"भागी नहीं हूँ, चली आयी हूँ।" मालकिन का सहज उत्तर था। जग्गू इस नारी की निर्भीकता से स्तम्भित रह गया। मालकिन बोलती गयी—

"स्त्री का अपना घर तो कोई होता नहीं। हर स्त्री को एक न एक दिन अपने माँ-बाप को छोड़ना ही पड़ता है। मैं भी उसी तरह छोड़कर चली आयी हूँ।"

"लेकिन, आपका···आपका ब्याह तो हुआ नहीं है।"

"किसने कहा कि मेरा ब्याह नहीं हुआ है। मेरी माँग में आप सिन्दूर नहीं देख रहे हैं ?" कहते-कहते मालकिन का मुखमंडल सात्विक क्रोध से आरक्त हो उठा। जग्गू ने झेंपते हुए कहा—

"ब्रह्मदेव ने कहा था।"

"यह तो बेवकूफ है। यह समझता है कि बाजे-गाजे के साथ, शोर-गुल करके, ब्राह्मण की उपस्थिति में ही ब्याह हो सकता है—वैसे नहीं।" जग्गू को सारी बात समझते देर नहीं लगी। उसने किंचित गंभीर स्वर में कहा—

"लेकिन, समाज की मुहर लगे बिना कोई सम्बन्ध पक्का नहीं होता।"

"मुझे समाज से कुछ लेना-देना नहीं है।"

"लेकिन, यदि वह आदमी आपको धोखा दे दे तो फिर समाज पर ही आप लोगों की ज़िम्मेवारी आ जायेगी। आदमी से बढ़कर खतरनाक जानवर इस सृष्टि में और कोई नहीं। इसलिए धोखा···"

"यह सब मेरी अपनी बातें हैं। आपको 'उनके' बारे में धोखा-फ़रेब-जैसे शब्द बोलने का कोई अधिकार नहीं है। यदि मेरा यहाँ रहना आपको भारी लगता है तो साफ़-साफ़ कहिए, मैं अभी चली जाऊँगी।" जग्गू को जैसे काठ मार गया। 'देखने में इतनी खूबसूरत, इतनी कोमल और जुबान ऐसी कड़वी—मिजाज इतना तेज़?' जग्गू क्षण-भर सोचता रहा कि अचानक उसे होश आया। उसने सकपकाते हुए कहा—

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। मैं तो आपके भले की बात कह रहा था। वैसे यह आपका घर है—जब तक इच्छा हो रहिए। मुझे तो इस घर की जरूरत भी नहीं होती। खाली ही पड़ा रहता है।" और अचानक ही, तेज़ी से घर के बाहर निकल आया। जग्गू हैरान था। 'यह कैसी स्त्री है? परदेश में किसी अनजान आदमी के घर ठहर गयी है। लेकिन दिल में किसी तरह का कोई डर नहीं। दारोगा और पुलिस ने घर की तलाशी ली, उसके नौकर को परेशान किया लेकिन, इस बड़ी घटना के बारे में उसने एक शब्द भी नहीं पूछा और पहला प्रश्न उसने किया—'चिट्ठी गिरा दी?' पता नहीं वह कैसा पुरुष है जिसका जादू इस स्त्री के सिर पर चढ़कर इस तीव्रता से बोल रहा है!

गुमटी पर पहुँचते ही उसने देखा कि राघव उसकी खाट पर बैठा कुछ लिख रहा है। "आइए जगदेव बाबू, मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

"कहिए।"

"जरा बैठिए तो, फिर इतमीनान से बात की जाय।"

जग्गू के बैठ जाने पर राघव अपनी छोटी-छोटी आँखें घुमाता हुआ बोला—

"हुजूर के यहाँ, सुना कोई परी उतरी है।"

"क्या मतलब ?" जग्गू ने भवें टेढ़ी करके पूछा।

"मतलब तो साफ है।" राघव ने बेवकूफ की तरह हँसते हुए कहा।

"राघव जी, मैं सीधा आदमी हूँ। मुझसे सीधे ढंग से बात कीजिए। समझे ?" जग्गू क्रोध से उबल उठा।

"सीधे ढंग से ही पूछ रहा हूँ, मित्र। लेकिन, आप तो बेकार ही नाराज हुए जाते हैं। मैंने तो स्टेशन पर और आपके गाँव में अजीबोगरीब चर्चा सुनी और असलियत जानने के लिए आपसे पूछ लिया। यदि आपको बुरा लगा तो क्षमा माँगता हूँ। खैर, छोड़िए इस बात को। मैं आपसे, दरअसल डकैती के बाबत कुछ पूछने आया हूँ।"

"पूछिए।" जग्गू का स्वर रूखा और कठोर था।

"मालगाड़ी आधा घंटा से ऊपर, गुमटी से कुछ ही दूर पर खड़ी रही। फिर आपने इसकी खोज-खबर क्यों नहीं ली ?"

"मैं पूरे रेलवे पर पहरा नहीं देता।"

"अच्छा, डेढ़ मील तक लाइन के साथ-साथ आनेवाली सड़क इसी गुमटी से रेलवे लाइन को काटती है। फिर लूट का माल तो इसी ओर होकर गया होगा ?"

"क्यों ? पश्चिम की ओर से भी तो लाया जा सकता है।"

"सकने की बात छोड़िए, जो हुआ सो कहिए।"

"देखिए राघव बाबू, आप व्यर्थ अपना और मेरा समय बर्बाद कर रहे हैं। इन बातों से कोई फ़ायदा होनेवाला नहीं है।"

"अच्छा, इस बात को भी छोड़िए।" राघव ने हँसते हुए कहा और फिर वह अचानक ही गंभीर हो गया। जग्गू के निकट सरककर धीमी आवाज में बोला—

"मुझे तो मालूम हो गया है कि किसने डाका डाला है।" और यह कहकर राघव ग़ौर से जग्गू को देखता रहा। जग्गू किंचित चेतन हो उठा और सम्हलकर बोला—

"फिर तो बड़ी खुशी की बात है। दारोगा से मिलकर उसे गिरफ्तार करवाइए।"

"अरे जग्गू भाई, यही तो मुशीबत है। दारोगा तो उस डाकू की मुट्ठी में है।" जग्गू आवश्यकता से अधिक सावधान होता जा रहा है—यह बात राघव से छिपी नहीं रही। जग्गू ने अपनी आँखें बचाते हुए पूछा—

"कौन है वह आदमी ?"

"जग्गू भाई, मुझसे मत बनो! पूरा इलाक़ा तुम्हें ईमानदार और सच्चा आदमी मानता है। आज तक तुमने किसी की खुशामद नहीं की, किसी से दबकर कोई भीख नहीं माँगी। सच्ची और खरी बातें करने के कारण सभी तुम्हारे दुश्मन हो गये। फिर भी तुमने परवाह नहीं की और तुम अपनी राह पर चलते रहे। लेकिन आज तुम्हें क्या हो गया है कि सच्ची बात कहने से डर रहे हो ? तुम अच्छी तरह जानते हो कि डाका किसने डाला है, फिर भी तुम मुझसे पूछते हो। अगर मुझसे ही जानना चाहते हो तो सुनो डाका डालनेवाले का नाम है बाबू बिसेसरसिंह। बोलो, सच बात है या नहीं ?"

राघव अपने अनोखे ढंग की भाषण-शैली का असर देखने के लिए जग्गू को घूरता रहा।

"मैं नहीं जानता।" जग्गू ने सिर नीचा किये-किये कहा। राघव उछल कर खड़ा हो गया और खुशी से थिरकता हुआ बोला—

"बस मैं जान गया कि तुम सभी बातें जानते हो।" जग्गू आश्चर्य और झेंप के साथ राघव को देख रहा था। राघव बोलता गया—

"अगर तुम अनजान होते तो बिसेसरसिंह का नाम सुनते ही चौंक उठते, आश्चर्य से देखते रह जाते और परेशानी-हैरानी की रेखाएँ तुम्हारे चेहरे को विकृत बना देतीं। लेकिन⋯लेकिन तुम सब-कुछ जानते हो, प्यारे! बस

में अभी जाकर ठाकुर बिसेसरसिंह का हिसाब-किताब दुरुस्त करता हूँ। तुम्हें गवाही देनी होगी।" कहता हुआ वह जाने लगा।

"सुनिए तो !" जग्गू ने घबराकर पुकारा।

राघव थोड़ी दूर तक लौटकर आया और दूर से ही बोला—

"जग्गू भइया, तुमने सारी उम्र सत्य की राह पर बितायी है। अब इस उम्र में झूठ का पल्ला मत पकड़ो।" इतना कहकर वह तेजी से स्टेशन की ओर चला गया।

जग्गू की परेशानी और बढ़ गयी। जितना ही वह इस जाल से छूटने की कोशिश करता उतना ही उसमें उलझता जाता। 'अब क्या होगा ?' यही प्रश्न उसे पागल बनाये जा रहा था कि सामने से बिसेसरसिंह आते दीख पड़े।

"किस चिंता में डूबे हो जग्गू भाई ?" बिसेसरसिंह ने आते ही पूछा।

"अभी राघव यहाँ आया था। उसे किसी तरह मालूम हो गया है कि आपने ही डाका डलवाया है और वह कुछ कार्रवाई करने गया है। अब यदि मुझसे पूछा गया तो मैं साफ़-साफ़ सभी बातें बता दूँगा। मुझे दोष मत दीजिएगा। मुझसे ज़्यादा झूठ बोला नहीं जायेगा।"

"तुम राघव की चिंता मत करो जग्गू भाई। वह क्या खाकर मेरे खिलाफ़ कार्रवाई करेगा, यह लो अपना हिस्सा।" बिसेसरसिंह ने मुस्कराते हुए नोट की एक गड्डी जग्गू की ओर बढ़ायी।

"मुझे इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। आप ही रखिए।"

"अरे रख भी लो। घर आयी लक्ष्मी को इस तरह नहीं ठुकराते।"

"यह लक्ष्मी नहीं है बिसेसर बाबू, चंडिका है। अगर आप अन्याय करके इसे बलपूर्वक अपने पास रखेंगे तो यह आपका सत्यानाश कर देगी।" जग्गू क्रोध और घृणा से काँप रहा था। बिसेसर बाबू ने हँसते हुए कहा—

"तुम बिल्कुल पागल हो। अच्छा, मैं चलता हूँ। जरा रघुआ का प्रबंध कर दूँ।" जग्गू भय से काँप उठा। आठ-नौ घंटे में ही जग्गू ने बहुत-सी नयी

बातें देख ली थीं। इसी बीच वह बिसेसरसिंह को भी पहचान गया था। उसकी नज़र में बिसेसरसिंह-जैसा ख़तरनाक और चांडाल आदमी संसार में कोई नहीं था। 'अब राघव का क्या होगा ?' इसी सोच से जग्गू मरा जा रहा था।

४

देर हो चुकी थी इसलिए जग्गू ने पाँच-छः मोटी-मोटी रोटियाँ सेंक लीं और प्याज-नमक-मिर्च के साथ खाने बैठा। अभी दो-तीन कौर ही खाये होंगे कि मुनिदेव हाँफता हुआ आ पहुँचा। दौड़ने से उसकी साँस फूल रही थी, भय से उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था और घबराहट से उसके होंठ-कंठ सूख रहे थे। जग्गू के पास पहुँचते ही वह हाँफता हुआ किसी कदर बोला—

"जल्दी चलो जग्गू। अनर्थ हो गया।"

"क्या हुआ?" जग्गू ने मुँह तक आया हुआ कौर थाल में गिराते हुए घबराकर पूछा।

"अरे उठो भी तो। रास्ते में सभी बातें बता दूँगा। जल्दी चलो।" मुनिदेव उसकी बाँह पकड़कर उठाता हुआ बोला।

रास्ते में चलते-चलते जो कुछ सुना उससे जग्गू ग्लानि और घृणा से भीतर-ही-भीतर रो उठा। अभी मुश्किल से दो-तीन घंटे हुए होंगे— बिसेसरसिंह के गुमटी पर से गये हुए; और इतनी देर में सारी घटना घट गयी। बात यह हुई कि राघव चार बजे की गाड़ी से मुज़फ्फरपुर जानेवाला था। उस बेवकूफ नेता ने स्टेशन पर शोर कर दिया कि बिसेसरसिंह ने ही डाका डलवाया है और दारोगा उसकी मुट्ठी में है। इसलिए वह स्वयं मुजफ्फरपुर जाकर एस० डी० ओ० से सारी बातें बतायेगा। सबों के मन में इस तरह की शंकाएँ घर किये हुए थीं। लेकिन खुलकर कोई कुछ नहीं बोलता था। हवा अनुकूल थी। राघव की बात, आग की तरह फैल गयी। सबों की जुबान पर दो ही बातें थीं—बिसेसरसिंह का डकैती से सम्बंध और जग्गू का राजस्थानी औरत से सम्बंध। इसी बीच, देसौरा के कुलदीप और मुनेश्वर

एक रिक्शा लेकर मदनपुर गये और वहाँ से उसी रिक्शे पर लौटकर स्टेशन आये। मुनेश्वर ने रिक्शावाले को आठ आने दिये। रेट के मुताबिक डेढ़ रुपया होता था। रिक्शावाले ने यह कहकर भयंकर अपराध कर दिया कि "बाबू साहब, ये पैसे भी आप ही रखिए।" बस उन दोनों ने बेचारे रिक्शावाले को मारना शुरू किया। शोरगुल सुनकर राघव वहाँ आ पहुँचा। क्योंकि वह रिक्शा यूनियन का नेता था उसने बीच-बचाव करना चाहा लेकिन देसौरा के दोनों गंजेरी बाबू साहब राघव की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उन दोनों ने मिलकर राघव को इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया।

जग्गू जब स्टेशन पहुँचा तब मुनिदेव की दुकान पर भीड़ लगी हुई थी। बाढ़-पीड़ित गरीब, सहमे हुए, दूर खड़े थे। राघव खाट पर लेटा कराह रहा था, उसका सिर एक पुरानी धोती से बँधा हुआ था जिसमें दो-तीन जगह खून के धब्बे पड़े थे, उसका मुँह सूजा हुआ था, निचला होंठ कट गया था, बाँयीं आँख सूजकर ढक गयी थी, स्याह पड़ गयी थी और उसका कुर्ता-पायजामा चिथड़ा हो रहा था। जग्गू को देखते ही राघव के होठों पर उद्देश्यपूर्ण मुस्कराहट दौड़ गयी। वह धीमे स्वर में बोला—

"देखो जग्गू भाई! मैं मुज़फ्फ़रपुर जाकर एस० डी० ओ० से नहीं मिल पाऊँ, इसलिए यह जाल रचा गया है। ऐसे हैं तुम्हारे बाबू बिसेसरसिंह ज़मींदार मुखिया!"

"फिर तुम अनाप-सनाप बकने लगे? चुपचाप पड़े रहो। इन झंझटों में पड़ने की तुम्हें क्या ज़रूरत है?" वृद्ध सेठ मँहगीराम ने कृत्रिम स्नेह के वशीभूत होकर डपट दिया। राघव मुस्कराता हुआ क्षीण स्वर में बोला—

"आप ठीक कहते हैं, सेठ जी।"

"ठीक तो कहता ही हूँ। लाख बार तुमको समझाया है कि बड़े लोगों के झगड़े में मत पड़ो। लेकिन, तुम मेरी बात सुनो तब न। अरे मैं तुम्हारा बूढ़ा बाप हूँ। जो कहूँगा, तुम्हारे भले के लिए कहूँगा।"

भीड़ में खड़े कुछ लोगों ने भी सेठ की हाँ में हाँ मिलायी। लेकिन वहाँ कोई ऐसा आदमी नहीं था जो बिसेसरसिंह के खिलाफ़ कुछ बोलता। स्पष्ट

था कि बिसेसरसिंह के इशारे पर ही राघव को मार लगी थी। और कुलदीप और मुनेश्वर, बिसेसरसिंह के दो कुत्ते थे, जो उनकी रोटी पर पलते और उनके इशारे पर गरीब का गला घोंट देने को तत्पर रहते। दोनों गँजेरी और अफ़ीमची थे। जाति के राजपूत होते हुए भी, रात के अँधेरे में, दुसाध-चमार के घर जाकर लबनी की लबनी ताड़ी पी जाते, वहीं पर किसी के घर में सेंध डालने की योजना बनाते, रात-भर चोरी करते और सुबह होते ही खादी का कुरता, खादी की धोती और गांधी टोपी पहनकर पाक-साफ इंसान बन जाते, छूआछूत का विचार रखते और मुखमंडल पर गहन-गाम्भीर्य लिए गाँववालों को अनावश्यक राय देते फिरते। उन्हें देखकर लगता जैसे आचार्य विनोबा जी की मंडली के दो जीवन-दानी रास्ता भूलकर इधर भटक आये हों।

"अच्छा सेठ जी, आप कृपा करके चुप रहिए।" मुनिदेव ने खीझकर कहा। सेठ जी ऐसे मौक़े पर चूकनेवाले नहीं थे। उन्होंने छूटते ही कहा—

"मैं तो चुप हो जाता हूँ लेकिन इसके दोस्त बनते हो तो कुछ दवा-दारू का प्रबंध भी करोगे या ऐसे ही तमाशा दिखाते फिरोगे? क्यों भाइयो! मैं ठीक कहता हूँ या ग़लत? अभी इसके लिए दवा-दारू का प्रबंध होना चाहिए। आप सब लोग चंदा इकट्ठा कीजिए और इसे मदनपुर अस्पताल ले जाइए।" सेठजी ने अपनी तरफ़ से दो रुपये निकालकर, बड़े गर्व से, मुनिदेव की ओर बढ़ाये।

"अपना रुपया अपनी जेब में रखिए।" मुनिदेव भड़क उठा। लेकिन जब भीड़ से आवाजें आयीं कि 'अरे ले क्यों नहीं लेते? ठीक तो कहते हैं सेठ जी,' तब मुनिदेव ने उपेक्षापूर्वक सेठ के हाथ से रुपये ले लिए। चन्द मिनटों में चौदह-पन्द्रह रुपये इकट्ठे हो गये। जग्गू चुपचाप खड़ा था। उसके दिमाग में तूफ़ान उठ रहा था। मदनपुर ले जाने के लिए जब मुनिदेव एक रिक्शा पर राघव को लेकर बैठ गया तब राघव ने जग्गू को अपने पास बुलाया और कहा—

"मैं जो काम नहीं कर पाया उसे आप ही कर सकेंगे जग्गू भाई। इसी-

लिए आपको बुलवाया है।"

"कौन सा काम ?"

"मुज़फ्फ़रपुर जाकर एस० डी० ओ० को''''अभी बात ख़त्म भी नहीं हुई थी कि बिसेसरसिंह भीड़ चीरते हुए रिक्शा के पास आ खड़े हुए। भीड़ खामोश थी।

राघव को देखते ही वह दुःख से भर उठे। उनका चेहरा वेदना, करुणा और सहानुभूति की रेखाओं से आक्रांत हो उठा। अनायास बोल उठे—

"अहा हा, क्या कर दिया उन बदमाशों ने। मुझे तो अभी ख़बर मिली है और भागा चला आ रहा हूँ। लेकिन इसे रिक्शा पर बैठाकर कहाँ लिये जा रहे हो ?" अंतिम वाक्य उन्होंने चौंककर पूछा।

"मदनपुर अस्पताल।" मुनिदेव ने जल-भुनकर कहा। राघव के चेहरे पर अब भी व्यंग्यात्मक मुस्कराहट थिरक रही थी। बिसेसरसिंह अधिकार-पूर्वक गरज उठे—

"नहीं जाना होगा मदनपुर अस्पताल।"

"क्यों ?" मुनिदेव ने बिगड़कर पूछा।

"हम लोग क्या मर गये हैं कि तुम लौंडों को मनमानी करने देंगे ? बेचारा राघव घाव की पीड़ा से मरा जा रहा है और तुम इसे रिक्शा पर बैठाकर, इस धूप में, चार मील दूर मदनपुर लिये जा रहे हो। इसे मारना चाहते हो क्या ? तुम लोगों को थोड़ी भी अक्ल नहीं है। बिलकुल पागल हो गये हो ?"

"तो क्या मैं यहीं पड़ा-पड़ा मर जाऊँ ?"

"नहीं भइया राघव। तुम्हें मरने कौन देगा ? मैं किस दिन काम आऊँगा ? डाक्टर यहीं आयेगा।" बिसेसरसिंह ने पुचकारते हुए कहा।

नहीं चाहते हुए भी राघव को रिक्शा से उतरना पड़ा। डाक्टर को बुलाने के लिए दो आदमी साइकिल पर दौड़ाये गये। सब लोग जानते थे कि बिसेसरसिंह ने ही राघव की यह दशा करवायी है, सब लोग समझते थे कि बिसेसरसिंह डाकू और जुल्मी आदमी है लेकिन पता नहीं क्यों, बिसेसर-

सिंह के सामने कोई उनकी बात का विरोध नहीं कर पाता। और विरोध करनेवाला भी झख मारकर वही काम करता जो बिसेसरसिंह करवाना चाहते। अजीब ताकत थी उस आदमी में। मन ही मन सभी उनसे भय खाते, कभी न कभी हर आदमी को उनसे जरूरत पड़ जाती और वे हर आदमी की मदद करते। समर्थ और सत्तावान का विरोध करने के लिए वैरागी का मन, शूर का तन और संतोष का धन चाहिए।

राघव को सहानुभूति और सक्रिय सहायता की आवश्यकता थी। बिसेसरसिंह ने तुरंत आधा सेर गरम दूध मँगवाया और उसमें हल्दी मिलाकर राघव को अपने हाथों से पिलाया। उन्होंने पास ही के खादी भण्डार से एक जोड़ी अच्छी धोती और एक बनी-बनायी गंजी मँगवायी, राघव से ज़बरदस्ती कपड़े बदलवाये और वे बहुत ही सहानुभूतिपूर्वक, अपने स्वाभाविक पितृ-भाव से थोड़ी-थोड़ी देर पर हाल-चाल पूछते रहे। डाक्टर ने आकर मरहम-पट्टी बाँध दी। बिसेसरसिंह ने जरूरत न होने पर भी एक सूई दिलवा दी और सारा खर्च, बिना किसी हिचक के स्वयं किया। विरोधी होने पर भी राघव आभार से दब गया।

डाक्टर साहब को कुछ दूर तक बिसेसरसिंह स्वयं पहुँचा आये और पन्द्रह-बीस मिनट बाद लौटकर आये तो राघव के पास देर तक बैठे रहे। जग्गू चुपचाप एक ओर बैठा यह सब कुछ देख रहा था और न जाने क्या कुछ समझने का प्रयत्न कर रहा था। बिसेसरसिंह का चरित्र एक अछोर-रहस्य बनकर जग्गू की बुद्धि का उपहास कर रहा था। उससे अधिक नहीं सहा गया तो उठकर चलने को तैयार हुआ कि बिसेसरसिंह बोल उठे—

"चल रहे हो क्या ?"

"जी हाँ।"

"चलो, मैं भी चलता हूँ।"

दोनों चुपचाप चलते रहे। स्टेशन पीछे रह गया, होमसिगनल भी निकल गया। लेकिन दोनों चुप रहे। अंत में जग्गू से नहीं रहा गया।

"आपने ऐसा अन्याय क्यों किया ?"

"कैसा अन्याय ?" बिसेसरसिंह ने सहज-साधारण ढंग से पूछा। जग्गू उनके इस अभिनय पर घृणा से फुत्कार कर उठा---

"आपने मालगाड़ी लूटकर हज़ारों बाढ़-पीड़ितों के पेट पर लात मारी, गाँववालों के घर की तलाशी करवाकर उन्हें अपमानित करवाया और बेचारे राघव को बिना कसूर के पिटवाकर उसे अधमरा कर दिया। फिर भी पूछते हैं कैसा अन्याय ?"

बिसेसरसिंह ठठाकर हँस पड़े। बोले---

"चलो, तुम में कुछ समझने की बुद्धि तो आयी। लेकिन जग्गू भाई, कोई किसी पर अन्याय नहीं करता। हर आदमी, बहुधा अपनी जान बचाने की कोशिश में, अनजाने ही दूसरों का नुकसान कर बैठता है। यही संसार का नियम है।"

"यह कौन-सा नियम है कि दूसरों का हक छीन लो और जो इसके खिलाफ़ ज़ुबान खोले उसकी ज़ुबान काट लो। आपको ऐसी बात बोलते शर्म भी नहीं आती ?"

"यही आज का नियम है जग्गू भाई। सरकार मुझसे जमींदारी छीन रही है और यदि मैं इन्कार करूँ तो ज़ुबान दूर, जिन्दगी से भी हाथ धोना पड़े। फिर मुझे भी तो अपना और अपने परिवार का भविष्य देखना है।"

जग्गू फिर निरुत्तर हो गया। घृणा के अतिरेक से उसका सिर घूमने लगा। 'बिसेसरसिंह आदमी नहीं, हैवान है। इसकी सारी बातें हैवानियत से भरी हैं। इसलिए इससे मुँह लगाना व्यर्थ है।' ऐसा सोचकर वह चुप हो रहा। गुमटी पर वे दोनों अलग हो गये। जग्गू अपनी दुर्बलता पर मन ही मन मरा जा रहा था। शाम हो चुकी थी। आकाश में घना-गहरा-काला बादल व्याप गया था। हवा गुम थी। दूर-पास से मेंढकों के टर्र-टों-टर्र-टों की आवाज़ आ रही थी। फिर पानी बरसेगा---यह अनुमान लगाकर जग्गू जल्दी-से-जल्दी दिशा-मैदान से फरागत होने के लिए लोटा लेकर खेत की ओर चला गया। लौटकर उसने देखा कि ब्रह्मदेव गुमटी के आगे खाट पर बैठा है।

"कहो ब्रह्मदेव, कब से बैठे हो ?" लोटा रखकर अँगोछा से हाथ पोंछता

हुआ जग्गू बोला—

"मालकिन ने कहा है कि आप भी घर पर ही खाना खायें।"

"नहीं भइया, मैं तो आज बीस साल से खुद बनाता हूँ और खाता हूँ। बाहर कहीं नहीं खाता।"

"बाहर खाने के लिए कौन कहता है ? वह तो आपका ही घर है।"

"सो तो ठीक है लेकिन, दूसरे के हाथ का बनाया भी मैं नहीं खाता। इसलिए माफ़ कर दो। और आज तो मेरा मन भी ठीक नहीं है। वैसे भी कुछ खाने की इच्छा नहीं है।"

ब्रह्मदेव चुपचाप लौट गया। हलकी-हलकी बूँद पड़ने लगीं थीं इसलिए उसने खाट गुमटी के भीतर कर ली और हाथ-बत्ती जला ली। खाट पर लेटे-लेटे, उसके मन में बहुत से विचार आने लगे—'आज तक उसने जो कुछ देखा-सुना क्या वह सब झूठ था। बचपन से उसने जो सच्चाई और सरलता की जिन्दगी बिताई सो क्या ग़लत किया ? क्या उसका जीवन व्यर्थ ही बीता ? समाज में छल-प्रपंच, स्वार्थ, घृणा और गन्दगी देखकर उसने अपने को समाज से अलग रखा। लोग अच्छे नहीं हैं, लोग अच्छे नहीं हो सकते, वह स्वयं अच्छा है, पवित्र है इसलिए उसे अपनी पवित्रता बनाये रखनी चाहिए। उसे सबों से अलग रहना चाहिए, दलदल के पास जाकर वह दल-दल में फँसेगा। लेकिन······कल से क्या हो रहा है ? आगे क्या होगा ? वह अपनी पवित्रता, अपनी ईमानदारी कहाँ खो बैठा ? उसे क्या हो गया है ? वह बोलता क्यों नहीं ? चीखकर, पुकारकर कहता क्यों नहीं कि दोषी कौन है ? क्या वह इसीलिए अच्छा बना रहा चूँकि बुरा बनने का मौक़ा नहीं मिला ?" जग्गू बहुत देर तक घुटन से तड़फड़ाता रहा लेकिन उसे कोई राह नहीं मिली। बेचैनी बढ़ती ही गयी। वह गुमटी के बाहर निकल आया। बूँदा-बाँदी हो ही रही थी। वह पानी में भीगता हुआ चक्कर काटता रहा लेकिन उसके मन की बेचैनी शांत नहीं हुई। रात हो आयी थी। वह फिर गुमटी में लौट आया और रामायण खोलकर सस्वर पढ़ने लगा—

मातु मंदि मैं साधु सुचाली, उर अस आनत कोटि कुचाली।
करइ कि कोदव बालि सुसाली, मुकता प्रसव कि संबुक काली।
सपनेहुं दोसक लेसु न काहू, मोर अभाग उदधि अवगाहू...

जग्गू इसके आगे नहीं पढ़ सका वह आँखें बंद किए पड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू की धार बह चली। विषाद से हृदय फटने लगा। लेकिन वह समझ नहीं पा रहा था कि वह चाहता क्या है? संसार में उसे अपना कहने वाला कोई नहीं था—भाई-बहन, माँ-बाप सभी जा चुके थे, उसकी नजर के सामने जो कुछ भी आया—जाने के लिए ही आया; और इस अस्थिरता ने उसके मन में जो असमय ही वैराग्य-भाव भर दिया था वह, आज अकेले में, उसे शत सहस्र रूप धरकर डँसने लगा। समाज से भागनेवाला अपनी छाया से भी डरता है। आज जग्गू की अपनी आत्मा ही परायी बनकर उसका पीछा कर रही थी।

"बाबू जी!"

ब्रह्मदेव की आवाज़ सुनकर जग्गू चौंक उठा।

"मालकिन कहती हैं कि यदि आप नहीं खायेंगे तो वे भी नहीं खायेंगी।"

"ऐं...अच्छा...अच्छा चलो चलता हूँ।" अपनी स्थिति छिपाने की शीघ्रता में वह घबराकर अनजाने ही ब्रह्मदेव का आग्रह स्वीकार कर बैठा। हाथ-बत्ती की रोशनी में ब्रह्मदेव उसकी आँखें और चेहरा न देख ले इसलिए जग्गू जल्दी से बाहर अंधेरे में निकल आया। ब्रह्मदेव चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

चारों ओर सन्नाटा और अंधकार व्याप रहा था। झींसी पड़ रही थी। दिन डूबते ही गाँव वाले खा-पीकर सोने की तैयारी में लग जाते हैं। धान की रोपनी भी सबकी खत्म हो चुकी थी। इसलिए, काम के नाम पर, एक दूसरे के सम्बन्ध में गप्पें मारना और लम्बी तानकर सो रहना—यही दिन-चर्या रह गयी थी। जग्गू को उस रात का सन्नाटा बड़ा भयावना और वीभत्स लग रहा था।

जग्गू को देखते ही मालकिन मुस्कराने लगी। बोली कुछ नहीं। खाना परोसकर ले आयी। जग्गू भी चुपचाप खाने लगा।

"मुझे रसोई बनानी आती नहीं है इसलिए, आपको यह खाना अच्छा नहीं लगता होगा।"

जग्गू चुपचाप खाता रहा। उसके मन में तो तूफ़ान उठ रहा था। शादी-ब्याह या श्राद्ध-कर्म के अवसर पर ही वह किसी के यहाँ खाने जाया करता, अन्यथा नहीं। और आज वह एक अनजान, विजातीय स्त्री के हाथ की बनी रसोई, उसी के सामने बैठकर, चुपचाप ग्रहण कर रहा था। अचानक ही क्या हो गया कि बिल्कुल नयी-नयी बातें उसे देखने-समझने को मिल रही थीं। लेकिन, उसके पास इसका कोई जवाब नहीं था--कोई तर्क नहीं था कि वह ऐसा क्यों किये जा रहा था? वह निमित्त मात्र बनकर रह गया था।

"आप सोच रहे हैं कि कहाँ से यह बोझ बनकर आ पड़ी।" मालकिन ने मुस्कराते हुए कहा। जग्गू चौंक उठा--

"नहीं तो। बल्कि बोझ तो मैं हूँ कि आपका खाना खा रहा हूँ।"

"यह तो मजबूरी है।" मालकिन ने कहा। जग्गू ने सिर उठाकर मालकिन को देखा। मालकिन बोली---

"मैं इतना तो समझ ही सकती हूँ कि आप बे-मन से खाना खा रहे हैं।" जग्गू का स्वाभिमान जागृत हो उठा। एक नारी ने उसे चुनौती दी थी। वह अपनी परेशानियों को क्षण भर के लिए भूल बैठा और किंचित दम्भ से हँसता हुआ बोला---

"आप भ्रम में पड़ी हैं मालकिन! मैं अपने मन का आदमी हूँ। जो ठीक समझता हूँ, वही करता हूँ। मजबूरी के नाम पर कुछ करनेवाले ढोंगी होते हैं।"

"एकाध पूरी और लीजिए।"

"नहीं, अब कुछ नहीं चाहिए।"

"आपको खाना अच्छा नहीं लगा?"

"बहुत बढ़िया बना है। ऐसा भोजन मेरे भाग्य में कहाँ ?"

"क्या आप हमेशा अकेले रहते हैं ?"

"हाँ।" संक्षिप्त उत्तर देकर जग्गू हाथ-मुँह धोने के लिए उठ गया। उस समय ज़ोर की वारिश होने लगी थी।

ब्रह्मदेव के हाथ से सुपारी-लवँग लेकर जग्गू को खुद देती हुई मालकिन ने बड़े निश्छल भाव से पूछा—

"आपने शादी क्यों नहीं की ?"

जग्गू हँसता हुआ टालने के भाव से बोला—

"शादी करता ही क्यों—यही समझ में नहीं आया इसीलिए नहीं की।"

"बहाने मत बनाइए।"

"मैं ठीक कह रहा हूँ मालकिन।"

"देखिए, मैं आपकी मालकिन नहीं हूँ। मेरा नाम है शारदा। आप शारदा कहकर पुकारिए।"

जग्गू इस लड़की की निश्छलता और सरलता पर मुग्ध होता जा रहा था। गाँव में ऐसी वाचाल और निर्भय लड़कियाँ नहीं होतीं। वे तो दूसरों के सामने बोल भी नहीं पातीं। जग्गू ने गाँव के पुस्तकालय से लेकर कुछ उपन्यास पढ़े थे। जग्गू को लग रहा था, शारदा लड़की नहीं है, उपन्यास की कोई पात्र है। जग्गू ने हँसते हुए कहा—

"अब शारदा कहकर ही बुलाऊँगा।"

"अच्छा एक बात कहूँ ?" शारदा ने हँसती हुई आँखों से जग्गू की ओर देखते हुए पूछा—"आप स्वीकार करेंगे ?"

"पहले बात तो कहिए।"

"नहीं, पहले वचन दीजिए।" शारदा के स्वर में मान करवाने की ध्वनि थी। जग्गू, न जाने क्यों, सावधान हो गया। घटनाओं की बाढ़ से वह अस्थिर हो उठा था।

"देखिए, शारदा जी···?"

"'जी' नहीं,···केवल शारदा···", शारदा ने बात काटते हुए कहा—

"मैं आपसे छोटी हूँ। छोटी बहन को भी कहीं 'जी' कहकर बुलाया जाता है ?" जग्गू क्षण-भर अवाक् देखता रह गया उस धृष्ट लड़की को ! लेकिन, उसकी स्निग्धता ने जग्गू में करुणा भर दी। वह अपनी हार मानता हुआ बोला—

"कहिए, क्या बात है ?"

"कल से आप यहीं, इस घर में, रहा कीजिए।"

"क्यों ?"

"हर वक्त कोई-न-कोई आता ही रहता है।"

"कौन आता है यहाँ ?"

"आपके गाँववाले आपको ढूँढने आते हैं।"

"लेकिन, गाँववालों को तो पता है कि मैं घर पर नहीं, गुमटी पर ही रहता हूँ। फिर यहाँ क्या करने आते हैं ?" क्रोध मिश्रित कौतूहल से जग्गू की भृकुटी टेढ़ी हो गयी, आँखें छोटी हो गयीं और होंठ खुले के खुले रह गये। शारदा ने कोई जवाब नहीं दिया। जग्गू वहीं बरामदे में इधर-उधर चक्कर काटने लगा।

"आपको मेरे चलते काफी परेशानी उठानी पड़ रही है।" शारदा ने दयनीय स्वर में कहा। जग्गू विचलित हो उठा। पता नहीं क्यों, जग्गू इस लड़की से मन ही मन स्नेह करने लगा था। उसमें मोह उत्पन्न हो गया था। उसने जरा झिझकते हुए कहा—

"नहीं, परेशानी की तो कोई बात नहीं है लेकिन, मुझे तो ड्यूटी भी करनी होती है, इसीलिए थोड़ी चिन्ता में पड़ गया।"

"तो छोड़िए, मैं निबट लूँगी आपके गाँववालों से। चन्द रोज़ की ही तो बात है। फिर तो 'वह' आ ही जायेंगे।" आत्मविश्वास और आकस्मिक उल्लास से शारदा मधुर हो उठी।

"आपने अब तक खाना नहीं खाया ?"

"खा लूँगी।"

"अच्छा तो आप खाना खाइए, मैं चलता हूँ।"

"इस बारिश में ?"

"अरे, बारिश तो रोज़ ही होती रहती है।" और अंगोछा सिर पर रखकर जग्गू जल्दी-जल्दी आँगन पार करता हुआ घर के बाहर हो गया।

पानी बरसे जा रहा था। गाँव में कुत्ते भूँक रहे थे। जग्गू ने देखा—दूर पर बिसेसरसिंह के दालान में लालटेन की रोशनी झिलमिल कर रही थी। कहीं कोई पंचम स्वर में बारहमासा गा रहा था जिसकी आवाज़, वर्षा के कारण, अस्पष्ट और कातर हो रही थी।

इन तमाम बातों से, इन तमाम घटनाओं से जग्गू का मन भींगता जा रहा था। उसके मन में एक अजीब भाव जन्म ले रहा था—नयापन का भाव, डूबने का भाव, सहने और सामना करने का भाव, अपने और अपनी इन्द्रियों को समझाने का भाव और ज़िन्दगी की मुसीबतों में भींगने का भाव। गरज़ यह कि वह ऊब और तटस्थता से तंग आकर दिलचस्पी और जिज्ञासा के अछोर आकाश में उड़ जाने को अपने पंख तौल रहा था।

५

सुबह होते ही जग्गू, नित्यक्रिया से निवृत होकर, गुमटी पर ठहरने के बजाय अपने घर पहुँचा। शारदा चाय पी रही थी। जग्गू को देखते ही हर्ष से बोल उठी—

"आपकी ही याद कर रही थी।"

"मेरी ?"

"हाँ, सोच रही थी कि आप आ जाते तो साथ-साथ चाय पीते। बड़ा मजा आता। अभी बनाती हूँ। चाय का पानी बिल्कुल तैयार है।"

"नहीं, नहीं, रहने दीजिए। मुझे चाय पीने की आदत नहीं है।"

"आप बैठिए तो।" और भागकर मिनटों में एक कप चाय बनाकर ले आयी। बोली—

"मुझे बचपन से चाय पीने की आदत है। 'उन्हें' तो चाय से इतना प्रेम है कि दिन-भर में बीस-पच्चीस कप पी जाते हैं। आप बिल्कुल नहीं पीते ?" शारदा इतनी शीघ्रता से बोल रही थी कि जग्गू उसकी चंचलता ही देख रहा था। शारदा ने अपना प्रश्न दुहराया तो उसका ध्यान टूटा। झेंपता हुआ बोला—

"कभी-कभी जब स्टेशन जाता हूँ तब मुनिदेव पिला देता है।"

"यह मुनिदेव कौन हैं ?"

"मेरे बचपन का साथी है। स्टेशन पर सिलाई का काम करता है। वह मुझे जबर्दस्ती चाय पिला दिया करता है।"

"मुझे भी 'उन्होंने' ही यह आदत डाल दी। उनके लिए बनाकर लाती थी तो मुझे भी पिला दिया करते थे। क्या करती ? पी लेती थी। और अब एक दिन चाय नहीं मिले तो मन न जाने कैसा होने लगता है।"

"आप""""बचपन से ही अपने""""पति को जानती हैं ?" जग्गू ने झिझकते हुए पूछा।

वह सहज सरलता से बोली—"नहीं, जब मैं बारह साल की थी तब से।"

"अच्छा ?"

"वे मेरे घर आया करते थे। मेरे बड़े भाई के साथी थे। मुझे वे पगली कहकर बुलाया करते। मैं उनसे लड़ती भी बहुत थी। हालांकि वे मुझसे दस साल बड़े हैं लेकिन, हम दोनों खूब लड़ते थे—बन्दर की तरह।" कहकर शारदा खिलखिलाकर हँसने लगी। जग्गू को लग रहा था कि हो-न हो इस सरल लड़की को छला गया है, यह बिल्कुल भोली और निश्छल लड़की है। पढ़े-लिखे अच्छे घर में पली मालूम देती है लेकिन, इसे दुनिया की बातों का कोई अनुभव नहीं है।

"वे करते क्या हैं ?" जग्गू ने पूछा। शारदा उसी सरलता से बोली—

"यह तो मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं है। जयपुर में तो वे आठ साल से रहते हैं। कुछ दिनों तक शायद पढ़ते रहे, उसके बाद किसी चीज़ का बिजनेस करने लगे। अब तो आप देख ही लीजिएगा कि…"

"जग्गू भाई हैं ?" अभी शारदा ने वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि बाहर से किसी की आवाज़ आई।

जग्गू ने बाहर जाकर देखा कि मुनेश्वर उचक्के की तरह, दरवाज़े से, भीतर का दृश्य देखने की कोशिश कर रहा था।

"क्या है ?" जग्गू ने सख्त आवाज़ में पूछा।

"कुछ नहीं, वैसे ही मिलने चला आया।" मुनेश्वर ने झेंपकर खीसें निपोड़ते हुए कहा कि ब्रह्मदेव बोल उठा—

"यह तो कल से चार बार आ चुके हैं।"

"क्या काम है ?" जग्गू ने अपना प्रश्न दुहराया।

"आप भी अजीब आदमी हैं, जग्गू भाई ! क्या अड़ोसी-पड़ोसी से भेंट-मुलाकात करने भी नहीं आयें लोग ?"

"लेकिन, आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि मैं यहाँ कभी नहीं रहता। हमेशा गुमटी पर रहता हूँ। फिर वहाँ तो आपने कल से एक बार भी दर्शन नहीं दिया और यहाँ चार बार धमक गये।"

"चूंकि आपका घर रास्ते में पड़ता है इसलिए, आते-जाते पूछ लेता हूँ। यदि इसमें आपको कोई नुकसान होता है तो अब नहीं पूछूँगा।"

"जी हाँ, मुझे नुकसान होता है। आप अपनी राह जाया कीजिए। 'मन में आम बगल में ईंट' वाली बात मैं भी समझता हूँ। मैं राघव नहीं हूँ। समझे?"

"आप तो बेकार ही नाराज़ हो रहे हैं।"

"जी हाँ, मैं तो व्यर्थ ही नाराज़ होता हूँ लेकिन, आपका मेरे घर का चक्कर लगाना बड़ा सार्थक है। गुण्डा कहीं का!" जग्गू आँखें तरेरता हुआ बोला। मुनेश्वर को भी क्रोध आ रहा था। उसने भवें टेढ़ी करते हुए कहा—

"मुँह सम्हाल के बोलिए नहीं तो···" अभी मुनेश्वर ने वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि जग्गू का भरपूर तबड़ाक उसकी बायीं कनपट्टी पर पड़ा। क्षण-भर के लिए तो उसकी आँखों के आगे बिल्कुल ही अँधेरा छा गया और काफी देर तक सामने चिनगारियाँ दीखती रहीं। बायीं हथेली से अपनी कनपट्टी पकड़े वह यह कहता-कहता गुर्राता हुआ चला गया—

"इसका नतीजा बहुत बुरा होगा सो जान लीजिए।" जग्गू दाँत पीसता हुआ उसे जाते हुए देखता रहा। ब्रह्मदेव घबराया हुआ खड़ा था। जग्गू ने घूमकर देखा—शारदा दरवाज़े पर खड़ी अपने मुँह में कपड़ा ठूँसकर हँसी रोकने की कोशिश कर रही थी। जग्गू को अपनी ओर आते देखकर वह हँसती हुई बोली—

"बेचारा मुझसे प्रेम करने आया था लेकिन, बहुत ही बेवकूफ बन गया।" शारदा की बात सुनकर जग्गू का क्रोध जाता रहा। उसे भी हँसी आ गयी। शारदा की बातें और उन्हें कहने का ढंग अब जग्गू के लिए नया नहीं था। इसलिए, वह भी हँसता रहा। आँगन में पहुँचकर शारदा ने हँसते

हुए कहा--

"अब बेचारा इधर कभी नहीं आयेगा।"

जग्गू अचानक गम्भीर हो उठा। उसके दिमाग में कई आशंकाएँ कौंध गयीं। मुनेश्वर चोर ही नहीं, नीच प्रकृति का आदमी था। जग्गू ने चिन्ता के स्वर में कहा--

"नहीं शारदा, उस उचक्के से बेफिक्र होना खतरे से खाली नहीं है। वह बहुत ही बदमाश और पतित आदमी है।"

"तब क्या होगा?" शारदा अचानक ही घबरा उठी।

"होगा क्या, थोड़ी सावधानी से रहना होगा।"

कुछ देर तक जग्गू वहीं बैठा रहा। फिर चुपचाप गुमटी पर चला आया। वहाँ अनमने भाव से वह इधर-उधर चक्कर काटता रहा। उसका मन कई तरह की आशंकाओं और परेशानियों में ऊब-चूभ करता रहा। कभी वह रामायण खोलकर पढ़ने बैठ जाता तो कभी भागवत गीता के श्लोक गुनगुनाने लगता, कभी खाट पर आँखें मूँदे पड़ा रह जाता तो कभी शून्य दृष्टि से आकाश में बादलों की दौड़-धूप को निरुद्देश्य देखता रह जाता। घुटन की तीव्रता से उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल होने लगे, सिर चक्कर खाने लगा और तब वह स्वस्थ होने के विचार से फिर खाट पर आँखें बन्द किये पड़ गया। उसकी आँखों में नींद नहीं थी फिर भी पलकें झुकी पड़ रही थीं। वह कोई बात सोच नहीं पा रहा था। फिर भी उसकी सारी इन्द्रियाँ सजग हो रही थीं। अचानक घटित हो जानेवाली एक साधारण घटना मनुष्य के जीवन-भर के अनुभवों को झुठलाकर उसके जीवन में एक नया मोड़ पैदा कर देती है। वास्तव में, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त घटित होनेवाली घटनाएँ ही मनुष्य को विकास या पतन की ओर ले जाती हैं--अनुभव या ज्ञान तो फल है। ऐसी घटना, जो मनुष्य के हृदय को छूकर उसमें जिज्ञासा, घृणा और रंगीनी भर दे, मनुष्य के जीवन में घातक अवस्था उत्पन्न कर देती है।

जग्गू का विश्वास, उसका चरित्र और उसके अनुभव, पिछले दिनों

घटित घटनाओं से उत्पन्न तीव्र भावों से उलझ रहे थे लेकिन, नयापन जवान था और पुरातन अत्यधिक वृद्ध, रूखा ! बेचारा पुरातन हार पर हार खाता जा रहा था। जग्गू का मन नयापन की रंगीनियों में डूब रहा था···'सभी अपने अस्तित्व की रक्षा में लगे हैं; सभी अपने परिवार के लिए, पाप-पुण्य का भेद किये बिना सुख-ऐश्वर्य समेटने में जुटे हुए हैं; सभी बेहाल हैं अपनी-अपनी शगल में······लेकिन वह क्यों घसीटा जा रहा है ?······उसे क्या लाभ है ?······शारदा, बिसेसरसिंह, राघव, मँहगीराम, मुनेश्वर······ सभी अपने-अपने मतलब में डूबे हुए हैं···और वह व्यर्थ ही घसीटा जा रहा है······अब वह अलग भी नहीं हो सकता······लेकिन अपने अस्तित्व से उन लोगों को परिचित रखना आवश्यक है। वह केवल तमाशा देखनेवाला नहीं बना रह सकता कि···'खट्-खट्-खटाक्, खट्-खट्-खटाक्' की ध्वनि से जग्गू की तन्द्रा टूट गयी। हड़बड़ाकर बाहर आया तो देखा कि पश्चिम जानेवाली डाकगाड़ी पास हो गयी। उसने फाटक भी नहीं बन्द किये थे। अपनी स्थिति पर उसे हँसी आ गयी।

वह फिर गुमटी में पहुँचा। उसका मन अभी भी घुटन से तड़फड़ा रहा था। वहाँ उससे ठहरा नहीं गया। लाइन के दोनों ओर के फाटक बन्द करके वह चुपचाप स्टेशन की ओर चल दिया।

मुनिदेव चिउरा-दही का नाश्ता कर रहा था। जग्गू को देखते ही बोला—"आओ आओ, तुम भी बैठ जाओ।"

"तुम खाओ। मुझे भूख नहीं है," कहकर जग्गू वहीं चौकी पर बैठ गया। मुनिदेव एक भरपूर कौर उठाकर खाने ही जा रहा था कि जग्गू का स्वर सुनकर थमक गया। हाथ का ग्रास पत्तल पर रखता हुआ वह क्षण-भर जग्गू को देखता रहा, फिर बोला—

"आज बहुत उदास लग रहे हो। क्या बात है ?"

"कुछ नहीं।" कृत्रिम हँसी हँसता हुआ जग्गू बोला। लेकिन मुनिदेव उसकी विषादपूर्ण हँसी सुनकर चुप नहीं रह सका—

"कोई बात तो जरूर है। मुझसे छिपाते हो।"

"अच्छा, पहले तुम नाश्ता कर लो फिर बात करना।"

"नहीं, पहले तुम बताओ कि बात क्या है?" कहकर मुनिदेव अपनी दोनों बाँह अपने दोनों ठेहुनों पर रखकर सत्याग्रह करने-जैसी मुद्रा में बैठ गया। जग्गू को सचमुच हँसी आ गयी। बोला—

"वैसे ही ज़रा मन घबरा रहा था। कुछ परेशानी है इसलिए तुम्हारे पास चला आया हूँ। नाश्ता कर लो, फिर सारी बातें बताऊँगा।"

"मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि भगवान शंकर की शरण में आ जाओ। लेकिन तुम मानो तब तो। योगी होना और शंकर की बूटी से पर-हेज रखना—ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।" मुनिदेव उछलकर खड़ा हो गया और छप्पड़ में से कागज़ की पुड़िया निकालकर उसे खोलता हुआ बोला—

"फस्ट क्लास का माजूम है। इसे खाते ही सारी परेशानियाँ और थकान छूमन्तर हो जायेंगी। लो खाओ······देखो ज़िद्द मत करो!······ खालो!" जग्गू ने अनिच्छापूर्वक माजूम लेकर खा लिया।

मुनिदेव जब नाश्ता कर चुका तब दोनों मित्र काफ़ी देर तक अकेले में बातें करते रहे। जग्गू ने शुरू से लेकर उस दिन तक की सारी घटनाएँ मुनि-देव को बता दीं। मुनिदेव ने कहा—

"उस लड़की को घर में रखकर तुमने अच्छा नहीं किया। खैर, अब तो उसकी देखभाल तुम्हें करनी ही होगी। मुनेश्वर बहुत ही बदमाश आदमी है। वह ज़रूर घात में लगा रहेगा। पता नहीं क्या कर बैठे। लेकिन, बिसेसरसिंह को तुम अपनी मुट्ठी से कभी नहीं निकलने दो।"

जग्गू के मस्तिष्क पर माजूम का असर छाने लगा। वह स्टेशन से सीधे बिसेसरसिंह के घर पहुँचा। दालान में बिसेसरसिंह का एकमात्र लड़का सहदेव, मुँह में सिगरेट दाबे, बन्दूक की नली साफ़ कर रहा था।

"तुम्हारे बाबूजी कहाँ हैं?" जग्गू ने पूछा।

"बैठिए, अभी आते हैं।" सहदेव जग्गू की ओर बिना कोई ध्यान दिये अपने काम में लगा रहा। जग्गू को मन ही मन हँसी आ गयी। 'बाप से ज़्यादा

तो बेटा ऐंठा हुआ है। मुफ्त का माल खाने को मिलता है न।' जग्गू ऐसी ही बातें सोचता हुआ कुछ देर बैठा रहा लेकिन, बिसेसरसिंह नहीं आये। उसने फिर कहा—

"बन्दूक बाद में साफ कर लेना। ज़रा अपने बाबूजी को बुला लाओ।"

सहदेव ने झल्लाहट के स्वर में कहा—

"आप अजीब आदमी हैं। कह तो दिया कि अभी आ रहे हैं। बहुत जल्दी है तो स्वयं बुला लाइए।" और फिर वह अपनी बन्दूक साफ करने लगा। जग्गू को क्रोध आ गया। उसने तमककर कहा—

"कैसा ऐंठा हुआ लड़का है। मालूम पड़ता है जैसे लाट साहब हो। अरे, यह शेखी मुझ पर नहीं चलेगी। मैं खुद ही बहुत टेढ़ा आदमी हूँ। समझे!"

"अरे जग्गू भाई! कब से बैठे हो? खबर क्यों नहीं करवा दी?" बिसेसरसिंह ने दालान में पहुँचते ही जग्गू को देखकर तपाक से पूछा। जग्गू जला-भुना बैठा था। बोला—

"खबर देने को तो आपके लाड़ले बेटे से कब से कह रहा हूँ लेकिन, यह सुने तब न।"

"बेवकूफ़ है! इतना बड़ा हो गया लेकिन, इससे यह भी नहीं पार लगता कि खेती-गृहस्थी के काम में अपने बूढ़े बाप की मदद करे।" सहदेव अपने बाप की बात सुनकर मुँह बनाता हुआ ऐंठकर चला गया। बिसेसरसिंह अपने मन की ग्लानि छिपाने के लिए हँसकर अपने बेटे को जाते हुए देखते रहे। फिर बोले—

"किधर चले हो जग्गू भाई?"

"आपके पास ही आया हूँ। कुछ ज़रूरी काम है।" जग्गू ने गंभीर स्वर में कहा।

"आज्ञा करो।"

"आपने जो यह नीच पेशा शुरू किया है उसे छोड़ दीजिए।"

"नीच पेशा? पागल हो गये हो? तुम तो ब्राह्मण हो। अभी उसी

रोज़ तो ब्रह्मस्थान पर पंडित जी ने कथा कहते हुए उपदेश किया था कि कोई कर्म अपने में अच्छा या बुरा नहीं होता, कर्त्ता की भावना देखी जाती है। मेरी नीयत खराब नहीं है। मैं हमेशा गरीबों की मदद करने को तैयार रहता हूँ।"

"हज़ारों गरीबों को लूटकर, उन्हें भूख से तड़पाकर, दो-चार ग़रीबों के आगे तांबे के चंद टुकड़े फेंक देते हैं—वह भी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए।" जग्गू घृणा से उबल रहा था।

"फिर वही बात ! कौन निःस्वार्थ भाव से काम करता है ? क्या तुम मुफ्त में गुमटी पर पहरा देते हो ?"

"खैर, यह सब बेकार की बातें जाने दीजिए। मैं जो कुछ कहने आया हूँ उसे कान खोलकर सुन लीजिए—यदि आपने यह पेशा नहीं छोड़ा तो···" कि इसी समय कुलदीप वहाँ पहुँच गया जिसे देखकर जग्गू चुप हो रहा।

"क्या बात है ?" बिसेसरसिंह ने स्नेह से पूछा। कुलदीप कभी जग्गू को तो कभी बिसेसरसिंह को देखता रहा लेकिन, बोला कुछ नहीं।

"अरे, जग्गू भाई अपना ही आदमी है। बोलो क्या खबर लाये हो ?" बिसेसरसिंह ने किंचित हँसते हुए कहा।

"बात यह है कि···राघव ने हमारे और मुनेसर के खिलाफ़ फौजदारी दायर कर दी है और·····और एस० डी० ओ० को सब बात भी बता दी है।" जग्गू सिर नीचा किये कुलदीप की बातें सुन रहा था कि बिसेसर-सिंह की हँसी सुनकर चौंक उठा। जग्गू ने सिर उठाकर देखा तो उसके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। इतनी भयानक बात सुनकर भी बिसेसर-सिंह हँस रहे थे। फिर वह अचानक गंभीर हो गये और बोले—

"देखा जग्गू भाई ! डाक्टर बुलवाकर उसकी मरहमपट्टी करवायी और वह नमकहराम मेरे ही खिलाफ साजिश करने लगा। यही दुनिया है।"

"लेकिन, उस बेचारे को भी तो आपके आदमियों ने पीटते-पीटते अध-मरा कर दिया था।" जग्गू ने जुगुप्सा के भाव से कहा। बिसेसरसिंह फिर हँसने लगे। जग्गू उनका मुँह देखता रहा और सोचता रहा—'कैसा विचित्र

आदमी है !' कि बिसेसरसिंह ने हँसते हुए कहा—

"मेरे तो सभी अपने हैं। क्या तुम मेरे नहीं हो ? लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं हुआ कि जो कुछ तुम कर आओ उसकी जिम्मेवारी मेरी हो जाये।" कुलदीप थोड़ी घबराहट के साथ बिसेसरसिंह को देख रहा था। लेकिन बिसेसरसिंह के चेहरे पर स्थित-प्रज्ञता मुखरित हो रही थी। उन्होंने अपनी बात जारी रखी—"लेकिन मैं मर्द हूँ और मर्द की जुबान एक होती है। यह भी कोई बात हुई कि अच्छे हुए तो दोस्त और बुरे हुए तो दुश्मन। जग्गू भाई, साधु और सुखी का साथ तो सभी देते हैं, लेकिन मर्द वह है जो गये-गुजरों का साथ दे, गिरे हुए को थाम ले। और तुम विश्वास करो जग्गू भाई, मैं हमेशा ही कमज़ोर और ज़रूरतमन्दों की मदद करता हूँ। पीठ पीछे लोग मुझे भला-बुरा कहते होंगे लेकिन मैं इसकी परवाह नहीं करता। वही करता हूँ जो दस के भले की बात हो। लोग कहते हैं कि मुनेश्वर बदमाश है। फिर भी मैं मुनेश्वर की सहायता के लिए तैयार रहता हूँ। लोगों का क्या ? वे तो तुम्हारे जैसे साधु आदमी के बारे में भी तरह-तरह की बातें कहते हैं। तो क्या मैं तुम्हारा दुश्मन हो जाऊँ ?" और बिसेसरसिंह ने ग़ौर से जग्गू के चेहरे पर का भाव-परिवर्तन देखा। जग्गू ने कौतूहल से पूछा—

"लोग मेरे बारे में बातें करते हैं ?"

"हाँ..." बिसेसरसिंह ने लापरवाही की हँसी हँसते हुए कहा—"लोग कहते हैं कि जगनारायण ढोंगी है, न जाने किस जाति-कुल की औरत को अपने घर में बिठाये है।"

"लेकिन वह तो मेरी अतिथि है बिसेसर बाबू।" जग्गू ने क्रोध से और दुख से लाल होकर कहा—"लोगों को ऐसी बात कहने की हिम्मत कैसे हुई ?"

"नाराज़ होने की ज़रूरत नहीं है, जग्गू भाई। लोगों की जुबान हथिया नक्षत्र का पानी होती है। उसे रोक सकना किसी के बूते की बात नहीं। तुम क्या हो और तुमने उन लोगों को अपने यहाँ ठहराकर कैसी मुसीबत

ली है, यह मैं जानता हूँ। तुम धन्य हो कि एक अनजान, बेसहारा स्त्री को अपनी बहन की तरह अपने घर में रखे हुए हो। इस कलिकाल में तुम्हारे-जैसा सच्चा आदमी मिलना मुश्किल है। मैं कोई मुँहदेखी बात नहीं कर रहा हूँ।"

"लेकिन मेरे बारे में ऐसी बात कही किसने?" जग्गू के स्वर में क्षोभ ध्वनित हो रहा था। बिसेसरसिंह ने पितृ-स्नेह से कहा—

"यह सब सुनकर क्या करोगे? व्यर्थ में दुख होगा, क्रोध आयेगा, फिर लड़ते फिरोगे। अच्छा है कि चुप लगा जाओ।"

"मैं चुप ही रहूँगा। आप नाम बता दीजिए, मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगा।"

"वचन देते हो?"

"हाँ।"

"तो इस वचन को भी वैसे ही निभाओगे जैसे उस रात को दिये हुए वचन निभा रहे हो?"

"ऐं···हाँ, निभाऊँगा।" जग्गू जरा चौंक उठा।

"तुम्हारे खिलाफ़ प्रचार करनेवाले हैं, तुम्हारे मित्र गोपाल के बाप बाबू विचित्तरसिंह।"

जग्गू आश्चर्य से अवाक रह गया। विचित्तरसिंह उसे अपने पुत्र से भी बढ़कर प्यार करते थे।

"क्यों? तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है? अरे भाई, यह संसार अजीब है। यहाँ सूर्य को देखकर भी सूर्य पर विश्वास नहीं होता है।" जग्गू चुप-चाप उठ खड़ा हुआ। तीसरा पहर बीत रहा था। बिसेसरसिंह ने जान बूझकर पूछ लिया—

"जा रहे हो क्या?"

"हाँ, अब चलता हूँ।"

"अच्छी बात है। लेकिन जो कुछ मैंने कहा है, अपने तक ही रखना। और कोई बात हो तो मुझसे कहना। मेरे जीते-जी तुम्हें फिकर करने की

कोई जरूरत नहीं।"

जग्गू वहाँ से चल पड़ा। उसे अपनी दशा पर हँसी और क्रोध आ रहा था। वह बिसेसरसिंह को डरा-धमकाकर उन्हें अपनी मुट्ठी में करने आया था लेकिन खुद उनकी मुट्ठी में जकड़ गया। उसे विचित्तरसिंहवाली बात पर आश्चर्य हो रहा था—'क्या आदमी ऐसा भी ढोंगी होता है ? और वह मुनेश्वर··· ' जग्गू आधे रास्ते से फिर लौट चला, क्योंकि वह बिसेसरसिंह से मुनेश्वरवाली घटना का ज़िक्र कर देना चाहता था। लेकिन बिसेसरसिंह के दालान में कोई नहीं था। वह पुकारने ही जा रहा था कि दालान के दाहिने हाथवाली कोठरी से बातचीत का स्वर सुनायी दिया। उस कोठरी में मदक पीने का इन्तज़ाम रहता था। जग्गू समझ गया कि दोनों गुरु-शिष्य मदक के सेवन में तल्लीन हैं। वह कोठरी के बाहर ही चौकी पर बैठ गया। उसने सुना—कुलदीप कह रहा था—

"वह ढाई बजे की गाड़ी से जरूर आयेगा।" थोड़ी देर खामोशी रही।

बिसेसरसिंह ने पूछा—

"उसके पास रिबिट तोड़ने का सामान है ?"

जग्गू का माथा ठनका। वह साँस रोककर कान लगाये सुनता रहा। कुलदीप ने कहा, "हाँ, हाँ, उसके पास सब है। लेकिन अगर गुमटी तक माल पहुँच गया तो ?"

"उसकी तुम चिंता मत करो। जग्गू मेरी मुट्ठी में है। उसकी ज़ुबान की ऐसी चाभी मेरे हाथ लग गयी है कि मेरी मर्जी के खिलाफ़ वह एक शब्द भी नहीं बोल सकता। लेकिल मुनेश्वर ने मुकदमे के लिए गवाह ठीक कर लिया या नहीं ?"

"जी हाँ !"

जग्गू यों ही इन्तज़ार में बैठ गया था लेकिन इतनी बात सुन लेने के बाद उसे वहाँ बैठे रहने की हिम्मत नहीं हुई। वह चुपचाप वहाँ से रवाना हो गया। किसी गाड़ी के आने का समय नहीं था और यदि रहता भी तो क्या ! सभी गुमटीवालों की तरह, फाटक बन्द कर वह भी अब ड्यूटी

से गायब रहना सीख गया था। इसलिए उसके पैर अपने-आप घर की ओर मुड़ गये। शाम होने में थोड़ी देर थी। बथानों से कुट्टी काटने की आवाज, गाय-भैंस और बछड़ों के रँभाने की आवाज़ और बथानों से मच्छर भगाने के लिए किया गया धुआँ गाँव के वातावरण पर छा रहा था। कोई चीज़ स्पष्ट नहीं थी, कोई बात या पुकार सही नहीं थी। मौसम न मोहक था न रूखा और वातावरण न सुखद था न दुखद। जग्गू के मन की हालत भी ठीक ऐसी ही थी। उसे जल्दी-से-जल्दी कोई फ़ैसला करना था लेकिन, उसके सामने सब-कुछ अस्पष्ट, अर्थहीन और उलझन से परिपूर्ण था। खामोश हवा भयंकर वर्षा का संकेत दे रही थी।

६

शारदा दरवाजे पर खड़ी थी। जग्गू को देखकर कुछ बोली नहीं। चुपचाप मुड़कर घर में चली गयी। जग्गू भी उसके पीछे-पीछे घर के अन्दर पहुँचा।

"ब्रह्मदेव कहाँ है ?"

"मुझे नहीं मालूम।" शारदा ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। उसकी नाराजगी देखकर जग्गू को मन-ही-मन हँसी आ गयी। क्षण-भर के लिए वह अपनी विकट स्थिति भूल गया। उसका मन हलका हो गया। उसने चिढ़ाने के खयाल से हँसी-हँसी में पूछा—

"मुनेश्वर फिर आया था क्या ?"

शारदा कुपित दृष्टि से जग्गू को देखती रही। जग्गू ने फिर पूछा—

"कुछ हुआ है क्या ? बोलती क्यों नहीं ?"

"मुझे क्या होगा ? लेकिन आप सब बिहारी लोग एक तरह के हैं—उचक्के !"—शारदा फूत्कार कर उठी। जग्गू हैरान होकर सोचता रह गया—'अजीब लड़की है !' लेकिन बोलने की हिम्मत नहीं हुई। शारदा का चेहरा क्रोध से आरक्त हो रहा था। वह उसी स्वर में बोलती रही—

"आप लोगों को शर्म नहीं आती ! एक बेसहारा औरत को घर में रखकर फिर उसका तमाशा बनाते हैं।"

"लेकिन किसने आपका तमाशा बनाया ?"

"आप लोगों ने और किसने ? सुबह से आप ग़ायब हैं। खाना खाने भी नहीं आये। आपको गुमटी पर ढुँढवाया लेकिन आप वहाँ भी नहीं थे। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि आप मुझे बोझ समझते हैं, इसीलिए, चाहते हैं कि मैं तंग आकर यहाँ से चली जाऊँ।"

जग्गू कुछ भी नहीं समझ पा रहा था कि शारदा की बातों का अर्थ

गया है। वह घबराया हुआ, सकते की हालत में शारदा की बातें सुनता जा रहा था। शारदा बोलती गयी—

"अभी एक पहलवान-जैसा नौजवान आया था।"

"पहलवान जैसा ?" जग्गू ने समझने-जानने की कोशिश करते हुए पूछा।

"हाँ, वह आपको ढूंढ रहा था। ब्रह्मदेव आपको बुलाने के लिए गुमटी पर गया हुआ है, इसलिए मैं स्वयं बाहर निकली। वह बदमाश अजीब दृष्टि से मुझे घूरता रहा और तरह-तरह की बातें पूछता रहा कि आज सुबह क्या हुआ था ? आप कहाँ की रहनेवाली हैं ? जग्गू चाचा को कब से जानती हैं ? आदि-आदि…"

जग्गू सोच रहा था कि हो-न-हो यह गोपाल ही हो सकता है। बिसे-सर बाबू ठीक ही कह रहे थे। निश्चय ही अपने बाप का इशारा पाकर गोपाल यहाँ जाँच-पड़ताल करने आया होगा। पता नहीं, ये लोग आदमी हैं या आदमी की शकल में भेड़िये ! जग्गू भीतर-ही-भीतर प्रतिशोध की ज्वाला में सुलगता-झुलसता रहा। कुछ देर तक दोनों खामोश बैठे रहे, फिर जग्गू आर्द्र स्वर में बोला—

"देखिए, आपने अपना घर त्यागकर संसार में प्रवेश किया है। हमारे समाज के लिए यह घटना बिल्कुल नयी है और लोग इसे अच्छी दृष्टि से देखते भी नहीं। आपको इन बातों का हिम्मत के साथ सामना करना चाहिए। और जहाँ तक बोझ बनने का सवाल है, कहने को तो एक फूल भी आदमी का बोझ हो सकता है और आप तो एक औरत हैं। लेकिन मैं ऊबता नहीं। लोग मुझसे भी तरह-तरह की बातें पूछते हैं, मुझ पर भी शक करते हैं जबकि यहाँ के लोग मुझे तीस-बत्तीस वर्ष से जानते-पहचानते हैं। इसके लिए क्या किया जाये ?"

"फिर आप दिनभर भागते क्यों रहे ? खाना खाने क्यों नहीं आये ?" शारदा के इस प्रश्न से जग्गू को मन-ही-मन हँसी आ गयी क्योंकि उसने कभी ऐसा नहीं कहा था कि वह अब से खाना यहीं खाया करेगा। लेकिन

अभी वह शारदा का दिल दुखाना नहीं चाहता था इसलिए हलके मन से हँसता हुआ बोला—

"इतनी-सी बात है तो लाइए, अभी खा लेता हूँ।"

शारदा चुपचाप उठी और खाना परोसकर ले आयी। जग्गू कौतूहल-जनित प्रसन्नता से खाने लगा। शारदा का व्यवहार उसे नया अनुभव जैसा लगा। दो रोज़ की जान-पहचान में ही इतना अधिकार जताना उसे अजीब लगा। लेकिन जग्गू शारदा की निश्छलता, सहज-अनभिज्ञता और भोलेपन पर मुग्ध था। और दुनिया के विराट जाल से अनजान शारदा अपने स्नेह-जाल में जग्गू को आबद्ध करती जा रही थी। जग्गू अपनी विवशता को उप-चेतन के सुख की पूँजी बनाकर सहेजता जा रहा था।

खाना खाने के बाद जग्गू चलते-चलते कहता गया—

"अब आज रात में मैं नहीं खा पाऊँगा।" और बिना कुछ जवाब सुने घर से बाहर निकल आया। काफ़ी अन्धकार उतर आया था। दूर-पास के घरों से ढिबरी-लालटेन की मद्धिम रोशनी भयावने अन्धकार की माँग में घुले हुए सिन्दूर की उदासी चित्रित कर रही थी। दूर चमर-टोली से दो कर्कशा औरतों के सस्वर लड़ने-झगड़ने का कोलाहल सुनाई दे रहा था।

जग्गू सिर झुकाये, कादो-कीच से बचता हुआ गुमटी की ओर चलता जा रहा था। उसका मन और मस्तिष्क कई बातों से उलझ रहा था। कुलदीप ने कहा था—"आज रात को ढाई बजे···बिसेसरसिंह ने कहा था कि विचित्तरसिंह ऐसी-वैसी बातें कर रहे थे···गोपाल सी० आई० डी० बन कर पता लगाने आया था···और शारदा कैसी अजीब लड़की है?—मान न मान मैं तेरा मेहमान—जिसे देखो वही मुझे मूर्ख और बदमाश समझता है—आज रात को ढाई बजे—अगर माल गुमटी तक पहुँच गया तो—जग्गू मेरी मुट्ठी में है···"

"कहाँ थे, जग्गू?"

जग्गू इस क़दर अपनी उलझनों में डूबा था कि मुनिदेव की आवाज़ पर अकस्मात ही चौंक उठा। पहचान लेने पर झेंपता हुआ बोला—

"ओह, तुमने तो बिल्कुल डरा दिया। कब से बैठे हो ?"

"यही करीब बीस-पच्चीस मिनट से। क्या हुआ ? बिसेसरसिंह से मिले थे ?"

"हाँ !" और तब जग्गू ने मुनिदेव को सारी बातें बता दीं। शारदा के निरर्थक क्रोध का भी जिक्र कर दिया। मुनिदेव सोच-विचार में डूबता हुआ प्रतिशोध के स्वर में अपने-आप बोल उठा—

"तो यह बात है। आज मुनेश्वर जी मुज़फ़्फ़रपुर से लौट रहे हैं।"

"राघव कहाँ है ?" जग्गू ने किंचित आशा के स्वर में पूछा।

"अरे वह साला भी आज ग़ायब है, वर्ना आज तो सारी कसर निकल जाती। खैर, कोई चिंता नहीं।"

"लेकिन मुनिदेव, बिसेसरसिंह यह क्या बोला कि मेरी चाभी उसके हाथ में है।" जग्गू ने आश्चर्यमिश्रित चिंता से पूछा। मुनिदेव हँसने लगा—

"अरे बम भोले, अपने को ज़रा दूसरों की आँखों से भी देखा करो।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि आपको यह पता ही नहीं है कि गाँव में रहते हुए आपने शहरवालों की नाक काट ली।"

"अरे भाई साफ-साफ कहो। क्यों मेरा सिर-दर्द बढ़ा रहे हो ?" इस पर मुनिदेव हँसने लगा। जग्गू अवाक् उसकी ओर देखता रहा। मुनिदेव ने हँसते हुए कहा—

"तुमने उस अनजान लड़की को अपने यहाँ शरण दे रखी है। यह क्या गाँव के लिए साधारण बात है। तुम्हारे मुँह पर कोई नहीं बोलता लेकिन इन दिनों सभी जगह इसी की चर्चा होती है, डकैती और मारपीट की बात तो सुबह होते ही पुरानी पड़ गयी। और बिसेसरसिंह चाहे तो इस बात पर तुम्हारा गाँव में रहना मुश्किल कर सकता है। समझे ?"

"बिसेसरसिंह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।" जग्गू ताव में आकर बोला और खाट पर से उठकर टहलने लगा।

"हाँ, वह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता बशर्ते कि आज तुम भी

उसकी नकेल अपने हाथ में ले लो।"

"आज तो मैं उसे हर्गिज नहीं छोड़ सकता।" जग्गू दम्भ से बोला।

मुनिदेव ने मुँह बनाते हुए कहा—

"इसी बुद्धि पर तुम बिसेसरसिंह से लोहा लेने चले हो? क्या करोगे? दारोगा को बुलाकर गिरफ्तार करा दोगे?"

"नहीं, अभी स्टेशन जाकर मुजफ्फरपुर फोन करवा दूंगा। मालगाड़ी के साथ में पुलिस आयेगी और सब-के-सब पकड़े जायेंगे।" जग्गू ने गम्भीरता से अपनी योजना रखी। मुनिदेव फिर हँसने लगा। जग्गू तमककर बोला—

"तुम रह-रहकर दाँत क्यों निपोड़ने लगते हो?"

"तुम्हारी बुद्धि पर! तुम क्या समझते हो कि स्टेशन मास्टर तुम्हारा गुलाम है! अरे मूर्ख, स्टेशन मास्टर उधर मुजफ्फरपुर फ़ोन भी कर देगा और इधर बिसेसरसिंह को आगाह भी कर देगा। और उसके बाद तुम आसानी से सोच सकते हो कि बिसेसरसिंह तुम्हारे साथ कैसा बर्ताव करेगा?"

"फिर क्या किया जाये? दारोगा भी तो उसी का आदमी है।" जग्गू सोच और निराशा में डूबता हुआ बोला।

"यह काम तुम मेरे ऊपर छोड़ो। मैं ठीक बारह बजे यहाँ पहुँच जाऊँगा।"

"थोड़ी देर बैठो न। कौन गाड़ी छूटी जा रही है?"

"अरे आज ठीक दो महीने बाद घर जा रहा हूँ। तुम्हारा क्या? आगे नाथ न पीछे पगहा। बस गुमटी पर पड़े रहते हो।"

"क्यों? दो महीने बाद घर क्यों जा रहे हो? स्टेशन से दस कदम पर यह रहा तुम्हारा घर। फिर भी तुम घर नहीं जाते। उस रोज़ तुम्हारी पत्नी मेरे सामने रो-रोकर अपना दुखड़ा सुना रही थी। ब्याह नहीं हो रहा था तब तो पागल की तरह रोते फिरते थे और आज दो-दो महीने तक घर से गायब रहते हो।" जग्गू के स्वर में स्नेहसिक्त फटकार थी। मुनिदेव

झल्लाकर बोला—

"क्या करने जाऊँ घर ? बापू रोज़ ही स्टेशन पहुँचकर दो-ढाई रुपया माँग ले जाते हैं और घर जाता हूँ तो माँ अपना रोना अलग शुरू कर देती है और बीबी अलग। मुश्किल से चार-साढ़े चार रुपये रोज़ कमा पाता हूँ, उसी में कैसे अपना पेट भरूँ, कहाँ से बाप को दूँ, कहाँ से माँ को दूँ और कैसे अपनी पत्नी के नखरे सम्हालता फिरूँ ? घर पहुँचते ही दिमाग़ ख़राब हो जाता है।"

"जब गृहस्थी का बोझ उठाया है तब भागने से तो काम चलेगा नहीं। तुम्हारे पिताजी तो कुछ-कुछ उपार्जन कर ही लेते हैं।"

"ख़ाक उपार्जन कर लेते हैं ! जिस काम में हाथ डालते हैं, उसी को चौपट कर देते हैं। उन्होंने तो और मेरा दिमाग़ ख़राब कर दिया है। घर में तीन-तीन बेटे हैं, उन लोगों से कुछ नहीं कहते और मेरे पास चले आते हैं रुपया माँगने जैसे मेरी जेब में गूलर का फूल रखा हो।"

मुनिदेव बहुत दुखी हो गया। उसके घर की हालत बहुत ख़राब थी। परिवार में आठ सदस्य थे और कमानेवाला था एकमात्र मुनिदेव। उसके पास कुल पाँच बीघा जमीन थी जिससे साल में दो महीने का खर्च भी नहीं निकल पाता था। मुनिदेव का सबसे छोटा भाई पाँचवीं कक्षा में पढ़ता था, शेष दो भाई भैंसों की चरवाही करते, पोखर में घंटों तैरते रहते, चेत-कबड्डी खेलते या रात को गाँव की कीर्तन-मंडली के साथ कीर्तन करते फिरते। मुनिदेव की पत्नी ख़ूबसूरत और गवाँर थी। बीड़ी पीती थी और निश्छल भाव से सबों के आगे अपना दुखड़ा सुना देती थी। मुनिदेव उसे दिल से प्यार करता था लेकिन उसे अपनी ग़रीबी और परेशानियों के चक्कर से कभी फ़ुर्सत ही नहीं मिलती थी कि प्यार की बातें सोचे-समझे। दिन-भर मशीन चलाता और शाम तक थककर चूर हो जाता—फिर छककर ताड़ी पीता, पान खाता, इधर-उधर भद्दे-भद्दे मज़ाक करता फिरता और रूखा-सूखा खाकर दुकान पर ही सो जाता।

जग्गू ने मुनिदेव के दुख को उभारना उचित नहीं समझा। इसलिए वह

सांत्वना देता हुआ बोला—

"सब कुछ तुम्हें ही सहना है इसलिए, दुःख करने या खीझने से क्या फ़ायदा। मर्द का दूसरा नाम हिम्मत है। उसे मत त्यागो। जाओ ज़रा अपनी बीवी से प्यार की बातें करना और उन्हें मेरी याद दिला देना। कहना कि तुम्हारा एक भक्त वीरान गुमटी में अकेला पड़ा है।" और तब दोनों मित्र हँसते-हँसते विदा हुए। लेकिन दोनों का मन अप्रत्याशित आशंकाओं की कड़वी-मीठी अनुभूति के थपेड़ों से अस्थिर हो रहा था।

७

ज्यों-ज्यों रात चढ़ती जाती, वारिश का ज़ोर बढ़ता जाता। चारों ओर काला धुंध अंधकार, झड़-झड़-झड़-झड़ वर्षा की अविराम झड़ी और बीच-बीच में बादलों का भयंकर गर्जन-तर्जन जैसे दो पहाड़ वेग से टकरा उठते हों और तब कड़क के साथ बिजली की चकाचौंध—लग रहा था जैसे शिव ने रौद्र रूप धारण कर लिया हो। हवा भी हहास-चंडिका के अट्टहास जैसी ध्वनित हो रही थी जैसे आज फिर महाशक्ति सदलबल दैत्यराज रावण को अपने अंक में लेने जा रही हो। शेष जीव, डर से सहमे हुए, निस्पन्द-निष्प्राण हो रहे थे। न किसी मनुष्य के गाने-रोने की आवाज सुनाई दे रही थी, न किसी पशु.. रँभाने की। जैसे संवर्त-कल्प की स्थिति आ गयी थी।

जग्गू अपनी गुमटी में दम साधे मुनिदेव की आतुर प्रतीक्षा में खाट पर बैठा था। उसने समय का अनुमान लगाया—बारह से अधिक हो रहा होगा। लेकिन मुनिदेव का कहीं पता नहीं था। जग्गू बेचैनी की तीव्रता से छोटी-सी गुमटी के भीतर ही चक्कर काटने लगा। उसकी सारी इन्द्रियाँ प्रज्वलित हो रही थीं। मुनिदेव ने उससे साफ-साफ बताया भी नहीं था कि वह क्या करनेवाला है। इसलिए उसका मन अत्यधिक उत्तेजित-उद्वेलित हो रहा था। रह-रहकर वह मोखे से झाँकने लगता और जब बिजली चमकती तो दूर गाँव तक सरसरी नज़र से देख लेता। लेकिन पानी में डूबी हुई सूनी सड़क और झंझा के चपेट से छटपटाते पेड़-पौधों के सिवा वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता। अंत में, निराशा और क्रोध से जल-भुनकर वह अपनी खाट पर सोने ही जा रहा था कि दरवाजे पर ज़ोर से थपथपाहट की आवाज़ हुई। लपककर उसने दरवाजा खोल दिया। पानी के भरपूर झोंके के साथ मुनिदेव छाता मोड़ता हुआ भीतर घुस आया। जग्गू ने जल्दी से द्वार बन्द

करते हुए क्रुद्ध स्वर में पूछा—

"इतनी देर क्यों लगा दी ?"

"ठहरो यार, यहाँ ठंड से जान जा रही है और तुम्हें देर-सबेर सूझ रहा है !" मुनिदेव ने जग्गू की सरकारी पगड़ी देह पर लपेटते हुए कहा। जग्गू का क्रोध और भड़क उठा। उबलकर बोला—

"तो आये क्यों ? वहीं अपनी लुगाई के पास चिपके रहते।"

"लेकिन वहाँ भी तो छप्पर चू रहा था। घर में एक खाट रखने की भी जगह नहीं बची। सब जगह पानी चू रहा था।" मुनिदेव ने रूआँसा होकर कहा। जग्गू को उसकी दशा पर हँसी आ गयी। बोला—

"फिर तो आज तुम्हारा घर जाना बिल्कुल बेकार हुआ ?"

"अरे बेकार ही नहीं, बुरा भी हुआ। घर में मकई की रोटी बनी थी और तरकारी के नाम पर आम का सूखा हुआ एक फाँक अचार। बस तबीयत फिरी ही नहीं—भिन्ना गयी। ऊपर से माय ने उपदेश देना शुरू कर दिया कि 'जरा धन जोड़ना सीखो, घर में बाल-बच्चा है, शौकीन बीवी है, आदि आदि।' उसकी बात पर मैंने बरसना शुरू ही किया था कि इन्द्र भगवान भी बरसने लगे। घर में गया तो बीवी जी छुई-मुई बनी बैठी थीं। काफी समय मनाने में ही कट गया और जब बहुत आरजू-मिन्नत के बाद मुस्करायीं तो साला पुराना छप्पर रोने लगा—वह भी जार-बेजार। बस यही समझो मित्र कि घर जाकर बरसने और भींगने में ही समय निकल भागा। सूखने भी नहीं पाया कि भींगता हुआ यहाँ भागा चला आ रहा हूँ। अब तुम बताओ कि तुम्हें नाराज़ किस पर होना चाहिए ?"

"अब तो मैं खुश हूँ कि भगवान की कृपा से तुम वहाँ सो नहीं पाये।" जग्गू ने हँसते हुए कहा।

"मैंने कहीं सुना था कि दुष्ट मित्र और दुष्ट पत्नी बड़े दुखदायी होते हैं। आज उसका प्रमाण मिल रहा है।"

"और मैंने तो सुना है कि दर्जी कैंची चलाने में बड़े उस्ताद होते हैं सो आज देखना है कि यह बात कहाँ तक ठीक है।"

"चिंता मत करो प्यारे! ऐसी कैंची चलाऊँगा कि बिसेसरसिंह जिन्दगी-भर के लिए हमारे गाहक हो जायेंगे।"

"अच्छा, तुमने यह तो बताया ही नहीं कि हम लोगों को करना क्या है। कहीं ऐसा न हो कि काम भी न बने और बिसेसरसिंह जान के गाहक भी बन जायें।"

"तुम चुपचाप देखते रहो। अभी कोई इस ओर होकर गया तो नहीं?"

"अभी तक तो कोई नहीं गया है।"

"ठीक है। बच्चू लोग अब आते ही होंगे। माल ले जाने का दूसरा रास्ता तो है नहीं। अभी एक बज रहा है।" मुनिदेव ने अपनी कलाई की घड़ी देखते हुए कहा।

"क्यों, पश्चिम के रास्ते भी तो माल ले जा सकते हैं।" जग्गू ने सोचते हुए कहा। मुनिदेव हँसने लगा—

"तुम बिल्कुल बुद्धू हो। चोरी का माल उधर कहाँ ले जायेंगे? आठ मील दूर रेलवे स्टेशन है और रास्ते में घनी बस्ती है। यदि चोर के पास गुमटी पार करके फिर अपने गाँव वापिस आयेंगे तो चार मील का चक्कर पड़ जायेगा। इतने में सुबह हो जायेगी। फिर तुम्हारे जैसा बमभोला गुमटी वाला कहाँ मिलेगा जो चुपचाप माल ले जाने देगा? तुम्हें मालूम नहीं है—यह सारा माल मंहगीराम खरीद लेता है। आज मैं तुम्हें उसका तमाशा भी दिखाऊँगा।"

दोनों मित्र चुपचाप घात में बैठ रहे। कहीं से कोई आवाज नहीं आयी। वर्षा हुए जा रही थी। समय बहुत बेचैनी से कट रहा था। हलका-सा खटका होने पर भी दोनों मित्र सावधान हो जाते।

"देखना तो कितना बजा है?"

"पौने दो।" मुनिदेव ने कहा। जग्गू ने मोखे से झाँककर देखा—कहीं कुछ नहीं था।

"कहीं तुम्हें यहाँ आते किसी ने देख तो नहीं लिया?" जग्गू ने चिंता के स्वर में पूछा।

"मैं तो स्वयं चारों ओर देखता आ रहा था। कहीं कोई नहीं था। और दूर से, ऐसे मौसम में कोई किसी को पहचान नहीं सकता। किसी ने यदि देखा भी होगा तो समझा होगा कि जग्गू है। और तुमसे वे लोग डरते नहीं। अभी तो मालगाड़ी के आने में···"

तभी सड़क पर का फाटक काँय-काँयऽऽऽ कर उठा। जग्गू ने उछल-कर मोखे से देखा—कोई छाता लगाये फाटक के पास खड़ा था, दूसरा आदमी फाटक खोल रहा था। उस आदमी ने दोनों फाटक खोल दिये। अंधकार होने के कारण दूर की चीज़ दिखायी नहीं पड़ रही थी। क्षण-भर के बाद ही बैलगाड़ियाँ आ पहुँचीं······एक, दो, तीन, चार, पाँच। छाते वाला व्यक्ति ठेहुने तक बरसाती कोट पहने था। बिजली चमकने पर उसकी रोशनी में जग्गू और मुनिदेव ने देखा—फाटक खोलनेवाला कुलदीप था और छाता लगाये स्वयं बिसेसरसिंह थे। बैलगाड़ियाँ लाइन पारकर चलती चली गयीं—अंधकार में विलीन हो गयीं और उनकी चरमराहट वर्षा की हहास में खो गयी।

"कुछ देर में बिसेसरसिंह तुम्हारे पास आयेगा। जरूर आयेगा। और यदि नहीं आये तो मालगाड़ी के पास होने तक तुम चुपचाप यहीं बैठे रहो।" मुनिदेव ने फुसफुसाहट के स्वर में कहा। जग्गू का कलेजा जोर से धड़क रहा था। ऐसे छल-प्रपंच, जाल-फ़रेब और चोरी-डकैती से वह जीवन-भर अलग रहा। उसका मन बार-बार उसे धिक्कार रहा था कि वह पाप-कर्म का भागी बन रहा है। लेकिन मुनिदेव ने दुनिया देखी थी, तरह-तरह के लोग देखे थे, दुख सहा था और अपमान के घूँट पिये थे। सांसारिक व्यक्ति समय को पूँजी के रूप में देखता है लेकिन संसार से विरक्त व्यक्ति के लिए समय एक कसौटी के सिवा और कुछ नहीं। यदि विरक्त व्यक्ति एक बार भी समय के चक्कर में पड़ जाता है तो वह भोग की अतल गहराई से पहले नहीं रुकता। मुनिदेव सांसारिक व्यक्ति था। वह मोखे पर खड़ा गुमटी की ओर देख रहा था कि अचानक घूमकर जल्दी से फुसफुसाहट के स्वर में बोला—

"वह आ रहा है। तुम उससे ऐसे मिलना जैसे उसके बड़े भक्त हो और माल कटने न कटने की तुम्हें कोई परवाह नहीं है। मेरा जिक्र मत करना।" यह कहकर वह खाट के नीचे छिप गया। दरवाजे पर जब दो-तीन बार थपथपाहट हुई तब जाकर जग्गू ने चौंककर पूछा—जैसे नींद से उठा हो—

"कौन है?" और उठकर उसने दरवाज़ा खोला—

"अरे आप? बिसेसर बाबू? आइए-आइए, भीतर चले आइए।" बिसेसरसिंह के भीतर आने पर उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया। बिसेसरसिंह ने कृत्रिम गंभीर स्वर में कहा—

"बड़े ज़ोर की वर्षा हो रही है। देखते हैं कि इस साल धान की फ़सल बिल्कुल चौपट हो जायेगी।"

"जी हाँ। आसिन का महीना है लेकिन सावन-भादों भी मात खा गया। समय ही खराब जा रहा है बिसेसर बाबू। आप बैठते क्यों नहीं हैं। बैठिए न। आज तो आप पहली बार गरीब की कुटिया में पधारे हैं। क्या बज रहा होगा? बरसात में समय भी मालूम नहीं होता।"

"यही क़रीब सवा दो का समय होगा।"

"सवा दो?" जग्गू चौंककर बोला—"मैंने समझा कि सुबह हो गयी। लेकिन···लेकिन इतनी रात को आप······"

"मैं तुम्हारे पास ही आया हूँ।" बिसेसरसिंह ने अपनी विशेष मुस्कराहट से कहा।

"आज्ञा कीजिए।" जग्गू को अपनी आकस्मिक विनम्रता पर आप आश्चर्य हो रहा था। बिसेसरसिंह समझ रहे थे कि उस औरत के चलते और चूँकि वह स्वयं उसकी गुमटी में पधारे हैं—जग्गू इतना विनम्र हो रहा है। उन्होंने हँसते हुए कहा—

"बस आज्ञा ही समझो जग्गू भाई। अब तो तुम मेरे अपने आदमी हो। तुमसे न मेरी बात छिपी है और न मुझसे तुम्हारी। बात यह है कि आज ढाई बजे की मालगाड़ी से कुछ कपड़े की गाँठें काटकर गिरायी जायेंगी, और वह माल तुम्हारी गुमटी के पास ही गिरेगा। तुम्हें कोई एतराज़ तो

नहीं है?"

"नहीं, बिसेसर बाबू, ऐसा न कीजिए। यदि आप नहीं मानते तो··· गुमटी से थोड़ी दूर पर यह सब कुकर्म करवाइए। आखिर मैं रेलवे का नौकर हूँ। मेरी नौकरी पर ख़तरा आ जाये तो?" जग्गू के स्वर में किंचित दीनता थी।

"अरे तो मैं क्या मर गया हूँ? जितनी तनख्वाह तुम्हें अब मिलती है उससे दसगुनी रकम हर महीने दूँगा। मर्द हूँ मर्द!" बिसेसरसिंह ने बड़े रुआब से कहा।

"आप की कृपा चाहिए।"

"अच्छा तो मैं बाहर चलता हूँ। तुम बेफ़िक्र रहो। जरा माल हाथ आ जाये फिर अभी मिलूँगा। यदि यहाँ आस-पास में कोई गाँठ गिरे तो ध्यान रखना।" और दीवार से लगी बंदूक कंधे पर लटकाकर, बिसेसरसिंह बाहर हो गये। मुनिदेव खाट के नीचे से बाहर निकलकर मोखे से झाँकने लगा। कुछ देर बाद वह मुड़कर बोला––

"वह तो गया। मैं अब, लाइन के उस पार, झुरमुट में छूमंतर हो जाता हूँ। ज्यों ही बिसेसरसिंह दुबारा तुम्हारे पास आयेगा कि उसे तुम गुमटी में ले आना। फिर मैं भी पहुँच जाऊँगा।" यह कहकर उसने अपना छाता उठाया और दरवाजा खोलता हुआ घूमकर वह कहता गया––"इंजिन की रोशनी देखते ही तुम भी बाहर आ जाना और जब तक बिसेसरसिंह यहाँ आये नहीं––बाहर ही रहना।"

मुनिदेव बाहर निकलकर कुछ देर इधर-उधर देखता रहा, फिर जल्दी से लपककर, रेलवे लाइन के उस पार, नीचे चला गया। जग्गू कुछ देर गुमटी में बेसब्री से चक्कर काटता रहा कि उसे गाड़ी की धमक का अन्दाजा हुआ। मोखे से उसने झांककर देखा तो इंजिन की रोशनी दिखायी पड़ी। वह बाहर निकल आया। थोड़ी ही देर में इंजिन क़रीब आ गया। गुमटी से थोड़ी दूर पर ही एक गाँठ गिरी और लुढ़कती हुई नीचे चली गयी। ठीक गुमटी के सामने झनाक् से कोई चीज़ गिरी। जग्गू ने देखा कि एक आदमी

मालगाड़ी के एक बन्द डिब्बे से नीचे कूदने के क्रम में है—और वह कुछ ही दूर जाकर कूद भी पड़ा और दौड़ता हुआ अँधेरे में गायब हो गया। जग्गू ने गाड़ी से फेंकी गयी वस्तु को उठाकर देखा—एक बड़ी बाल्टी थी जिसमें लगभग ढाई हाथ लम्बा मजबूत रस्सा बँधा हुआ था और रस्से के ऊपरी छोर पर एक हुक लगा हुआ था। जग्गू समझ गया कि इसी हुक को गाड़ी में अटकाकर मुनेश्वर जी बाल्टी में खड़े हो गये होंगे और डिब्बे का रिविट काट दिया होगा। भय और ग्लानि से जग्गू मन-ही-मन काँप रहा था। उसे मुनिदेव पर भी इस समय क्रोध आ रहा था। उसने ही ऐसे खराब काम में उसे फँसाया था। उसे शारदा पर भी क्रोध आ रहा था जिसके चलते वह कायर और नपुंसक बनने पर मजबूर हुआ।

जग्गू काफ़ी देर तक गुमटी के बाहर चहल-कदमी करता रहा। रेलवे लाइन के उत्तर दूर-दूर तक टार्च की रोशनी जलती-बुझती रही। करीब आधा घंटे बाद एक बैलगाड़ी गुमटी पर पहुँची। जग्गू ने फाटक खोल दिये। फिर दूसरी गाड़ी आयी, तीसरी आयी, चौथी और पाँचवीं भी आयी और उन्हीं के साथ बिसेसरसिंह भी आये। जग्गू वहीं खड़ा था। बिसेसरसिंह के पास आते ही जग्गू ने घृणा-मिश्रित गंभीरता से कहा—

"एक गाँठ यहीं पास में गिरी है।"

"हाँ-हाँ, मुझे मालूम है। अभी दस मिनट में दूसरी बैलगाड़ी आती है। आज मुनेश्वर ने तो कमाल कर दिया। मिनटों में बहुत-सी गाँठें गिरा दीं।" बिसेसरसिंह उल्लासपूर्वक बोले जा रहे थे—"चलो, तब तक भीतर गुमटी में बैठा जाय।"

"चलिए।"

"ओ हो यह वर्षा है या प्रलय!" गुमटी में पहुँचकर बन्दूक दीवार के सहारे खड़ी करते हुए बिसेसरसिंह बोले।

"यह गाँठ भी यहाँ से जल्दी हट जाती तो अच्छा था।" जग्गू ने चिंतातुर होकर कहा।

"अभी हट जायेगी। तुम चिंता मत करो। असल में मैंने सोचा कि

पांच गाड़ी से अधिक माल कट नहीं पायेगा लेकिन, मेरे चेले सब के सब अब तो कमाल करने···" अभी वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि दरवाजे पर थपथपाहट हुई। बिसेसरसिंह ने उछलकर बन्दूक उठा ली। जग्गू ने सहज भाव से उनके हाथ से बन्दूक लेकर दीवार के सहारे रखते हुए कहा—

"बन्दूक वहीं रहने दीजिए और चुपचाप बैठिए। कोई बाहर का आदमी होगा तो आपको इस हालत में देखकर शक करेगा।" बिसेसरसिंह ने कोई विरोध नहीं किया। जग्गू के दरवाजा खोलते ही मुनिदेव भीतर घँस आया—

"ओफ, इस बारिश ने तो·· अरे, यह कौन हैं ?" मुनिदेव ने अनजान बनने के अभिनय में चौंककर पूछा।

"बाबू बिसेसरसिंह हैं।" जग्गू ने कहा।

"बाबू बिसेसरसिंह ? इतनी रात को तुम्हारे यहाँ ?"

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? जैसे तुम इतनी रात को यहाँ आये हो वैसे मैं भी आ सकता हूँ।" बिसेसरसिंह थोड़ा चिढ़कर बोले। मुनिदेव की नज़र बन्दूक पर पड़ी। उसने बन्दूक अपने हाथ में ले ली और कहा—

"मैं तो मजबूर आदमी हूँ। कल ही गाहकों को कपड़े देने का वायदा कर रखा है इसलिए, कुछ देर घर पर बिताकर, अभी से मशीन चलाने स्टेशन जा रहा हूँ। लेकिन आप ?" बिसेसरसिंह की बोलती बन्द हो गयी।

जग्गू ने कहा—

"आपने अभी मालगाड़ी से कुछ गाँठें गिरवायी हैं। उसी को ढुलवा रहे हैं।"

"वाह, तब तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। फिर तो हम लोगों को भी कुछ ईनाम मिलना चाहिए।" मुनिदेव ने किंचित नम्रता से कहा। बिसेसर-सिंह ने देखा कि अभी क्रोध करने से बात बिगड़ेगी ही इसलिए वह स्नेह-पूर्वक बोले—

"हाँ-हाँ, ज़रूर मिलेगा।"

"फिर निकालिए।"

"क्या बच्चों-जैसी बातें करते हो ? पास में रुपया लेकर कौन चलता

है ? वह भी इतनी रात को ? कल दे दूँगा । विश्वास करो ।"

"विश्वास ?" मुनिदेव ने व्यंग्य से पूछा—"ऐसे काम में कोई किसी का विश्वास कर सकता है ?"

"क्यों नहीं ? मैं तो विश्वास पर ही ज़िन्दा हूँ । पूछ लो जग्गू भाई से ।"

"जग्गू भाई से क्या पूछना ? यह तो बमभोले हैं । मैं आपसे ही पूछता हूँ—क्या आप मुझ पर विश्वास करते हैं ?"

"क्यों नहीं ?"

"नहीं करते ।"

"मैंने तो तुमसे कहा कि मैं विश्वास पर ही ज़िन्दा हूँ ।"

"अच्छा तो काग़ज़ पर, जो मैं कहता हूँ, लिख दीजिए ।" मुनिदेव ने काग़ज़-क़लम देते हुए कहा । जग्गू अवाक् दोनों को देख रहा था ।

"क्या लिख दूँ ?"

"लिखिए—लिखवाता हूँ । प्रिय मुनेश्वर, आज रात ढाई बजे''' पहुँचने वाली मालगाड़ी से जो तुम गाँठें गिरानेवाले हो, वे देसौरा गुमटी से काफ़ी दूर लाइन के उत्तर में गिराना क्योंकि जगनारायण चौधरी गुमटीवाला बहुत बदमाश है । वह दिन-रात जगा ''"

"यह सब क्या लिखवा रहे हो ?" बिसेसरसिंह ने घबराहट छिपाने के लिए कृत्रिम हँसी हँसकर पूछा । मुनिदेव ने छूटते ही कहा—

"आप मुझ पर विश्वास कीजिए । जिस रोज़ आपने विश्वासघात किया उसी रोज़ मैं भी विश्वासघात करूँगा । कल आप चार हज़ार रुपया दे देंगे तो आपको यह चिट्ठी सौंप दूँगा । लिखिए, देर मत कीजिए वर्ना अच्छा नहीं होगा ।"

"अच्छा लिखाओ ।" बिसेसरसिंह ने होंठ काटते हुए कहा ।

"लिखिए—क्या लिखा था ? जगा रहता है । पिछली बार जब मैंने मालगाड़ी रोककर अनाज लूटा था उस रोज़ बहुत मुश्किल से जग्गू को बेवकूफ बनाकर गुमटी पार किया । नीचे अपने दस्तख़त कीजिए ।"

बिसेसरसिंह ने कोई उपाय न देखकर दस्तख़त कर दिए । मुनिदेव ने

वह चिट्ठी लेकर अपनी जेब के हवाले की और कहा---

"आप विश्वास रखिए, जब तक आप हम लोगों के साथ ईमानदारी से पेश आते रहेंगे, तब तक हम लोग आपके इशारे पर चलते रहेंगे।" बिसेसरसिंह ने देखा कि इस समय चालाकी से काम लेने के सिवा और कोई रास्ता नहीं है इसलिए वह हँसकर बोले---

"मुझे तुम लोगों पर पूरा विश्वास है। तुम्हें और जग्गू को मैं अपना सगा भाई मानता हूँ। तुम लोग मुझे भले ही पराया समझो।"

इसी समय कुलदीप पहुँच गया। गाँठ उठाकर गाड़ी पर लाद दी गयी। बिसेसरसिंह ने कुलदीप के कान में कुछ कहा। लेकिन मुनिदेव बन्दूक लिए दूर से ही सब-कुछ सावधानी से देख रहा था। बिसेसरसिंह ने मुनिदेव के पास आकर अपनी बन्दूक माँगी लेकिन मुनिदेव प्रेमपूर्वक टाल गया। वह जानता था कि बन्दूक के हाथ से जाते ही जान भी चली जायेगी।

बिसेसरसिंह झख मारकर चले गये। मुनिदेव खुशी से उछलता हुआ बोला---

"देखा कैसी बेजोड़ नकेल हाथ लगी है?"

"लेकिन इस पाप में तो अब हम लोग भी भागीदार बन गये।"

"कैसा पाप? जब पुलिस बेईमान है, रेलवे अधिकारी चोर हैं, तब तुम्हारे धर्मात्मा बनने से क्या होता है? ऐसी स्थिति में जो कुछ हम लोगों ने किया उससे अच्छा काम और कुछ नहीं किया जा सकता था।" मुनिदेव ने गाँव जानेवाली सड़क की ओर देखते हुए कहा। जग्गू अन्यमनस्क भाव से गुमटी में चला आया। मुनिदेव की बातें और तर्क उसकी समझ में नहीं आ रहे थे। जो कुछ हुआ वह तो होता ही रहता है लेकिन मुनिदेव ने जिस ढंग से पत्र लिखवाया और रुपये की माँग की---जग्गू को वह ढंग और बात पसन्द नहीं आयी। संसार में ही सब अच्छे-बुरे कर्म होते रहते हैं, लेकिन, जग्गू उन बातों से अलग-थलग रहता आया था। वह अभी भी अपने को अलग मानता था लेकिन उसे अपनी निष्क्रियता पर ग्लानि होने लगी थी। वह खुलकर विरोध नहीं कर पा रहा था। निष्क्रिय तटस्थता, दायित्व से

मुक्ति नहीं देती बल्कि नैतिक पतन की ओर उन्मुख कर देती है। जग्गू चुपचाप गुमटी में चला आया और उसके पीछे-पीछे मुनिदेव। जग्गू खाट पर बैठने लगा तो मुनिदेव ने पूछा—

"सेठ मंहगीराम के करिश्मे नहीं देखोगे?"

"मैं इससे अधिक कुछ नहीं देखना चाहता। मुझे तुम इन बातों में न घसीटो तो अच्छा हो," जग्गू ने अनमने भाव से कहा। मुनिदेव अपने स्वभाव के अनुसार तमककर बोला—

"इस बात में तुमने मुझे घसीटा है या मैंने तुम्हें घसीटा है?"

"लेकिन मैंने सौदेबाजी कभी नहीं की।"

"तुमने बार-बार सौदेबाजी की है। जब पहली बार डाका पड़ा तब तुमने खुलकर क्यों नहीं विरोध किया? राघव ने तुमसे गवाही देने को कहा लेकिन तुम टाल गये—क्यों? क्या यह सब सौदेबाज़ी नहीं है? बल्कि मैंने सौदेबाजी नहीं की है। अब तुम चाहो तो इस पत्र को दिखाकर बिसेसरसिंह को गिरफ्तार करा सकते हो, उसे इस राह से हटने पर मजबूर कर सकते हो।"

"कुछ भी हो, तुम्हें रुपया नहीं लेना चाहिए। यह पाप है।" जग्गू ने दुर्बल स्वर में कहा। मुनिदेव समझाता हुआ बोला—

"फिर वही बात! प्यारे, मैं रुपया नहीं लेकर कौन-सा पुण्य करूँगा? माल तो लूट ही लिया गया, पुलिस भी नहीं आयी और अभी पाप का घड़ा भी नहीं भरा है कि अच्छी तरह फूटे। इसलिए, तुम चुपचाप देखते चलो कि मैं क्या करता हूँ।"

जग्गू चुप रहा। दोनों मित्र काफ़ी देर तक वहीं बैठे रहे। सबेरा हो गया। मुनिदेव हर्ष और उल्लास से भरा था और जग्गू पाप-पुण्य की उलझनों में फँसा बेचैन हो रहा था। बीच की राह सत्य-असत्य के समानान्तर चलती है इसलिए वहाँ संतोष नहीं, निरर्थक लोभ का उदय होता है जो मनुष्य को चैन नहीं लेने देता।

सूर्योदय के साथ ही वर्षा थम गयी। मुनिदेव अपनी दुकान पर चला गया। जग्गू तन्द्रावस्था में खाट पर पड़ा रहा——गुमटी की छत देखता हुआ। गुमटी की छत अर्द्धवृत्ताकार खंडों में विभक्त थी। उन पर अधूरी तस्वीरें बनती-बिगड़ती रहीं!

८

"कोई साहब हैं ?"

"यह कौन शहरू आया !" जग्गू चौंककर जिज्ञासा से भर उठा। देखा—दरवाज़े के सामने ही पेंट-कोट पहने एक जेन्टिलमैन खड़े थे—नाक ज़रूरत से ज्यादा लम्बी और आगे की ओर झुकी हुई, आँखें बड़ी-बड़ी लेकिन अर्द्ध-उन्मीलित, लम्बा चेहरा, बीच से काढ़े हुए कंघी के बूते पर दबे-उठे बाल, गेहुआँ रंग, लम्बी-दोहरी देह। जग्गू, अँगोछा कंधे पर रखता हुआ, लपककर बाहर निकला तो देखा—जेन्टिलमैन के पीछे फ़ौजा खलासी, सिर पर चमड़े की अटैची और होलडॉल रखे, कह रहा था—

"मुँह क्या देख रहे हो जग्गू भइया ? यह तुम्हें ही ढूँढते हुए आये हैं।" फिर भी जग्गू बकर-बकर ताकता रहा। जेन्टिलमैन बड़ी गंभीरता से बोले—

"आपके पास राजस्थान की कोई औरत आकर ठहरी है ?"

"जी हाँ।" जग्गू ने सोचते हुए कहा।

"वह कहाँ है ? मुझे उससे मिलना है।" जेन्टिलमैन ने पेंट की जेब में दोनों हाथ डालते हुए पूछा। जग्गू को जेन्टिलमैन के बात करने का ढंग कुछ अच्छा नहीं लगा। बोला—

"आइये मेरे साथ।"

शारदा मुँह धो रही थी। जेन्टिलमैन को देखते ही आत्म-विस्मृत-सी हो गयी, ब्रुश उसके हाथ से नीचे गिर गया, उसके चेहरे पर गहन मुग्धता के भाव उभर आये और उसके होठों पर खिलखिलाहट के अतिरेक का स्पष्ट संकेत, कँपकँपी के रूप में, प्रकट हो उठा। जेन्टिलमैन पूर्ववत गंभीर बना रहा। उसने घर-आँगन में नज़र घुमाकर देखा, उसके चेहरे पर किंचित उपेक्षा का भाव अंकित हो उठा और शारदा को एक बार ऊपर से नीचे तक

देखकर वह ब्रह्मदेव से बोला—

"बाहर से सामान ले आओ।"

जग्गू की ओर किसी का ध्यान नहीं था। यह बात समझते जग्गू को देर नहीं लगी कि यही वह पुरुष है जिसका जादू शारदा के सिर पर चढ़ कर बोल रहा है। उसके मन को बात कुछ जँची नहीं। उसे लगा कि वह व्यर्थ ही वहाँ खड़ा है—उपेक्षित। इसलिए चुपचाप बाहर निकल आया। हर चीज़ का रहस्य, खुलने के बजाय उसके मन की आँखों के सामने और दुरूह, और जटिल और अभेद्य बनता जा रहा था। जग्गू की मानसिक, अवस्था ठीक वैसी ही हो रही थी जैसी सैकड़ों की भीड़ में बैठे उस बच्चे की होती है जो किसी जादूगर को कभी साँप चबाते देखता है, तो कभी शीशा कड़कड़ाकर खा जाते। उसे सब-कुछ रोमांचकारी, भयप्रद, कौतूहलपूर्ण और वीभत्स लग रहा था। और अन्त में—'यह संसार ही एक माया है—' ऐसा सोचकर वह बात की कड़ी ही छोड़ देता।

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर जग्गू खाना बनाने बैठा ही था कि रूपन-सिंह के घर की ओर से लोगों का शोर-गुल सुनायी दिया। बाहर निकल-कर उसने देखा कि बहुत से लोग रूपनसिंह के घर की ओर भागे चले जा रहे हैं। शोर बढ़ता ही गया। कुछ देर तक जग्गू गुमटी पर ही खड़ा रहा लेकिन शोर-गुल के बीच से जब चीख-पुकार और औरतों का रोना-चिल्लाना भी सुनायी पड़ने लगा तब जग्गू भी उस ओर लपका।

जग्गू के वहाँ पहुँचते-पहुँचते पूरा गाँव इकट्ठा हो गया था। रूपनसिंह के सिर से रक्त की एक पतली हलकी धार बहकर ऊपरी होठ तक आयी हुई थी। वह रूआँसा चेहरा लिये, अपनी क्षीण आवाज में कुछ कहने की कोशिश कर रहा था लेकिन अपनी बात कह नहीं पाता था; क्योंकि बिचित्तरसिंह हुहुआते हुए, वहाँ पहुँच जाते और फिर तू-तू, मैं-मैं के शोर-गुल में रूपन-सिंह का क्षीण स्वर डूब जाता। एक हंगामा मचा हुआ था। औरतों ने तो अपनी चीख-पुकार से आकाश सिर पर उठा लिया था। गोपाल फेंटा बाँध-कर इधर-उधर कूद रहा था और बिचित्तरसिंह आँखें लाल-लाल किये, हाथ

भाँज-भाँजकर रूपनसिंह के घर की औरतों से झगड़ रहे थे। रूपनसिंह सबों से अपनी फरियाद करने का उपक्रम-मात्र करते कि बिचित्तरसिंह गरजते हुए वहाँ आ पहुँचते। बेचारा कमजोर रूपनसिंह इतना ही कहकर रह जाता—

"हाँ-हाँ, तो मुझे लूट लो, गाँव से निकाल दो। लेकिन याद रखो, भगवान सब देखता है।" यह सुनकर बिचित्तरसिंह और गरम हो उठते।

जग्गू को देखते ही रूपनसिंह ने उसके पास अपनी फ़रियाद करनी शुरू की ही थी बिचित्तरसिंह बीच में कूद पड़े। गोपाल भी उछलकर वहाँ आ पहुँचा। जग्गू को यह बात बहुत बुरी लगी। वह तमककर बोला—

"आप दोनों बाप-बेटे मिलकर इस ग़रीब को चबा क्यों नहीं जाते? इस तरह केवल झाँऊ-झाँऊ करने से क्या होगा?" जग्गू की यह बात सुनकर बिचित्तरसिंह और गोपाल दोनों ही, क्षणभर के लिए ठिठक गये। जग्गू उनका अपना आदमी होकर भी ऐसी बात बोल सकता है—ऐसी उनको आशंका नहीं थी। जग्गू ने शिकायत के स्वर में कहा—

"आप लोग इनकी बात सुनने नहीं देते और खुद ताक़त के बल पर अत्याचार करते फिरते हैं। ग़रीब पर दया भी नहीं आती!" बिचित्तरसिंह को भी क्रोध आ गया। उन्होंने व्यंग्य में कहा—

"तुम बड़े न्यायी और दयालु हो तो इन्हें भी अपने घर में थोड़ी-सी जगह दे दो। लेकिन मेरी ज़मीन पर कब्जा जमाने की कोशिश करेंगे तो खून हो जायेगा।" जग्गू को बिसेसरसिंह की बात याद आ गयी। उसने भी व्यंग्य किया—

"हाँ-हाँ, खून क्यों नहीं होगा? इसीलिए तो बेटे को पहलवान बनाया है। लेकिन यह मत भूलिए कि फाँसी का फन्दा मोटे गले को भी जकड़ सकता है।" जग्गू की इस बात से गोपाल का पौरुष धधक उठा। चीखकर बोला—

"मुझे फाँसी का डर नहीं है।"

"अरे चुप भी रहो। कमज़ोर पर हाथ उठानेवाले में इतनी हिम्मत कहाँ कि मौत का सामना कर सके। जो अपनी जान की परवाह नहीं करता

वह छोटी-छोटी बातों की परवाह करेगा ?"

जग्गू की बातों से रूपनसिंह को थोड़ी हिम्मत हुई। उसने सरोष कहा—

"मैं ग़रीब आदमी हूँ। आज तीस वर्ष से जिस ज़मीन को जोतता आया हूँ, वह ज़मीन मुझसे ये लोग छीनना चाहते हैं। माना कि यह ज़मीन इन्हीं की है लेकिन इसमें मैंने मकई की फ़सल लगाई है, इस खेत पर मैंने मेहनत की है; और अब ये लोग कहते हैं कि खेत में मत घुसो।"

"हाँ-हाँ, मेरा खेत है। मैं अपने खेत में नहीं घुसने दूँगा।" बिचित्तरसिंह ने गरजकर कहा।

"कैसे नहीं घुसने दीजिएगा ? अब इसका फैसला कचहरी में होगा।" रूपनसिंह ने गरजकर प्रत्युत्तर दिया—"फ़सल काट लेने पर आप ज़मीन वापस ले लेते तो मुझे भी कोई एतराज नहीं था लेकिन अब तो ज़मीन भी नहीं लेने दूँगा। आपका न्याय नहीं चलेगा। सारा गाँव जानता है 'कि मैं तीस साल से यह ज़मीन जोतता हूँ और इसी के एक हिस्से में मेरा घर भी है जिसका एक छप्पड़ आपने अभी उजाड़ दिया है।"

अब गाँववाले भी कुछ-न-कुछ बोलने लगे। जग्गू के विरोध ने तर्क-वितर्क की एक लहर उठा दी। भीड़ तो अनुकरण करना जानती है। चारों ओर से तरह-तरह की आवाजें उठने लगीं। लोग दोनों पक्ष को समझाने-बुझाने लगे। कुछ लोग बिचित्तरसिंह को समझा-बुझाकर वहाँ से हटा ले गये। लेकिन स्थायी वैमनस्य का बीज, जो किसी ने जान-बूझकर बिचित्तरसिंह और रूपनसिंह के मन में डाल दिया था—अंकुरित हो उठा। जग्गू चुपचाप गुमटी पर लौट आया और रूपनसिंह थाने चले गये।

उसी दिन शाम होते-होते दारोगा गाँव में आ धमका। तहक़ीक़ात और गवाहियाँ शुरू हुईं। मुक़द्दमा दायर हो गया।

दारोगा के चले जाने के बाद रूपनसिंह गुमटी पर जग्गू से मिलने पहुँचे। जग्गू का मन बहुत उदास था। सुबह-सुबह उसे एक नया अनुभव हुआ था। तीन-चार दिन के भीतर ही जग्गू के मन का कोमल पक्ष प्रस्फुटित

हो उठा था। शारदा ने उसके मन में सोये शिशु को जागृत कर दिया था। अब उसके मन का शिशु बिलखता, सहारा खोजता, स्नेह और वात्सल्य के लिए ललकता, रूठता और कभी-कभी किलकारियाँ भरता। नारी का संसर्ग पुरुष में चेतना भर देता है, भावनाओं के द्वार खोल देता है, कल्पना और द्वन्द्व की लहरें उठा देता है और तब पुरुष कभी कोमलता की ओर दौड़ता है तो कभी कठोरता की ओर। लेकिन प्राय: संतुलन के अभाव में मुँह के बल जा गिरता है। शारदा ने, मिलते ही जग्गू पर पूर्ण अधिकार जमाना शुरू कर दिया था। जग्गू ने उस अधिकार को बहन का भाई पर अधिकार जाना। सहोदरा बहन का प्रेम आदत, व्यवहार और संस्कार में घुला-मिला रहता है। इसलिए, उसके प्रति भाई जागरूक नहीं रहता। लेकिन शारदा अनायास ही मिली हुई एक अनजान सरल सुन्दरी थी। यहाँ आकर्षण मुख्य था—संस्कार गौण, यहाँ भावना तीव्र थी व्यवहार मद्धिम और कोमलता गहरी थी लेकिन कठोरता रंचमात्र भी नहीं। जग्गू ने एक शाम खाना नहीं खाया तो शारदा रूठ गयी थी लेकिन आज सुबह से जग्गू की किसी ने खोज-खबर नहीं ली। जग्गू के मन का शिशु बिलख-बिलखकर रो रहा था। उसके मुँह में अन्न का दाना गये चौबीस घंटे से ऊपर हो रहा था।

रूपनसिंह का ऐसे समय आना उसे अच्छा नहीं लगा। लेकिन रूपनसिंह कुछ उम्मीद लेकर आये थे। उन्होंने बिना कहे-पूछे बैठते हुए कहा—

"मामला तो दर्ज हो गया। अब फ़ैसला भगवान के हाथ में है।" जग्गू कुछ नहीं बोला।

कुछ देर की चुप्पी के बाद रूपनसिंह ने कहा—

"अब चिंता करने से काम तो चलेगा नहीं। उद्यम करना है उद्यम! लेकिन सच कहता हूँ जग्गू, यदि तुम नहीं आते तो वे दोनों बाप-बेटे मुझे अधमरा ही कर देते।"

जग्गू फिर भी चुप रहा। रूपनसिंह ने सोचा कि मेरे ही दु:ख से यह इतना दुखी हो रहा है। अत: दुखी स्वर में बोले—

"मैंने आज जाना कि कौन मेरा अपना है और कौन पराया? उस दिन

बिसेसरसिंह तुम्हारे बारे में तरह-तरह की बातें कह रहे थे लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया।" जग्गू ने चौंककर रूपनसिंह को देखा। रूपनसिंह बोलते गये—"हाँ जग्गू ! मैंने बिल्कुल विश्वास नहीं किया। मैं तो तुम्हें बचपन से जानता हूँ। ठीक अपने बाप-जैसा स्वभाव पाया है तुमने। वह भी तुम्हारी तरह दयालु थे। क्या हुआ यदि एक अबला को अपने घर में शरण दे दी तो ? ठीक किया। मैंने बिसेसरसिंह के मुँह पर कह दिया कि बिना जाने-समझे, उस बेचारे पर लांछन लगाना ठीक नहीं है। हाँ, साफ कह दिया मैंने। उन्हें मेरी बात बुरी लगी। लेकिन उससे क्या। माना कि वह भी मुझ पर बहुत दयालु हैं, लेकिन, गलत बात मैं कैसे मान लूँ ? ठीक कहता हूँ कि नहीं जग्गू ?" जग्गू अवाक् रूपनसिंह को देख रहा था। और उसकी आँखों के आगे रहस्य का पर्दा किंचित काँप रहा था। जग्गू के सामने पश्चिम में सूरज डूब रहा था, क्षितिज के पास बादलों की तहें—गहरी लाल और बैंगनी रंग में रंगी, नीले आकाश की किनारी-जैसी लग रही थीं। घने, अँधियारे, खामोश पेड़, डूबते सूरज को सिर झुकाये विदा दे रहे थे। पता नहीं, जग्गू प्रकृति की रहस्यमयता में डूब रहा था या आदमी के कारनामों को परखने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन उस अर्द्धशिक्षित ग्रामीण के चेहरे पर किसी गहरी वेदना, गहरे आनन्द और दुरुह व्यंग्य की अभिव्यक्ति स्पष्ट थी। उसके चेहरे की अभिव्यक्ति प्रसिद्ध चित्र-कृति 'मोनालिज़ा' की अभिव्यक्ति की दुरुहता को अर्थ दे रही थी।

रूपनसिंह जग्गू की चुप्पी देखकर हैरान थे। उन्होंने अपनी व्यस्तता का जग्गू का बोध कराने के लिये कहा—

"अच्छा जग्गू, अभी तो चलता हूँ। और कई गवाह ठीक करने हैं। तुम्हें कचहरी में क्या कहना है यह कल बता दूँगा।"

"मुझे आपके मुक़द्दमे से कोई मतलब नहीं।"

जग्गू अचानक ही गम्भीर स्वर में बोल उठा। रूपनसिंह चौंक उठे—

"क्या कहते हो जग्गू ? तुम्हारे और बिसेसरसिंह के बूते पर तो मैंने

मुकदमा किया है। बिसेसरसिंह ने भी गवाह बनने से इंकार कर दिया है लेकिन वह कम-से-कम रुपये-पैसे की मदद देने को तो तैयार ही हो गये हैं।"

"मैं आपकी किसी तरह मदद नहीं कर सकता।" जग्गू ने पूर्ववत् गंभीरता से कहा। रूपनसिंह ने पैंतरा बदला—

"यह कैसे हो सकता है? क्या तुम भी बिचित्तरसिंह से डरते हो?"

"मैं किसी से नहीं डरता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हर ग़लत काम में मैं शामिल होता चलूँ।" जग्गू झल्ला उठा।

"लेकिन मुझ पर तुम्हें दया करनी ही होगी जग्गू। तुम्हें मैं अपने बेटे की तरह प्यार करता हूँ। मेरी छोटी सी विनती नहीं मानोगे?" रूपन-सिंह ने गिड़गिड़ाकर कहा। जग्गू पसीज गया। बोला—

"चलिए मैं सुलह करवा देता हूँ। मुक़दमा लड़ने से आपको कुछ नहीं मिलेगा। आप बर्बाद हो जाइएगा।"

"सुलह? सुलह तो मैं मरकर भी नहीं करूँगा। मैं बर्बादी से नहीं डरता। अपनी सारी ज़मीन बिसेसरसिंह को लिख दूँगा लेकिन बिचित्तर-सिंह को चैन नहीं लेने दूँगा।"

"आप दोनों बिसेसरसिंह के हाथों बिक गये हैं। यदि मेरी बात पर ध्यान नहीं दीजियेगा तो पछताइएगा।"

"अरे जाओ-जाओ। आज का लौंडा मुझे उपदेश देने आया है। बिसेसर-सिंह ठीक ही कहता था कि तू उस लड़की को कहीं से उड़ाकर ले आया है।" यह कहकर गुस्से में काँपते हुए रूपनसिंह तमकते हुए चले गये। जग्गू को उनकी बुद्धि पर न तो हँसी आयी और न रोना आया। उसके होठों पर वही 'मोनालिज़ा' के होठों पर की मुस्कराहट जैसी दुरूहता, दयनीयता और व्यंग्य काँपता रहा। सामने क्षितिज पर के बादल की तहें, पेड़-पौधे, प्रकाश-छाया, घुल-मिलकर अंधकार में एकाकार हो गयी थीं। जग्गू गुमटी में गया और हाथबत्ती जलाकर रामायण पढ़ने बैठ गया—

नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारन ही।
लघु जीवन संबत् पंच दसा। कल्पांत न नास गुमानु असा……

"आज बहुत भक्ति-भाव उमड़ रहा है?" मुनिदेव आते ही बोल पड़ा। जग्गू ने रामायण बन्द कर दी और मुनिदेव को एकटक देखना शुरू कर दिया।

"ऐसे क्या देख रहे हो?" मुनिदेव ने आश्चर्य से पूछा। जग्गू मुस्कराने लगा, बोला—

"देख रहा हूँ कि तुममें कितने दिन जीने का गुमान है।"

"बस तो ऐसा मुझसे ही पूछ लेते? इस तरह देखने का कष्ट करने की क्या जरूरत थी।" मुनिदेव मजाक में बोलता रहा—

"मुझ में पाँच वर्ष तक जीने का गुमान है। जब तक मुझमें जवानी है।" यह कहकर मुनिदेव ने नोटों का बन्डल निकालना शुरू किया।

"आखिर तुमने नहीं ही माना।" जग्गू के स्वर में विषाद था।

"इसमें मानने न मानने की क्या बात थी? लो रखो।"

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए। तुम भी नहीं लेते तो अच्छा था।" जग्गू ने खाट से उठते हुए कहा—"यह धन तुम्हारा नहीं है।"

"फिर किसका है? बिसेसरसिंह का?" मुनिदेव ने मुँह बनाकर पूछा। जग्गू अपने दोनों हाथ पीठ पर बाँधता हुआ बोला—

"नहीं, उसका भी नहीं है। यह पाप का धन है।"

"और पुण्य का धन वह है जिससे न हमारा पेट भरता है और न देह ढकती है।" मुनिदेव के स्वर में क्रोध और व्यंग्य था। वह बोलता गया—

"तुम्हारे लिए तो संसार में कोई नहीं है। ग़रीबी का दुख तुम क्या जानो। अगर भूख का सामना करना पड़ता तो मालूम हो जाता कि आज के ज़माने में पाप का धन कौन है और पुण्य का धन कौन! खैर, तुम्हें नहीं लेना है तो मत लो लेकिन मैं तुम्हारे-जैसा कायर नहीं हूँ।"

"मैं कायर हूँ?" जग्गू ने तमककर पूछा।

"हाँ, तुम परले दर्जे के कायर हो! जो खुलकर पाप-कर्म का विरोध

नहीं कर सकता उसे उपदेश देने का अधिकार नहीं है। तुमने दो बार माल-गाड़ी लुटवायी है और यदि मेरी सहायता नहीं लोगे तो जिन्दगी-भर यही पाप-कर्म करवाते रहोगे !"

जग्गू फिर चुप हो गया। उसे लग रहा था कि मुनिदेव जो कुछ कह रहा है सत्य है। फिर भी तथ्य को स्वीकार करने की उसमें शक्ति नहीं थी। इधर चन्द रोज में ही वह तन-मन से बहुत दुर्बल हो गया था। वह चुपचाप उदास मन से खाट पर बैठ गया। उसके मन की बेचैनी मुनिदेव से छिपी नहीं रही। मुनिदेव ने स्नेहपूर्वक कहा——

"अच्छा चलो, मेरे घर चलो ! वहीं बातें होंगी।"

"अभी मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

"तुम्हें चलना पड़ेगा।"

"मुझे इतना दुर्बल मत समझो मुनिदेव।"

"मेरे घर न जाने में तुम्हारी कौन-सी मज़बूती सिद्ध होती है ?"

"पहले मैं अपने मित्रों का विरोध करना सीख लूँ, फिर शत्रुओं का भी विरोध करूँगा।" जग्गू ने हँसकर कहा। लेकिन उसकी हँसी में दुःख था——करुणा थी।

"अच्छी बात है। अब मैं चलता हूँ। रुपये की ज़रूरत हो तो माँग लेना।" मुनिदेव ने जाते हुए कहा।

"चिट्ठी बिसेसरसिंह को वापिस कर दी ?"

"हाँ यार, चिट्ठी तो उसने ऐंठ ली लेकिन कोई बात नहीं। मैं भी घात में बैठा हूँ।"

"बड़े भारी दुष्ट हो !"

"केवल दुष्टों के लिए।" यह कहता हुआ मुनिदेव चला गया। जग्गू ने फिर से रामायण पढ़नी शुरू की लेकिन उसका मन नहीं लगा। वह चुप-चाप खाट पर पड़ा रहा——न जाने कब तक !

९

दिन बीतते चले गये। इस बीच कई नयी बातें पुरानी पड़ गयीं और पुरानी बातें ताज़ा हो आयीं। वर्षा का मौसम खत्म हुआ। खेत में गेहूँ-जौ के पौधे लहलहा उठे। रूपनसिंह और बिचित्तरसिंह मुकदमेबाज़ी के चक्कर में बेहाल-फटेहाल रहने लगे। बिसेसरसिंह की दिनचर्या में या जीवन-क्रम में कोई परिवर्तन नहीं आया—वही मधुर-भाषण, अफ़ीम-सेवन, दिन में साधु-सज्जन जैसा रहन-सहन और रात होते ही दुर्भाग्य दस्यु! लेकिन रेलवे लाइन पर मिलेट्री का कड़ा पहरा लग जाने के कारण देसौरा की गुमटी के आस-पास उनकी गतिविधि कुछ दिनों के लिए समाप्तप्राय जैसी हो गयी।

राजस्थानी जेन्टिलमैन ठाकुर भानुप्रताप न जाने क्यों, जग्गू से कतराता फिरता। जग्गू ने देखा-महसूस किया कि यह आदमी जो कुछ भी करता है, जो कुछ भी बोलता है—सब नपातुला, जान-बूझकर, उसका परिणाम सोच-समझकर। उसके बोलने में अनुगृहीत करने का भाव प्रबल रहता, वह अपनी बात कम करता और करता भी तो ख़याली बातें करता! दो रोज़, तीन रोज़ पर शारदा और भानुप्रताप दोनों मुज़फ्फरपुर जाते, सिनेमा देखते, ख़रीद-फ़रोख्त करते और लौट आते। साथ में ब्रह्मदेव भी होता। ब्रह्मदेव से ही जग्गू को पता चला कि ठाकुर साहब शराब खूब पीते हैं और उसके बाद शारदा की मरम्मत करते हैं। लेकिन नशा उतरते ही दोनों एक-दूसरे के फिर प्यारे हो जाते हैं। वे लोग कब तक यहाँ पड़े रहेंगे, फिर कहाँ जायेंगे, क्या करेंगे, इसकी चर्चा तक नहीं होती। जग्गू भी जान-बूझकर कुछ नहीं पूछता। एक दिन भानुप्रताप घूमता हुआ गुमटी पर आया और बहुत ही गंभीरतापूर्वक बोला—

"आपकी ज़मीन में मैं एक दोमंजिला मकान बनाना चाहता हूँ। वह

मकान आपके और शारदा के नाम से रहेगा। उसी में एक तरफ गोदाम बनवाऊँगा जिससे कि यहाँ रहकर कुछ बिजनेस कर सकूँ। मेरे ख्याल से पचास-पचपन हजार में काम बन जायेगा। आपका क्या ख्याल है?"
'पचास-पचपन हजार?' जग्गू सोचता रह गया। बोला कुछ नहीं। भानुप्रताप मुँह से सीटी बजाता हुआ पैंट में दोनों हाथ डाले, घर चला गया।

जग्गू अपने घर पहुँचा। बाहर कोई नहीं था। भीतर बरामदे में भानुप्रताप बैठा हुआ दाढ़ी बना रहा था। शारदा, जमीन पर बैठी ठेहुनों में ठुड्डी दाबे, उदासी में डूबी थी। जग्गू आँगन पार कर सीधे बरामदे में पहुँचा और मुस्कराता हुआ बोला—

"आज आप इस तरह उदास क्यों बैठी हैं?"

"आपको मतलब? इस तरह मेरे साथ बात मत किया कीजिए।" शारदा गरज उठी। जग्गू को काठ मार गया। उसे भ्रम हुआ कि शारदा कहीं पागल तो नहीं हो गयी।

कुछ देर लजाया-झल्लाया वह ठगा-सा खड़ा रहा। शारदा पूर्ववत ऐंठी हुई बैठी रही। सात्विक क्रोध रूप, गुण को प्रज्वलित कर देता है और दुर्भावजनित क्रोध सरल-सुन्दर को भी वीभत्स बना देता है। शारदा की विकृत आकृति जग्गू देख नहीं पाया और तेजी से बाहर निकल आया। जैसे और भी कई बातें उसकी समझ में नहीं आती थीं वैसे ही यह बात भी उसकी समझ में नहीं आयी। उस दिन के बाद से वह कई रोज तक घर नहीं गया और न भानुप्रताप और ब्रह्मदेव ही उससे मिलने आये। जग्गू को भानुप्रताप यदि दुर्गंध लगता तो शारदा अगाध लगती। और गहराई में एक सम्मोहन है, अनिवर्चनीय सौन्दर्य है, मूक संगीत है लेकिन रहस्य में शुष्कता है, विराग है, दुराव और कर्कशता है। जग्गू को भानुप्रताप प्रभावित नहीं कर सका। एक दिन सुबह ही कोट-पैंट में लैस भानुप्रताप गुमटी पर अचानक आ धमका। जग्गू रोटी सेंक रहा था। भानुप्रताप को देखकर उठ खड़ा हुआ।

"मैं आज जा रहा हूँ।" भानुप्रताप ने मुस्कराते हुए कहा।

"कितने बजे की गाड़ी से?" जग्गू के स्वर में आश्चर्य था।

"अभी दस बजे की गाड़ी से। लेकिन एक हफ्ते में ही लौट आऊंगा। एक ज़रूरी काम से जा रहा हूँ। आप ज़रा शारदा का ख़याल रखियेगा।"

"तो क्या वह नहीं जा रही हैं ?"

"नहीं, वह तो यहीं रहेगी।" भानुप्रताप ने सहज उत्तर दे दिया जैसे मामूली-सी बात हो। जग्गू खीझ और क्रोध से चुप हो रहा। क्षण-भर बाद भानुप्रताप ने कहा—

"आप घर पर ही क्यों नहीं खाना खाते ? मेरे जाने के बाद तो आपको वहीं रहना चाहिए।"

"क्या चाहिए और क्या नहीं चाहिए यह मैं स्वयं जानता हूँ।" जग्गू ने मन में कहा लेकिन बोला कुछ नहीं।

भानुप्रताप उसी दिन दस बजे की गाड़ी से चला गया। जग्गू का मन गुमटी पर लगा नहीं। 'घर जाना चाहिए या नहीं ?' इसी द्वन्द्व से ऊबकर वह स्टेशन चला आया। उसे देखते ही राघव अपनी आदत के अनुसार उछल पड़ा—

"आइए जगनारायण बाबू !"

जग्गू चुपचाप एक ओर बैठ गया। मुनिदेव ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा और फिर वह अपने काम में लग गया। राघव गंभीरतापूर्वक मुँह फाड़कर भाषण के लहजे में बोला—

"चारों ओर अन्याय का राज है। लेकिन कोई देखनेवाला नहीं है। बिसेसरसिंह इस बार भी बेदाग बच गया। जानते हो, उस साले डाक्टर ने मुझे सर्टिफिकेट देने से इंकार कर दिया। खैर,. कभी-न-कभी तो मौक़ा आयेगा ही। मैं एक-एक को······"

"फिर अपनी बकवास शुरू की।" मुनिदेव ने दाँत पीसते हुए कहा। राघव हँसता हुआ बोला—

"बकवास ! ······अच्छा, तो मैं चला ही जाता हूँ। मुझे एक जरूरी काम भी है। जयहिन्द।"

राघव के चले जाने के बाद जग्गू उदास स्वर में बोला—

"मुनिदेव, आज मुझे भंग पीने की इच्छा हो रही है।"

"अभी प्रबंध करता हूँ······लेकिन भंग ही क्यों—ताड़ी क्यों नहीं ?" मुनिदेव ने तपाक से पूछा। जग्गू हिचकिचाता हुआ बोला—

"नहीं, नहीं, ताड़ी नहीं पीऊँगा।"

"क्यों ?"

"जाति भ्रष्ट हो जायेगी और उसमें बदबू भी बहुत होती है।" जग्गू ने नाक सिकोड़कर घृणा व्यक्त की। मुनिदेव उछलकर उसके पास आ गया और बोला—

"अरे आजकल बैसाख थोड़े है कि ताड़ी से बदबू आयेगी। तुम चलो गुमटी पर। ताड़ी-चिखना वगैरह लेकर अभी पहुँचता हूँ।"

"नहीं-नहीं, मैं ताड़ी नहीं पीऊँगा।" जग्गू के स्वर में दृढ़ता थी।

"लेकिन भंग तो शाम को ही पी जा सकती है।" निराश स्वर में बोलता हुआ मुनिदेव फिर अपनी जगह पर जाकर बैठ गया। जग्गू कुछ देर बाद ही वहाँ से चल पड़ा। गुमटी पर पहुँचकर उसके पैर अनायास ही घर की ओर बढ़ गये। उदारता, दया और भावुकता की बाढ़ के सामने दृढ़ता का बाँध ठहर नहीं पाता।

शारदा, घर के भीतर वाले बरामदे में खाट डाले औंधी पड़ी थी। ब्रह्मदेव, घर के बाहर, बरामदे में रखी हुई चौकी पर सो रहा था। चारों ओर खामोशी थी। कुछ देर तक जग्गू आँगन में खड़ा-खड़ा शारदा को देखता रहा। उसके मन में उदासी और वैराग्य का भाव करुणा और दृढ़ता से होड़ ले रहा था। अधिक देर तक वहाँ खड़ा रहना उसने उचित नहीं समझा और वह लौटने ही वाला था कि शारदा ने करवट बदली। जग्गू पर नज़र पड़ते ही वह सकपकाकर उठ बैठी। जग्गू ने देखा कि उसकी आँखें लाल-लाल और सूजी हुई थीं, चेहरा पीला पड़ गया था और सिर के बाल रूखे-रूखे हो रहे थे।

"तबीयत खराब है क्या ?" जग्गू ने पूछा ही था कि शारदा फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसने सोचा कि

भानुप्रताप शायद झगड़कर चला गया है। जग्गू कुछ देर तक सकते की हालत में खड़ा रहा और शारदा की काँपती हुई देह देखता रहा। ममता के उद्रेक से वह अनायास ही बोल उठा—

"भानु बाबू रूठकर चले गए हैं क्या ?"

शारदा ने सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत कर दिया। बोली कुछ नहीं।

"फिर क्या हुआ है ?"

"वैसे ही रुलाई आ गयी।" शारदा आँखें पोंछती हुई अवरुद्ध गले से बोली।

"बिना किसी बात के भी कोई रोता है क्या?" जग्गू ने मुस्कराते हुए पास जाकर पूछा।

"आप तो जैसे जानते ही नहीं ?" मानवती जैसी शारदा बोली। जग्गू कौतूहल से भर गया क्योंकि उसे कुछ भी पता नहीं था। उसने पूछा—

"मैं आपके रोने का कारण कैसे जान सकता हूँ भला ? दूसरों की बात तो दूर, मैं अपनी बात भी नहीं जान पाता।"

"मैं कोई दूसरी हूँ ?" शारदा बच्चों-जैसी क्रुद्ध हो उठी। जग्गू सकपका गया। बोला—

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है। बात यह है कि मन तो सबका अलग-अलग है। फिर आपके मन की बात मैं कैसे जान सकता हूँ ?"

"आप यदि मुझे अपना समझते हैं तो मेरे मन की बात अवश्य जान सकते हैं।"

"असम्भव।" जग्गू को वह बात याद आ गयी जब शारदा ने उसे भानुप्रताप के सामने डपट दिया था। जग्गू बोलता गया—"मेरे समझने या नहीं समझने से ही तो सब-कुछ नहीं हो जाता। आप क्यों खुश हैं, क्यों नाराज़ हैं—यह मैं कदापि नहीं जान सकता।"

"मैं तो आपके मन की बात जान सकती हूँ।" शारदा ने मुस्कराते हुए कहा। जग्गू किंचित व्यंग्य से बोला—

"आपकी बात कुछ और है। मैं तो देहाती आदमी हूँ। अब मैं यह कैसे

समझूँ कि अभी-अभी आप क्यों रो रही थीं और अब क्यों मुस्करा रही हैं ?"

"देहाती के साथ-साथ आप बमभोले भी हैं। आप अपने किसी विवाहित मित्र से पूछिएगा तो वह बता देगा।"

"जब मैं नहीं जान पाया फिर मेरा मित्र कैसे जानेगा ?"

"उससे कहिएगा कि···कि···आज जब ठाकुर साहब चले गये···तब शारदा रो रही थी।" यह कहकर शारदा लजा गयी। उसने तलहथियों से अपनी आँखें बन्द कर लीं। जग्गू हँसता हुआ बोला—

"ओ हो, तो यह बात है! भई, मैं अनुभवहीन आदमी हूँ। इसके अलावा, आपका स्वभाव कुछ ऐसा है कि······"

"देखिए, आप फिर मेरे स्वभाव को कोसने लगे।"

"नहीं-नहीं मैं कोस नहीं रहा हूँ। मैं तो आपसे कह रहा था कि किसी के स्वभाव को समझने के लिए समय लगता है।"

"लेकिन मुझे आपको समझने में थोड़ी देर भी नहीं लगी। हाँ, यह दूसरी बात है कि जो कुछ मैं समझ पायी हूँ वह कुछ दिन बाद नहीं रहे।"

जग्गू मन में सोच रहा था कि यह लड़की कैसी विचित्र है। कभी हँसती है, कभी रोती है तो कभी झल्ला उठती है···'तिरिया चरित्तर' क्या इसी को कहते हैं ?···लेकिन इसके मुखमंडल पर भोलापन का भाव सर्वदा वर्तमान रहता है। जग्गू फिर क्षणिक कड़ुवाहट से घुट रहा था। वह अपने मन का भाव छिपा नहीं सका और बोला—

"मैं गिरगिट की तरह रंग बदलना जानता नहीं। मुझमें ऐसी बीमारी होती तो···"जग्गू आगे के शब्द बोल नहीं पाया।

"तो क्या होता ?" शारदा ने विनोद-मिश्रित कौतूहल से पूछा।

"तो ?···जाने दीजिए। क्या कीजिएगा सुनकर।"

"अब तो आपको बताना ही पड़ेगा।" शारदा ने जिद्द पकड़ ली। जग्गू असमंजस में पड़ गया कि इसी समय बाहर से गोपाल की पुकार सुनायी दी। गोपाल और बिचित्तरसिंह से उन दिनों जग्गू मन-ही-मन चिढ़ा हुआ था लेकिन ऐसे अवसर पर गोपाल का आना उसे वरदान जैसा लगा। उसके

बाहर पहुँचते ही गोपाल बोला—

"बाबू आपको बुला रहे हैं।"

"किसलिए?"

"यह मुझे नहीं मालूम।"

जग्गू क्षण-भर कुछ सोचता रहा। फिर गोपाल के साथ हो लिया। रास्ते में गुरुजी का घर पड़ता था। वैसे उनका नाम था रामखेलावन मिश्र लेकिन इलाके में वह गुरुजी के नाम से ही विख्यात थे। गुरुजी की उम्र लगभग अस्सी वर्ष होगी। वह उस गाँव के भगिनमान थे। सन की तरह सफ़ेद बड़ी-बड़ी मूँछे, गंजा सिर, झुर्रियों से भरा हुआ तेजमय मुखमंडल, और उनकी दोहरी लम्बी देह देखनेवालों के मन में श्रद्धा उत्पन्न करती। वह श्रद्धेय थे भी। जीवन-भर उन्होंने अपर प्राइमरी स्कूल में बच्चों को पढ़ाया और बदले में बच्चों ने अनजाने ही अपना शिशुत्व और निश्छलता उन्हें दक्षिणास्वरूप प्रदान कर दी। घोर विपत्ति के समय गाँववाले उनकी राय लेने आया करते। उनके घर में उनकी सत्ताईस वर्षीया विधवा बेटी के सिवा और कोई नहीं था। जग्गू चुपचाप अपनी परेशानियों में खोया-खोया चला जा रहा था कि गुरुजी की आवाज़ सुनकर चौंक उठा—

"कहाँ जा रहे हो जग्गू? अपने बूढ़े गुरु को बिल्कुल भूल गये?"

"प्रणाम गुरुजी!" जग्गू झेंपता हुआ गुरुजी के सामने खड़ा हो गया।

"कहाँ रहते हो आजकल? बिल्कुल दिखाई नहीं देते।" गुरुजी ने स्नेहपूर्वक पूछा।

जग्गू अपनी कनपट्टी सहलाता हुआ विनम्रता से बोला—

"यहीं तो रहता हूँ गुरुजी! इधर कुछ झंझटों में फँस गया था सो मिल नहीं सका।"

"हाँ, मैंने बहुत कुछ सुना है और अब तुमसे सुनने की प्रतीक्षा में हूँ।" गुरुजी ने कृत्रिम क्रोध दरसाते हुए कहा। उनके स्वर में प्यार अधिक था। तभी गुरुजी की बेटी अनुराधा गिलास में पानी लेकर आयी। जग्गू ने सहज दृष्टि से अनुराधा को देखा लेकिन तत्क्षण ही उसकी उपचेतना जागृत हो

उठी। बचपन के दिन उसकी आँखों के आगे तैर गये जब वह अनुराधा को रानी बनाता था और खुद राजा बनता था। इधर जग्गू अनायास ही भावुक और संवेदनशील हो उठा था। जग्गू ने अनुराधा की ओर से दृष्टि हटा ली लेकिन उसका मन कई तरह की कोमल भावनाओं में उलझ गया। उसने महसूस किया कि अनुराधा सुन्दर है, सुशील है और अभागिन है। जग्गू झेंपता हुआ बोला---

"अच्छा, अभी तो आज्ञा दीजिए। बाबू बिच्चित्तरसिंह ने बुलाया है।"

"फिर मिलना जरूर।" गुरुजी ने आदेशात्मक स्वर में कहा। जग्गू बिना कुछ बोले वहाँ से चल पड़ा।

बिच्चित्तरसिंह अपने दालान के बरामदे में खाट पर बैठे थे। जग्गू को देखते ही वह खाट पर से उठ खड़े हुए और बहुत ही स्नेह से उन्होंने जग्गू को अपनी बगल में बैठाया और कुशल-क्षेम पूछा। जग्गू अनासक्त भाव से जवाब देता रहा। उसने एक बार भी बिच्चित्तरसिंह की ओर आँखें उठाकर नहीं देखा। बिच्चित्तरसिंह भली-भाँति समझ रहे थे कि जग्गू किसी कारण से नाराज़ है---लेकिन, उन्हें कारण का पता नहीं था। कुछ देर तक इधर-उधर की बात करने के बाद बिच्चित्तरसिंह गंभीर और दुःखी स्वर में बोले--

"जग्गू भाई, मैंने आज तुम्हें बहुत ज़रूरी काम से बुलाया है। तुम जानते हो कि मुझे गाँववालों ने सरपंच बना दिया है। मैंने भी आज तक अपना धर्म निभाया है। दस की दुश्मनी मोल ले ली लेकिन, जानबूझकर किसी के साथ अन्याय नहीं होने दिया। तुम्हें मैं अपना गोपाल ही समझता हूँ। इसलिए जब तुम्हारी शिकायत मेरे पास पहुँची तब यही समझो कि मेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा।"

"मेरी शिकायत?" जग्गू चौंक उठा। बिच्चित्तरसिंह ने अपना कथन जारी रखा---

"हाँ, जब से तुम्हारी शिकायत मेरे पास पहुँची है तब से मैं ठीक से भोजन नहीं कर पाया हूँ। सो नहीं पाया हूँ। जवान बेटे की देह छूकर कहता हूँ।"

"लेकिन मेरा अपराध क्या है?" जग्गू ने आश्चर्य और घबराहट की

हँसी हँसते हुए पूछा।

"तुमने एक अनजान जाति की औरत को अपने घर में बैठा रखा है। गाँववाले कहते हैं कि इससे गाँव-भर की बहू-बेटियों को भी भागने की हवा लग जायेगी। छूआछूत की तो, खैर, अब कोई बात ही नहीं उठ सकती। लेकिन, धर्म और मर्यादा का उल्लंघन करके गाँव में रहना अच्छा नहीं है।"

"देखिए बिच्चितर भाई, वे लोग अतिथि के तौर पर मेरे घर में रह रहे हैं। उनके लिए कहीं कोई ठौर-ठिकाना नहीं था। मैंने उन्हें अपने घर में शरण देकर कोई पाप नहीं किया है। जो मेरे ऊपर उँगली उठाता है वह स्वयं पापी है।" जग्गू ने किंचित क्रोध से कहा। बिचित्तरसिंह समझाने के ढंग पर बोले——

"किसी को शरण देना पाप नहीं है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। लोग तुम्हारे और उस औरत के सम्बंध में तरह-तरह की बातें..."

"बस चुप रहिए।" जग्गू बीच में ही गरज उठा। क्रोध से उसकी देह काँपने लगी——"आप जो कुछ कह रहे हैं और दूसरे-तीसरे से कहते फिर रहे हैं वह मैं बिसेसरसिंह से बहुत पहले सुन चुका हूँ। मैंने भी आपको हमेशा अपना बड़ा भाई समझा था लेकिन..."

जग्गू आगे बोल नहीं पाया और उठकर खड़ा हो गया। बिचित्तरसिंह ने दुनिया देखी थी। जग्गू की बातों का तथ्य और उसका कारण समझते उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने जग्गू की कलाई पकड़कर उसे बलपूर्वक बैठा लिया और डपटकर कहा——

"अगर ऐसी बात तुमने फिर कही तो तुम्हारा मुँह तोड़ दूँगा और स्वयं चुल्लू-भर पानी में डूब मरूँगा।" जग्गू ने बिचित्तरसिंह को घूरकर देखा। बिचित्तरसिंह की आवाज़ में क्रोध था, लेकिन उनका चेहरा दुःख और वेदना से सिकुड़ गया था और उनकी आँखों में सात्विक उत्तेजना छलक आयी थी। बिचित्तरसिंह बोलते रहे——"तुमने क्या मुझे औरत समझ रखा है कि तुम्हारी शिकायत दूसरे-तीसरे से करता फिरूँगा? लल्लो-चप्पो करनी मुझे नहीं आती। अगर तुममें मुझे ऐब दीखेगा तो मैं तुम्हारा कान

पकड़कर सीधी राह पर ला खड़ा कर दूँगा। समझे ?"

जग्गू मुँह बाये बिचित्तरसिंह को देखता रहा। बिचित्तरसिंह कुछ देर तक चुपचाप सिर नीचा किये, हाथ में पड़ी एक लकड़ी का टुकड़ा तोड़ते रहे और दुःख और क्रोध से बेचैन होते रहे। जग्गू पश्चात्ताप, ग्लानि और परिताप से भर उठा। बोला—

"मुझसे तो बिसेसरसिंह ने कहा था कि आप मेरे बारे में तरह-तरह की ग़लत बातें फैला रहे हैं।"

"और तुमने विश्वास कर लिया ? यह नहीं सोचा कि बिसेसरसिंह केवल मुखिया और ज़मींदार ही नहीं एक नम्बर का दुष्ट, नीच और नारद भी है। सबसे पहले उसी ने मुझसे इस तरह की बातें कहीं—फिर गाँववाले भी कहने लगे। अब तो बज़ाब्ता तुम्हारे खिलाफ, पंचायत में मामला दर्ज किया गया है। मुझे तो लगता है कि यह सारी आग उसी पाजी की लगायी हुई है।"

"तो ठीक है। आप जैसा उचित समझिए, फैसला कर दीजिए।" जग्गू के स्वर में दृढ़ता और वेदना सम्पृक्त हो रही थी।

"फिर वही बात !" बिचित्तरसिंह स्नेहवश झल्ला उठे—

"मैंने आज सरपंच की हैसियत से तुम्हें नहीं बुलाया है बल्कि बड़े भाई के नाते बुलाया है। मेरी बात मानो और उस औरत को इज़्ज़त के साथ विदा कर दो।"

"कहाँ विदा कर दूँ ?"

"जहाँ उसकी इच्छा हो।" बिचित्तरसिंह ने सहज सरलता से कह दिया।

"यह मुझसे नहीं होगा बिचित्तर भाई। भले घर की लड़की है। बेचारी कहाँ भटकेगी ? जब उसका पति आ जायेगा, फिर उसी से मैं कह दूँगा। लेकिन अभी तो मैं उसे विदा करने की बात सोच भी नहीं सकता।" जग्गू ने दृढ़ता से कहा।

बिचित्तरसिंह सज्जन और दयालु आदमी थे। लेकिन उनकी सज्जनता और दया का भाव गाँव के वातावरण, तथाकथित धर्म की मर्यादा और

परंपरागत संस्कार की सीमाओं के साँचे के अनुरूप ही ढल गया था। उन्होंने जग्गू की मानवता को नहीं समझा बल्कि उसे जग्गू की ज़िद और मूर्खता समझकर वह बोले—

"पागल हो गये हो क्या? जल में रहकर मगर से वैर रखना बुद्धिमानी की बात नहीं है। उस औरत के तुम्हारे घर में रहने से गाँववालों का बिल्कुल नुकसान नहीं होता। लेकिन गाँव में ऐसा कभी हुआ नहीं है। इसलिए गाँववाले उत्तेजित हो रहे हैं।"

"उन्हें उत्तेजित होने दीजिए। इस सम्बन्ध में मुझे न तो कुछ कहना है और न कुछ करना है। आप लोगों के दिल में जो बात जमे, कीजिए।" यह कहकर जग्गू उठ खड़ा हुआ। जब जग्गू वहाँ से चलने लगा तब गोपाल भी उसके साथ हो लिया। कुछ दूर पहुँचने पर गोपाल दीन भाव से बोला—

"जग्गू चाचा।"

"बोलो।"

"मुझसे आप नाराज़ हैं क्या?"

"नहीं तो।"

दोनों चुपचाप चलते रहे। गोपाल असमंजस में पड़ा हुआ-सा बोला—

"मैंने सोचा कि रूपनसिंह की बात लेकर आप नाराज़ हो गये।" जग्गू ने सिर घुमाकर बगल में चलते हुए गोपाल को देखा। शाम हो गयी थी। घरों में बत्तियाँ जल चुकी थीं। दूर से किसी के चीखने-चिल्लाने की आवाज़ आ रही थी। आकाश में थोड़े-बहुत तारे निकल आये थे। अन्धकार के धुंधलके में जग्गू क्षण-भर गोपाल की ओर देखता रहा। फिर बोला—

"तुम लोगों को रूपनसिंह पर जुल्म नहीं करना चाहिए। बेचारा ग़रीब आदमी है।"

"गरीब?" गोपाल भावावेश में बोला—"वह बहुत दुष्ट है। आपको क्या मालूम—वह कितना बड़ा नीच है। बिसेसरसिंह के भड़कावे में आकर उसने हम लोगों को गाली-गलौज देना शुरू किया। पिछले दो साल से उसने मेरी जमीन की सारी उपज हड़प रखी है। पता नहीं बाबू ने आपसे क्यों नहीं

बताया कि रूपनसिंह ने ही आपके बारे में पंचायत में मामला उठाया है।" यह कहकर गोपाल ने जग्गू की ओर देखा। जग्गू इस तरह की बातें सुनता-सुनता अभ्यस्त होता जा रहा था, इसलिए कुछ बोला नहीं। गोपाल कुछ देर के बाद अपने घर लौट गया।

जग्गू के मस्तिष्क में इतनी बातें उठ रही थीं कि वह एक बात भी सही ढंग से नहीं समझ पा रहा था। जन्म से ही वह सबों से अलग-अलग रहता आया था——न ऊधो का लेना, न माधो का देना। बस गुमटी पर पड़ा रहता था। इक्के-दुक्के गाँववाले गुमटी होकर जब गुजरते, तभी वह उन लोगों से मिल पाता। बचपन में जब वह पढ़ता था, एक लड़की के सम्पर्क में आया था और वह लड़की थी——अनुराधा! लेकिन वे बचपन के दिन थे——निश्छल भाव के दिन थे——निरुद्देश्य उठने-बैठने, खेलने-कूदने के दिन थे। सम्पर्क था, सम्बन्ध था, आकर्षण था लेकिन उसके प्रति चेतना नहीं थी, उसमें कोई उद्देश्य नहीं था। और अब जब कि वय का तूफान लौट रहा था, उसके मन में एकाकीपन का तूफ़ान सुगबुगाने लगा। वह अपने चारों ओर देखता तो लगता जैसे उसके लिए कहीं कुछ नहीं है···वह केवल अपने में रहकर, अपने लिए जी रहा है। उसकी समझ में नहीं आता कि बिसेसरसिंह किसके लिए, क्यों डाका डालता फिर रहा है?——शारदा किसलिए घर-बार, माँ-बाप को छोड़कर, अनजान जगह में भटकती फिर रही है?——मुनिदेव अपने लोभी माँ-बाप को क्यों नहीं त्याग देता?——रूपनसिंह चन्द कठ्ठे ज़मीन के लिए क्यों अपनी पूरी जायदाद की बाज़ी लगा बैठा है और अनुराधा···?

"कौन जा रहा है?" गुरुजी ने आवाज़ लगायी। जग्गू की विचार-धारा रुद्ध हो गयी। वह गुरुजी के पास पहुँचकर बोला——

"मैं हूँ, गुरुजी, जग्गू।"

"आओ, आओ, बैठो।" गुरुजी ने उसके बैठने के लिए बगल में जगह बनाते हुए कहा——"निबट आये बिचित्तर से? क्या बात थी?"

"क्या बताऊँ गुरुजी, एक रात को, एक भली स्त्री भटकती हुई मेरे पास आयी। मैंने उसे अपने घर में ठहरा दिया। बस इसी पर गाँव-भर

में हंगामा मचा हुआ है। गाँव के सभी लोग अँधे हो गये हैं। देखते हैं कि उस स्त्री का पति है, साथ में एक नौकर है फिर भी शंका से मरे जाते हैं।"

"हाँ जग्गू, मेरे पास भी लोग आये थे। बिरोसर भी कह रहा था कि गाँव की बहू-बेटी बिगड़ जायेंगी।" गुरुजी ने तटस्थ भाव से कहा।

"तो क्या उस भली लड़की को अभी रात में घर से निकाल बाहर कर दूँ कि इधर-उधर भटकती फिरे, गाँव के आवारों को अपना मतलब सिद्ध करने का मौका मिले। चूँकि वह औरत है इसलिए त्याज्य है, अछूत और ख़तरनाक है। आख़िर कहीं जाकर तो वह रहेगी ही या बेसहारा औरत को दुनिया से ही मिटा दिया जाये···"जग्गू आवेश में बोलता जा रहा था कि अनुराधा, थाल में खाना लेकर आ गयी। जग्गू अचानक चुप हो गया।

अनुराधा ने जग्गू का अंतिम वाक्य सुना था और वह श्रद्धा से अभिभूत होकर अज्ञात वेदना से भर उठी। उसने जग्गू को आँख भर देखा। अकस्मात ही जग्गू के शरीर में अनिर्वचनीय पुलक की लहर दौड़ गयी। क्षण-भर के लिए वह अपना अस्तित्व भूल बैठा और उस निश्छल सौन्दर्य को एकटक देखता रहा। बचपन के दिन जवान हो उठे। अनुराधा ने अपने पिता के पास पहुँचकर चुपचाप उनके सामने थाल रख दी।

"जग्गू के लिए भी कुछ खाने को ले आओ बेटी!"

"नहीं-नहीं, मेरी इच्छा अभी खाने की नहीं है।" जग्गू चौंककर बोल उठा। लेकिन अनुराधा तब तक भीतर चली गयी थी। गुरुजी ने कहा—

"थोड़ा-सा खा लो। कौन तुम्हारी घरनी खाना परोसकर बैठी है कि 'नहीं-नहीं' कर रहे हो। कितनी बार तुमसे कहा कि ब्याह कर लो लेकिन तुम सुनो तब तो। आज तुम्हारी घरनी होती तो यह सब प्रपंच नहीं खड़ा होता।"

"फिर कोई दूसरा प्रपंच उठ खड़ा होता गुरुजी। प्रपंच के लिए किसी कारण की जरूरत तो होती नहीं है।" जग्गू ने किंचित हँसकर कहा। उसकी हँसी में व्यंग्य और वेदना स्पष्ट थी।

"फिर तुमने क्या सोचा है?" गुरुजी ने थाल अपनी ओर खींचते हुए

पूछा।

"इसमें सोचना क्या है गुरुजी ? अपने यश और प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए, मैं उस बेसहारा लड़की को घर से बाहर निकालकर उसकी बेइज़्ज़ती नहीं करूँगा।"

"लेकिन तुम गाँववालों को नहीं जानते शायद। वे तरह-तरह के उपद्रव खड़े कर देंगे।"

"मुझे इसकी चिंता नहीं है। कौन मेरा यहाँ परिवार बैठा है जिसका मोह मुझे बाँध रखेगा। सब कुछ छोड़-छाड़कर, मैं स्वयं यहाँ से चल दूँगा।"

"यह तो कायरता होगी जग्गू ! फिर तो झूठ के सामने तुम हार खा जाओगे।"

"नहीं गुरुजी, मैं तो यह समझता हूँ कि पापियों, प्रपंचियों और ईर्ष्यालुओं से दूर रहना ही अच्छा है। आज तीस-बत्तीस वर्ष से मैं इस गाँव में रह रहा हूँ, कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाया, कोई अपराध नहीं किया, अपना दुख अपने पास रखा, बहुतों को अनाचार करते देखा और चुप रहा—फिर भी लोग यदि मुझसे ईर्ष्या कर, मुझे ही अपराधी और पापी सिद्ध करें तो मैं कहाँ तक लोगों को सफाई देता फिरूँगा ?"

"नहीं जग्गू, मुझे तुम्हारी यह बात पसन्द नहीं है। जिस काम को धर्म समझकर तुम करते हो, उसे अंत तक निबाहो। लोग, अपने कर्मों को देखकर ही तुम्हारे कर्म का अनुमान लगाते हैं। तुम भी अपने कर्म के अनुसार अपना दृष्टिकोण बनाओ। भागो नहीं।"

जग्गू के हृदय में यह बात घर कर गयी। वह चुप हो रहा। अनुराधा खाना परोसकर ले आयी थी। जग्गू रह-रहकर अनुराधा को···उस निर्वीरा-स्त्री को देख लेता और न जाने क्यों, रागात्मक अनुभूति से भर उठता। आकर्षण, सहानुभूति और वेदना की त्रिवेणी में डुबकी लगाते ही स्पर्श की जिज्ञासा और प्रेम की अनुभूति का उदय होता है। जग्गू समझ नहीं पाया कि वह क्या महसूस कर रहा है, उसके मन में क्या हो रहा है लेकिन उसने पाया कि अनुराधा की उपस्थिति से उसे सुख मिल रहा है, शांति मिल

रही है, और गुरुजी की बातों से उसे राहत मिल रही है।

उस रात, गुरुजी के यहाँ से चलकर वह सीधे गुमटी पर पहुँचा---घर नहीं गया। काफी रात गये तक वह रामायण पढ़ता रहा और बीच-बीच में अपने मन में उठनेवाले भावों पर विचार करता रहा। सूर्योदय की प्रतीक्षा में रात घुलती रही।

१०

पंचायत ने जग्गू का हुक्का-पानी बन्द कर दिया। पंचायत में बिसेसर-सिंह भी उपस्थित थे लेकिन वह तटस्थ बने रहे। गोपाल और मुनिदेव के अलावा कुछ नौजवानों ने पंचायत के निर्णय का विरोध किया और अन्त में सब झल्लाकर सभा से उठकर चले गये। जग्गू अन्त तक तटस्थ भाव से बैठा रहा। उसके चेहरे पर की मुस्कराहट, निश्चिंतता और दृढ़ता देखकर बहुत से लोग, मन-ही-मन, जल उठे।

जग्गू वहाँ से सीधे घर पहुँचा। शारदा बाहर के बरामदे में खड़ी थी—प्रसन्न मुद्रा में। जग्गू को देखते ही बोल उठी—

"क्या हुआ पंचायत में ?"

"होना क्या था ? मुझे जाति से निकाल बाहर किया गया। लेकिन आप तो बहुत खुश नज़र आ रही हैं ? क्या बात है ?" जग्गू ने मुस्कराते हुए पूछा। शारदा घर के भीतर जाती हुई बोली—

"उनका पत्र आया है। उन्होंने आपको भी लिखा है।"

"वह कब तक आनेवाले हैं।" जग्गू शारदा के पीछे-पीछे चलता हुआ बोला। भीतर बरामदे पर पहुँचकर शारदा रुक गयी। घूमकर बोली—

"क्यों, मैं फिर बोझ हो गयी क्या ?"

"आप न तो मेरा दिया खाती हैं और न मेरा दिया पहनती हैं। फिर बोझ कैसा ? मैं तो इसलिए पूछ रहा था कि एक हफ्ते में लौट आने की बात कहकर गये थे और आज बीस दिन हो गये।"

शारदा ने कोई उत्तर नहीं दिया लेकिन उसकी भाव-भंगिमा से लगा कि उसे जग्गू की बात प्रिय नहीं लगी। वह भीतर जाकर एक चिट्ठी ले आयी और उसे जग्गू को देती हुई बोली—

"इसे पढ़ लीजिए, फिर आपको मालूम हो जायेगा कि वह कब तक आ रहे हैं।" यह कहकर वह नीचे रखे पीढ़े पर अन्यमनस्क भाव से बैठ गयी। भानुप्रताप ने जग्गू को लिखा था—"……मुझे आने में थोड़ी देर लगेगी। आपकी ज़मीन में मकान बनाने की बात निश्चित है। नक्शा भेज रहा हूँ। इसके अनुसार नींव खुदवाकर रखिए। शारदा के पास रुपये हैं—ले लीजिएगा। कुछ मैं भी भेज रहा हूँ। कमी-बेशी आप लगाते रहिए—मैं आकर दे दूँगा…" जग्गू को चिट्ठी की बातें स्वप्न-जैसी लगीं। उसके होठों पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट काँप गयी। शारदा ने पूछा—

"क्या, मालूम हुआ कि वह कब आ रहे हैं?"

"हाँ, मालूम हो गया।"

"तब, मकान बनवाने के लिए क्या कीजिएगा?" शारदा ने उत्साह से पूछा।

"अभी तो उसमें गेहूँ की फ़सल लगी हुई है।"

"कितना गेहूँ निकलेगा उसमें से? बहुत निकलेगा तो सौ रुपये का।" शारदा ने सहज ही सरलता से कह दिया। जग्गू गंभीर स्वर में बोला—

"फिर भी वह अन्न है देवी जी, उसे नष्ट नहीं किया जा सकता।"

शारदा को जग्गू की बात अच्छी नहीं लगी। बोली—

"जितने की फसल नष्ट होगी उसका हिसाब कर लीजिएगा। यदि वह नहीं देंगे तो मैं आपका पाई-पाई चुका दूँगी।"

जग्गू को शारदा की इस बात से आश्चर्य नहीं हुआ और न उसे क्रोध ही आया। शारदा जो कुछ भी बोलती थी, भानुप्रताप के प्रति अपनी असीम श्रद्धा, अन्धविश्वास और प्रेम के कारण बोलती थी। वह बिल्कुल भोली थी—इतनी भोली कि कभी-कभी उसके भोलेपन से स्वार्थ की गंध आने लगती थी। पंचायत ने जग्गू का हुक्का-पानी बन्द कर दिया—इस बात से जग्गू को रंचमात्र भी दुःख या पश्चात्ताप नहीं हुआ। क्योंकि बचपन से ही, वह गाँववालों से असम्पृक्त रहता आया था। लेकिन जिसके चलते यह कांड हुआ, उसके मन में थोड़ा भी आभार का भाव ध्वनित नहीं हुआ—

यह देखकर जग्गू को आश्चर्य हुआ, क्षणिक घृणा-भाव से उसका मन विचलित हो उठा। और वह चुपचाप उदास मन से गुमटी पर चला आया। वहाँ, बिसेसरसिंह उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जग्गू को देखते ही बिसेसरसिंह मधुर स्वर में बोले—

"कहाँ रह गये थे ? मैंने पंचायत खत्म होते ही तुम्हें ढूँढना शुरू किया लेकिन तुम्हारा कहीं पता नहीं था।"

"कहिए क्या सेवा करूँ ? अब तो आप मेरे हाथ का जल भी नहीं पी सकते।" जग्गू ने व्यंग्य से कहा। बिसेसरसिंह अविचलित भाव से बोले—

"सुनो जग्गू भाई, हुक्का-पानी बन्द हो या चले, मैं तो तुम्हारे हाथ से जहर भी पी लूँगा।"

"यह आपकी कृपा है।" जग्गू ने सहज स्वर में कहा। लेकिन मन-ही-मन वह सोच रहा था कि अवश्य ही इस धूर्त को मुझसे कोई काम होगा। इसी ने आग लगाई है और अब साधु बनता है। फिर मुस्कराता हुआ बोला—

"कहिए कैसे आना हुआ ?"

बिसेसरसिंह अचानक ही बहुत गंभीर हो गये। उनके चेहरे पर वेदना की रेखाएँ उभर आयीं। बोले—

"तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है। यह सब बिचित्तरसिंह की करतूत है। मेरी बात मानो तो उसके खिलाफ़ कचहरी में दावा ठोक दो। सरपंच बनने का मजा मिल जायेगा।"

"मुझे क्या ज़रूरत पड़ी है दावा ठोकने की ? न मैं पहले किसी को भोज खाने के लिए न्योता देने जाता था और न अब जाऊँगा। बल्कि इस फ़ैसले से बिल्कुल इत्मीनान हो गया।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं तो तुमसे यही कहने आया था कि कचहरी में दावा ठोकने पर जो भी खर्च होगा, मैं दूँगा। क्योंकि मुझे तो सरपंच का फ़ैसला बहुत बुरा लगा।"

जग्गू खामोश रहा। बिसेसरसिंह गोद में रखी हुई भागलपुरी रेशम की चादर अपने बांयें कंधे पर रखते हुए बोले—

"अच्छा, मैं चलता हूँ। आज रात में फिर मिलूँगा।"

"रात में ?" जग्गू चौंक उठा।

"अब तो मिलेट्री का पहरा ही उठ गया।" बिसेसरसिंह धीमी आवाज़ में आसानी से बोलते गये---"कुलदीप को मुज़फ्फरपुर भेजा है। मालगाड़ी के साथ ही आयेगा। तुमसे क्या छिपाना !" इतना कहकर बिसेसरसिंह चलने ही लगे थे कि जग्गू दृढ़ता से बोल उठा---

"नहीं बिसेसर बाबू, अब यह सब नहीं होने का।"

"पागल हो गये हो ? पिछली बार तो बिना मेहनत किए ही तुम्हें रुपये मिल गये थे। फिर क्यों छान-पगहा तोड़ रहे हो ?" बिसेसरसिंह ने स्नेह से कहा।

"मैंने आपका रुपया नहीं लिया है और न लूँगा। आपके अनाचार के बूते पर मेरी रोजी-रोटी निर्भर नहीं करती।" जग्गू तमककर बोला। लेकिन बिसेसरसिंह आत्मविश्वास के आधिक्य से, किसी बात को महत्त्व नहीं दे पाते थे। हँसते हुए बोले---

"अच्छा-अच्छा, रुपया नहीं लिया है लेकिन, मेरा विश्वास तो लिया है ? विश्वास बड़ी चीज़ है। रात में भेंट होगी।" और बिसेसरसिंह स्नेहपूर्वक जग्गू की पीठ ठोककर चले गये। जग्गू किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। बहुत देर तक वह यों ही सोचने की हालत में खड़ा रहा कि······

"देसौरा के बाबू बिरोसरसिंह का मकान किधर है ?"---इस प्रश्न से चौंक उठा। उसने देखा---एक पेंट-कोटधारी साहब, दो अन्य व्यक्तियों के साथ, सामने खड़ा था। गौरवर्ण, मूँछ-दाढ़ी साफ़, लम्बा-हट्टा-कट्टा, विनम्र भाव से मुस्कराता हुआ वह नौजवान डील-डौल से कोई बड़ा अफसर-जैसा लग रहा था।

"जी···?" जग्गू ने घबराहट में पूछा।

"मैं सामुदायिक-योजना-क्षेत्र का अफ़सर हूँ। रात-भर ठहरने के लिए मुझे कोई जगह मिल सकेगी ?"

"अफ़सर।" जग्गू का मन, किसी विचार की कौंध से प्रफुल्लित हो

उठा। बोला—

"आप चाहें तो मेरे यहाँ भी ठहर सकते हैं। बिसेसर बाबू का मकान भी पास ही है—वह सामने वट-वृक्ष की ओट में है।"

उस अफ़सर ने जग्गू के यहाँ ही ठहर जाने की इच्छा प्रकट की। जग्गू ने उसे अपने घर में, बाहर की कोठरी में ठहरा दिया। उन तीनों आदमियों के लिए जग्गू ने स्वयं खाना बनाया और श्रद्धापूर्वक उन लोगों को खिलाया-पिलाया। अफ़सर का नाम था रामपाल। वह दिल्ली की तरफ़ का रहने वाला था। खाना-पीना जब सम्पन्न हो गया तब रामपाल ने अनुग्रह जताते हुए कहा—

"आप गाँववाले कितने अच्छे हैं—कितने महान हैं। आप लोगों की निश्छलता देखकर इच्छा होती है कि यहीं बस जायें।"

जग्गू ने हँसते हुए कहा—

"गाँववाले उतने निश्छल नहीं हैं जितना आप उन्हें समझते हैं। यहाँ की हवा ऐसी है कि आग भी पानी-जैसी शीतल लगती है।"

"वाह! आप तो बिल्कुल दार्शनिक की तरह बोल रहे हैं जग्गू बाबू। राधाकृष्णन ने बिल्कुल ठीक कहा है कि प्रत्येक भारतीय जन्म-सिद्ध दार्शनिक है।" रामपाल ने रस लेते हुए कहा। जग्गू अपनी असल बात पर आने के उद्देश्य से बोला—

"लेकिन, शहर के बहुत से लोग सोचते हैं कि गाँववाले गूँगे होते हैं। उन्हें पता ही नहीं कि रामायण, गीता, कबीर के दोहे, मुहावरे और सत्य-नारायण की कथा गाँव के चप्पे-चप्पे में संस्कार की तरह व्याप्त है। और जैसा फ़रेब गाँव के कुछ लोग कर सकते हैं—वैसा फ़रेब शहर की किताबों में ही मिल सकता है।"

"अच्छा?" रामपाल ने आश्चर्य से पूछा।

"जी हाँ हुज़ूर! मैंने पटना और मुज़फ्फरपुर के शहर देखे हैं। शहर में कर्मठ आदमी ही जिन्दा रह सकते हैं लेकिन, गाँव की कर्मठता कुल तीन महीने खेत में देखिए बाक़ी नौ महीने मुक़द्दमेबाजी में, चोरी में और एक-

दूसरे की शिकायत में।"

"सो तो आप ठीक कहते हैं जग्गू बाबू! गाँव के लोग अच्छे हों तो कचहरियाँ टूट जायें। जेल में ज़्यादा क़ैदी गाँव के ही होते हैं।" रामपाल ने गंभीर स्वर में कहा। जग्गू ने छूटते ही कहा—

"लेकिन वे बेचारे तो सीधे चोर होते हैं। असल चोर तो हमेशा मजे लूटते हैं। क्या आप अभी कुछ दिन गाँव में रहेंगे?"

"केवल दो रोज़ यहाँ ठहरूँगा। जाँच-पड़ताल करके चला जाऊँगा और फिर लगभग पन्द्रह रोज़ बाद यहाँ पर हम लोगों का काम शुरू होगा।"

"कैसा काम?"

"गाँव की उन्नति का काम। यहाँ सड़कें बनायी जायेंगी, स्कूल, अस्पताल खोले जायेंगे, नल से खेत पटाने की व्यवस्था की जायेगी, बिजली लगेगी और शिक्षा का प्रचार किया जायेगा।"

जग्गू और रामपाल बहुत देर तक बातें करते रहे। अंत में, जग्गू ने बिसेसरसिंह की बाबत सारी बातें रामपाल को बता दीं और यह भी कह दिया कि रात को फिर मालगाड़ी लूटी जानेवाली है। दोनों में कुछ विचार-विमर्श हुआ।

ठीक ढाई बजे रात को, गुमटी से कुछ दूर पर मालगाड़ी रोक दी गयी। दो वैगन सामान काटकर बिसेसरसिंह गुमटी के निकट पहुँचे ही थे कि स्टेशन की ओर से एक के बाद एक करके कई टार्च की रोशनी जल उठी। बिसेसरसिंह को लगा कि दर्जनों पुलिस उनकी ओर बढ़ी चली आ रही है। गाड़ीवानों ने, घबराकर, अपनी-अपनी गाड़ियाँ रोक दीं। बिसेसरसिंह ने गाड़ियाँ लूटने के सिलसिले में आज तक ऐसी परिस्थिति का सामना नहीं किया था। रुपये के बूते पर ही वह सब काम हिम्मत से निकाल लेते थे। उस दिन वह भी घबरा उठे। उन्होंने गाड़ीवानों को आदेश दिया कि बैल खोलकर भगा दें और गाड़ियों और माल को छोड़कर जल्दी-से-जल्दी भागकर छिप जायें। सब लोगों ने वैसा ही किया। और अंत में वह खुद भी भाग खड़े हुए। रामपाल ने जग्गू, मुनिदेव, गोपाल और अपने एक साथी

की सहायता से माल तो बचा लिया लेकिन वे डाकुओं को नहीं पकड़ पाये। और उन्हें पकड़ने का उनका इरादा भी नहीं था। क्योंकि रामपाल और उनके साथी बिल्कुल निःशस्त्र थे। दारोगा को पहले से सूचना देकर बुलाना उन लोगों ने बेकार समझा क्योंकि इससे बिसेसरसिंह को भी सूचना मिल जाने की सम्भावना थी। इसलिए, लूट के लिए निश्चित समय से कुछ पहले, रामपाल का एक साथी दारोगा को बुलाने चला गया। तीन बजते-बजते दारोगा घटनास्थल पर आ पहुँचा। चारों ओर भाग-दौड़ शुरू हुई लेकिन डाकुओं का पता नहीं चला।

"आप इन गाड़ियों की पहचान करवाइए!" रामपाल ने दारोगा से कहा। दारोगा किंचित उपेक्षा के स्वर में बोला—

"जी हाँ, पहचान तो करवायी जायेगी। लेकिन इससे कुछ भी पता लगाना ज़रा मुश्किल नज़र आता है।"

"क्यों?" रामपाल ने आज्ञा के स्वर में पूछा।

"हुजूर, यह गाँव है। यहाँ बैलगाड़ियों पर कोई नम्बर तो होता नहीं।" दारोगा का स्वर तिकड़म-भरे अनुभव के दम्भ से वीभत्स हो रहा था। रामपाल ने बिगड़कर कहा—

"आस-पास के गाँव के चौकीदार को बुलाइए, पंचों को बुलाइए और उनसे मालूम कीजिए कि किसके पास कितनी गाड़ियाँ हैं और......" रामपाल अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि उत्तर तरफ़ से किसी के आने की आहट मालूम हुई। सब लोग सावधान होकर उस ओर देखने लगे। कुछ देर बाद ही लोगों ने देखा कि राघव दो बैलों की रास पकड़े उन लोगों के पास ही आकर खड़ा हो गया।

"इन बैलों की जोड़ी को आप किसके खूँटे से खोल लाये?" दारोगा ने उद्दंडता और व्यंग्य से पूछा। राघव भी जवाब देने में चूकनेवाला नहीं था। छूटते ही बोला—

"जिनके खूँटे से पुलिस अफ़सर तक बँधे रहते हैं।"

"पुलिस अफ़सर खूँटे से बँधे नहीं रहें तो आप जैसे लोगों का राह

चलना भी मुश्किल हो जाय।" दारोगा क्रोध पीता हुआ बोला।

राघव ने कहा—

"अच्छा अब बेकार की बातें छोड़िए और चलकर बिसेसरसिंह को गिरफ्तार कीजिए। इन बैलों में से एक बैल बिसेसरसिंह का है। मैं अच्छी तरह से पहचानता हूँ।"

"आपके पहचानने से क्या होता है?" दारागा ने उपेक्षा के स्वर में कहा। जग्गू को दारोगा का स्वर अनुचित लगा। उसने टार्च की रोशनी में बैल को अच्छी तरह देखा और कहा—

"राघव जी ठीक कहते हैं। यह बैल बिसेसर बाबू का ही है।" मुनिदेव और गोपाल ने भी जग्गू का समर्थन किया। इस पर दारोगा झुँझलाकर बोला—

"लेकिन इस छोटी-सी बात पर, गिरफ्तार कैसे कर लिया जाये? केस कहाँ बनता है? हो सकता है, उनका बैल खूँटा तुड़ाकर भाग आया हो-गा······आप उनके खूँटे से ही खोल लाये हों।" रामपाल को दारोगा की बदमाशी पर पूरा विश्वास हो गया। उसने महसूस किया कि दारोगा चार-पाँच कर रहा है। अतः वह बिगड़कर बोला—

"दारोगा जी, आप बिल्कुल बेकार बातें कर रहे हैं। आपको स्वयं छान-बीन में पहल करनी चाहिए थी लेकिन मैं देखता हूँ कि आप टाल-मटोल कर रहे हैं।"

"मैं तो कुछ भी टाल-मटोल नहीं कर रहा हूँ हुजूर। अगर आपको शक हो और आप कहें तो मैं बिसेसर बाबू को······गिरफ्तार कर सकता हूँ। लेकिन ज़िम्मेवारी आपकी होगी हुजूर।"

"हाँ-हाँ, आप चलकर उनसे पूछ-ताछ कीजिए।" रामपाल ने ऊबकर कहा।

बैलगाड़ियों के पास पहरा बैठा दिया गया। सब लोग बिसेसरसिंह के घर की तरफ़ रवाना हुए। दारोगा बड़ी चालाकी के साथ रामपाल के मन में यह बात बिठाने की कोशिश करता जाता था कि गाँव के लोग बड़े

टेढ़े होते हैं, चोरी-डकैती का मामला बड़ा पेचीदा होता है, बिसेसरसिंह शरीफ़ और प्रभावशाली आदमी हैं, वड़े-बड़े लोगों से इनके नाते-रिश्ते हैं, इसलिए, लोग उनसे जलते हैं, आदि आदि......जग्गू चुपचाप साथ चल रहा था।

बिसेसरसिंह के घर के पास ही चन्नू दुसाध की झोंपड़ी थी—सड़क के ठीक बगल में। गुमटी से सड़क होकर आने-जाने में सबों को उसी झोंपड़ी के सामने से गुज़रना होता। चन्नू और गज्जू—दोनों भाई एक साथ रहते थे। दिन-भर मजूरी करते और रात को थककर सो जाते। चन्नू की सास लगभग साठ साल की बुढ़िया थी। बुढ़िया के पाँचों बेटे, किसी-न-किसी बीमारी के चंगुल में फँसकर, असमय ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। बुढ़िया का पति भी मर गया। गाँव के लोगों ने देखा कि यह औरत एक-एक करके सबों को खा गयी। गाँव में यह बात फैल गयी कि वह डायन है। उसके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ चल पड़ीं कि विजयदशमी के दिन वह नंगी होकर नाचती है, और श्मशान में जाकर मृत बच्चे की लाश ज़मीन से निकालकर उसे तेल लगाती है—खिलाती है, फिर उसका रक्त पी जाती है... आदि-आदि! और अंत में लोगों ने उस गाँव में उस अभागिन बुढ़िया का रहना मुश्किल कर दिया। बेचारी भागकर देसौरा गाँव में अपने एकमात्र दामाद के पास आकर रहने लगी। लेकिन देसौरा गाँव के लोग भी उस बुढ़िया से नफ़रत करते, उससे डरते और अपने बाल-बच्चों को उसकी नज़र से बचाकर रखते। संयोग ऐसा हुआ कि बुढ़िया के देसौरा आते ही चन्नू का भाई गज्जू अचानक हैज़े के चंगुल में फँसकर मौत के मुँह में चला गया; और बुढ़िया के प्रति लोगों की घृणा और डर साकार हो उठा।

दारोगा अपनी उद्देश्यपूर्ण बातों में लगा हुआ था। रामपाल चुपचाप उसकी बातें सुनता हुआ चला जा रहा था। और राघव का षड्यंत्रकारी-मस्तिष्क अपने काम में लगा हुआ था। चन्नू दुसाध की झोंपड़ी के बाहरी ओसारे में बुढ़िया पड़ी-पड़ी खाँस रही थी। राघव ने चुपचाप जग्गू को वहीं रोक लिया। जब सब लोग आगे बढ़ गये तब राघव ने जग्गू से कहा—

"जरा इधर आओ जग्गू भाई।" और राघव जग्गू की बाँह पकड़े बुढ़िया के पास जा पहुँचा।

"कौन है?" बुढ़िया ने उन दोनों की आहट पाकर पूछा।

"मैं हूँ।" राघव ने अपना नाम नहीं बताया। बुढ़िया अंधेरे में पहचानने की कोशिश करती रही।

"कहाँ मकान है?" बुढ़िया ने पूछा।

"अरे मैं हूँ जग्गू—गुमटीवाला।" इस बार जग्गू बोला।

"क्या बात है मालिक?" बुढ़िया, उठकर बाहर आँगन में आती हुई बोली। राघव को चालाकी सूझी। उसने कहा—

"क्या बतायें बूढ़ी, हाट तक आलू पहुँचाने के लिए बैलगाड़ी की ज़रूरत थी। सोचा था बिसेसर बाबू की बैलगाड़ी मिल जायेगी लेकिन बिसेसर बाबू बैलगाड़ी लेकर कहीं चले गये हैं।"

"हाँ मालिक, बाबू साहब तो आधी रात को ही बैलगाड़ी लेकर चले गये। यहीं तो उनकी गाड़ी रहती है और वहाँ पर बैल बाँधा जाता है।" बुढ़िया ने हाथ के इशारे से बताते हुए कहा। राघव मन-ही-मन उछल पड़ा, लेकिन अपनी खुशी छिपाता हुआ बोला—

"क्या बताऊँ बूढ़ी, मेरा तो बड़ा नुकसान हो गया। अब तो हफ्ते-भर बाद ही मेरा आलू बिक पायेगा। तुम्हें कुछ मालूम है कि कब तक आयेंगे?"

"अब मैं क्या जानूँ मालिक।"

"अकेले ही गये हैं या उनका लड़का भी साथ गया है?"

"कई बैलगाड़ियाँ थीं। अब अंधेरे में मैं देख नहीं सकी कि बाबू साहब के लड़के साथ गये हैं या नहीं। मैंने बाबू साहब की आवाज़ ज़रूर सुनी।"

राघव ने बुढ़िया से अधिक बात पूछना उचित नहीं समझा और जग्गू को साथ लेकर बिसेसरसिंह के दालान की ओर क़दम बढ़ाया। बिसेसरसिंह कुर्सी पर बैठे थे, रामपाल से हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। दारोगा भेदभरी दृष्टि से कभी रामपाल को देख रहा था तो कभी बिसेसरसिंह को। रामपाल चुपचाप बिसेसरसिंह की बातें सुन रहा था। राघव को देखते ही दारोगा

व्यंग्य से बोला—

"आइए नेताजी ! बिसेसर बाबू तो घर में सो रहे थे। इनका नौकर कहता है कि पता नहीं कब बैल खूँटे से रास तुड़ाकर भाग गया।"

"लेकिन इनके बैल की रास तो सही-सलामत बैल की गरदन से लटक रही है।"

"यह लीजिए। इसकी बात सुनिए।" बिसेसरसिंह ने हँसते हुए रामपाल से कहा—"यह बिल्कुल पागल आदमी है। इसे इतना भी मालूम नहीं है कि बैल रास-खूँटा सहित भी भाग सकता है।"

"और अभी नौकर ने देखा तो खूँटा सड़क के उस पार पड़ा हुआ था।" दारोगा ने हाँ-में-हाँ मिलाने के स्वर में कहा।

"बिसेसर बाबू दालान पर ही सो रहे थे क्या ?" राघव ने अनजान बनते हुए पूछा।

"मेरी तबीयत आज ठीक नहीं थी। इसलिए, शाम होते ही मैं हवेली में जाकर सो गया।"

"तो ठीक है। मैं ही ग़लती पर था।" यह कहकर राघव चुप हो गया।

काफी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। बिसेसरसिंह ने हँसते-हँसते, हर चीज़ की शिकायत रामपाल से की—मौसम की, समय की, चोरी-डकैती की, बेईमानी-शैतानी की और अपने बेटे की। तब तक सबेरा हो गया। राघव चुपचाप वहाँ से उठकर चला गया और कुछ ही देर बाद बुढ़िया को साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा। रामपाल और दारोगा वहाँ से जाने की तैयारी में थे कि राघव ने कहा—

"इस बुढ़िया से पूछ लीजिए। क्यों बुढ़िया, मैं बाबू बिसेसरसिंह को ढूंढने के लिए आया था या नहीं ? बिसेसर बाबू कहते हैं कि मैं झूठ बोलता हूँ।"

'नहीं बाबू साहब, रात आपके जाने के बाद यह यहाँ आये थे। बहुत परेशान थे बेचारे !" बुढ़िया ने खीसें निपोरते हुए सरल भाव से कह दिया। बिसेसर बाबू मन-ही-मन काँप उठे लेकिन उनके चेहरे पर घबराहट का

हलका-सा भी संकेत नहीं था। उन्होंने हँसकर पूछा—

"मेरे जाने के बाद ?"

"हाँ सरकार ! जब आप बैलगाड़ियों के साथ-साथ चले गये, उसके बहुत देर बाद यह बाबू साहब आपको ढूँढते हुए आये।"

"क्या बकती है !" बिसेसरसिंह गरज उठे—"मैं तो सो रहा था। मेरी तबीयत ख़राब थी।"

"इस बुढ़िया का बयान लिख लीजिए दारोगा जी।" राघव ने गंभीरता से कहा जैसे शिकार उसकी मुट्ठी में आ गया हो।

"यह बुढ़िया तो डायन है। खुद तो रात-भर श्मशान में पड़ी रहती है हरामज़ादी ! अब अपना भेद छिपाये रखने के लिए झूठ बोल रही है कि यह रात में अपनी झोंपड़ी में ही थी। चुड़ैल !" बिसेसरसिंह क्रोध से ऐंठते हुए बोले। बुढ़िया कुछ भी समझ नहीं पायी। वह बेचारी हक्का-बक्का सबों का मुँह देखती रह गयी। दारोगा ने बुढ़िया का बयान ले लिया। बिसेसरसिंह की आँखों में प्रतिहिंसा की चिनगारियाँ तरल हो रही थीं।

दारोगा बहाना बनाकर वहाँ से चला गया। अन्य लोग भी चले गये। सूर्योदय हो रहा था। जग्गू ने गुमटी पर से देखा कि उसके घर के पश्चिमी तरफ़ के खेत में गेहूँ के पौधे उखड़े-बिखरे पड़े हैं। वह फुर्ती से अपने खेत में पहुँचा। वहाँ की दशा देखकर जग्गू का हृदय फट गया। लगभग एक बीघा खेत की फ़सल किसी ने उखाड़ दी थी। जग्गू उदास आँखों से अपना खेत देखता रहा। उसे लग रहा था जैसे उसके सामने ही किसी ने उसकी चिरयौवना कुमारी कन्या का सतीत्व नष्ट कर दिया हो और वह कुमारी अब उसके सामने औंधी पड़ी हो—अस्त-व्यस्त, कुचली हुई, अधमरी ! जग्गू की आँखें भर आयीं लेकिन उसके होठों पर मुस्कराहट काँपती रही।

११

तीसरे दिन रामपाल अपने साथियों-सहित देसौरा गाँव से चला गया। उसे स्टेशन तक आकर विदा करनेवालों में जग्गू और बिसेसरसिंह भी थे। रेलगाड़ी के चले जाने के बाद, जग्गू और बिसेसरसिंह साथ-साथ गाँव की ओर लौटे।

जग्गू के आग्रह पर ही, रामपाल ने बिसेसरसिंह का नाम कहीं नहीं लिया; और चूँकि उन लोगों के पास पूरा सबूत भी नहीं था इसलिए कुछ रोज तक चुप रहकर, बिसेसरसिंह के विश्वासपात्र बने रहने में ही उन लोगों ने भलाई देखी। उधर बुढ़िया का बयान दारोगा ने दर्ज कर लिया था। उसी रात को बुढ़िया का अपने दामाद से झगड़ा हो गया था क्योंकि चन्नू दुसाध को, बिसेसरसिंह के खिलाफ़ बुढ़िया का बयान देना अच्छा नहीं लगा। बिसेसरसिंह ने चन्नू को बुलाकर कुछ कहा-सुना और चन्नू ने घर पहुँचते ही, बुढ़िया पर बरसना शुरू कर दिया। उसने बुढ़िया की अच्छी तरह मरम्मत भी कर दी। बेचारी बुढ़िया रो-कलपकर रह गयी। बिसेसरसिंह ने चलते-चलते पूछा—

"इधर तुम मुझसे मिलते नहीं जग्गू भाई? नाराज़ हो क्या?"

"यदि मैं नाराज़ भी होता हूँ तो केवल अपने आप पर। और अलग-अलग रहने की मेरी आदत तो बहुत पुरानी है।" जग्गू ने दार्शनिक की गम्भीरता से कहा। बिसेसरसिंह ने कृत्रिम स्नेहजनित जिज्ञासा से पूछा—

"तुम्हारे खेत की सारी फ़सल किसी ने बर्बाद कर दी और तुम चुपचाप बैठे रहे?"

"क्या करता!" जग्गू ने सहज स्वर में उत्तर दे दिया।

"क्या करता?" बिसेसरसिंह क्रोध से उबल पड़े—"एक बीघा खेत

की फ़सल नष्ट हो गयी और कहते हो कि क्या करता ! अजीब पागल आदमी हो। अरे, कुछ छान-बीन तो करते ! "

"कोई रहस्य हो तो छानबीन की भी जाये। यहाँ तो सभी बातें प्रकट हैं।" जग्गू के चेहरे पर की व्यंग्यात्मक मुस्कराहट उसके अन्तर्मन की व्यथा को अभिव्यक्त कर रही थी। बिसेसरसिंह ने उसके भाव को जाना लेकिन अनजान बनते हुए कहा—

"तो क्या तुम्हें चोर का पता है ? कौन है वह ?"

"बिसेसर बाबू, क्यों व्यर्थ ही जले पर नमक छिड़कते हैं ? जिसने मेरे खेत के पौधों को बर्बाद किया है, मैं चाहूँ तो अभी उसकी गर्दन मरोड़ सकता हूँ। लेकिन नहीं—मैं ऐसा नहीं करूँगा। लेकिन इतना कह दूँ, बिसेसर बाबू कि कुछ लोग जलती आग में कूदने जा रहे हैं। और आप उन लोगों में से एक हैं।"

"क्या कहते हो जग्गू ?" बिसेसर बाबू चौंककर बोले—"तुम्हें किसी ने बहका तो नहीं दिया है ?"

"मुझे किसी ने नहीं बहकाया है। लेकिन आप अवश्य बहकाना चाहते हैं। आपके इशारे पर पंचायत ने मेरा हुक्का-पानी बन्द किया, आपने मेरे खिलाफ़ तरह-तरह की बातें फैलायीं और आपने ही मेरी फ़सल बर्बाद करवायी। आपकी सभी हरकतों को जानते-समझते हुए भी मैं कहीं कुछ नहीं बोलता। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अन्याय और अनाचार पसन्द करता हूँ। बल्कि मुझे आप पर दया आती है।" क्रोध और घृणा से जग्गू काँपने लग गया। बिसेसरसिंह ने दीन भाव से कहा—

"जग्गू, तुम्हें भ्रम हो गया है।"

"चुप रहिए ! मैं, आपका खान्दान, इज्जत और उम्र देखकर आपका लिहाज़ करता हूँ, वर्ना बता देता कि भ्रम में कौन है ! लेकिन याद रखिए, पाप का घड़ा भरते ही फूट जायेगा।"

"तुम तो व्यर्थ ही लाल-पीले हो रहे हो जग्गू भाई ! मेरी बात तो सुनते नहीं और बोलते चले जा रहे हो। तुम्हारे खेत की फ़सल बर्बाद करने से मुझे

क्या फ़ायदा होगा ?" बिसेसरसिंह ने समझाने के स्वर में कहा। जग्गू तमक-कर बोला—

"दुष्ट लोग वही काम करते हैं जो दूसरों को नुकसान पहुँचावे—भले ही स्वयं को उसके कोई फ़ायदा नहीं हो।"

"अच्छा बहुत हुआ। अपनी बकवास बन्द करो।" बिसेसरसिंह ने क्रुद्ध होकर कहा। जग्गू क्रोध से भभक उठा—

"मैं बकवास करता हूँ ? अच्छी बात है। आप भी कान खोलकर सुन लीजिए—अब मैं चुप नहीं रहूँगा। बुढ़िया के बयान की पुष्टि मेरी गवाही से हो जायेगी—कहे देता हूँ।"

"हाँ-हाँ, जो जी में आवे, कर लेना। बिसेसरसिंह का बाल भी बाँका नहीं होगा।" दम्भ से ऐंठते हुए बिसेसरसिंह ने कहा। तब तक गुमटी आ चुकी थी। बिसेसरसिंह चुपचाप अपने घर की ओर चले गये।

कुछ देर बाद ही चन्नू दुसाध की बुढ़िया सास, रोती-कलपती हुई, गुमटी पर पहुँची। जग्गू को देखते ही वह धप्प से जमीन पर बैठ गयी और फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू अवाक् उसकी ओर क्षण-भर देखता रह गया। फिर बोला—

"क्या बात है बूढ़ी ?"

बुढ़िया गुस्से से तमककर बोली—

"मैं क्या जानती थी कि आप लोग मुझे जाल में फँसा रहे हैं। जो कुछ आपने पूछा वह मैंने आपको बता दिया। अब मेरा दामाद चन्नू मुझे परसों से ही पीट रहा है। लात-घूसों से मार-मारकर मुझे अधमरा कर देता है।"

"क्यों मारता है ?" जग्गू ने आश्चर्य-मिश्रित क्रोध से पूछा।

"अब मैं क्या जानूँ ? कहता है—'तू डायन है। मेरे घर से निकल जा।' आप ही बताइए, इस बुढ़ापे में मैं अब कहाँ जाऊँ ?"

"अच्छा-अच्छा, मैं कल शाम तक उधर आऊँगा। फिर चन्नू को समझा दूँगा।" जग्गू ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा। बुढ़िया और जोर से रोने लगी। जग्गू कुछ समझ नहीं पाया। उसे राघव पर गुस्सा आ रहा था। जग्गू

ने सहानुभूतिपूर्वक अपनी बात दुहरा दी—

"मैं कल तक ज़रूर चन्नू को समझा दूँगा।"

"लेकिन, कल तक तो वह मुझे मार ही डालेगा।"

"अरे नहीं, ऐसा भी कहीं अँधेर होता है।"

जग्गू ने कृत्रिम हँसी हँसकर बुढ़िया को सन्तोष दिलाया। बुढ़िया बहुत देर तक विक्षिप्त-भाव से, दूर ज़मीन की ओर देखती रही। उसके चेहरे की झुर्रियाँ और गहरी हो उठीं, उसकी बरौनी-विहीन आँखें आँसू में ऊब-चूम करती झपकती रहीं और उसके मोटे-मोटे होंठ खुले हुए लटकते रहे। जग्गू संसार और समाज की बीभत्स रचना पर घुटन से भर गया।

बुढ़िया ज़मीन का सहारा लेकर बड़े कष्ट से उठी और गंदे फटे आँचल से आँखें पोंछती हुई गाँव की ओर चली गयी। जग्गू उसे देखता रहा। उसका हृदय घृणा, करुणा, क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना से चीख उठा। उसकी अपनी दुर्बलता ही उसका गला दबोचने लगी। वह सोचता रहा कि जो चोर हैं, उचक्के हैं, घातक हैं वे कितने समर्थ हैं और जो साधु हैं, सज्जन हैं, निरीह हैं वे कितने असमर्थ हैं! ···जग्गू को तमाम अच्छाइयों से भय होने लगा। चन्द रोज़ में ही उसके जीवन में क्या से क्या घट गया। क्या कोई विश्वास करेगा?—जग्गू सोचता और तब उसमें प्रतिहिंसा का भाव और सबल हो उठता, अपनी सच्चाई और ईमानदारी को वह अपनी कायरता और स्वार्थपरता का परिणाम समझने लगता। उसके अंग-प्रत्यंग में अशांति व्याप गयी और वह अनायास ही गुरुजी के घर की ओर चल पड़ा।

गुरुजी को बाहर के बरामदे में न देखकर जग्गू को आश्चर्य हुआ। क्योंकि निष्क्रिय होने के बाद, बीस साल से, वह बाहर के बरामदे में ही रहते चले आये थे। इस असाधारण घटना से जग्गू आशंकित हो उठा। उसने सहमते हुए आवाज़ दी—"गुरुजी हैं क्या?"

क्षण-भर बाद ही अनुराधा बाहर निकली। वह बहुत ही अस्त-व्यस्त हो रही थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, सिर के सूखे बालों के गुच्छे बेतरतीब ढंग से उन्नत ललाट और आँखों पर आ रहे थे और उसके होंठ

सूखे हुए, विरक्ति भाव को चित्रित करते-से लग रहे थे। बड़ी-बड़ी आँखों से करुणा, दीनता और निर्व्याजभाव बिखेरती हुई बोली—

"आइये, बाबूजी भीतर घर में हैं। वह आपको बहुत याद कर रहे थे। लेकिन···लेकिन···मैं आपको खबर नहीं दे सकी।" अन्तिम वाक्य कहते-कहते उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

"क्या बात है? उनकी तबीयत तो ठीक है?"—चिन्तित स्वर में जल्दी-जल्दी बोलता हुआ वह अनुराधा के पीछे हो लिया।

"वह बहुत बीमार हैं।" अनुराधा ने कहा। जग्गू ने देखा कि अनुराधा ने जल्दी से अपनी आँखें पोंछ ली हैं।

गुरुजी को अचानक ही बुखार हो आया था और साथ ही दस्त पर दस्त भी होने लगे। दो दिन के भीतर ही गुरुजी खाट से सट गये। अनुराधा अपना खाना-पीना त्यागकर उनकी परिचर्या में जुट गयी। जग्गू ने गुरुजी की हालत देखी तो उसे रोना आ गया। सात्विक क्रोध से उबलकर वह स्वागत भाषण की शैली में बोला—

"दो दिन से आप बीमार हैं और मुझे खबर तक नहीं दी?"

"कौन खबर देने जाता बेटा। बहुत मुश्किल से अनुराधा वैद्यजी को खबर दे पायी। दवा-दारू चल रही है लेकिन···लेकिन अब···" गुरुजी इसके आगे बोल नहीं पाये। अनुराधा मुँह में कपड़ा ठूँसकर जल्दी से बाहर भाग गयी लेकिन, ज़ोर की हिचकियों ने उसकी वेदना को प्रकट कर दिया। अंधेरी कोठरी में सन्नाटा व्याप गया।

"आप अच्छे हो जायेंगे गुरुजी।" जग्गू ने काँपते स्वर में कहा। गुरुजी छत की ओर टकटकी बाँधे देखते रहे, फिर अपने-आप ही किंचित हँस पड़े और बोले—

"हाँ जग्गू, मैं तो अच्छा हो जाऊँगा लेकिन, अनुराधा का क्या होगा? वह बेचारी जन्म से ही दुःख झेलती आयी है। बचपन में ही उसकी माँ ने उसे अपनी गोद से उतारकर ज़मीन पर रख दिया और स्वयं, अच्छी-भली बन-कर, यहाँ से सदा के लिए चली गयी और···और उसके बाद बड़े उमंग से

मैंने अनुराधा का ब्याह रचाया···लेकिन, दो महीने बाद ही उसका सुहाग भी उजड़ गया···और अब मैं भी···"

"यह सब आप क्या बोल रहे हैं गुरुजी ? आपको अभी जीना है—अनुराधा के लिए जीना है।"—जग्गू ने आतुर भाव से कहा। गुरुजी बोलते रहे—

"अब अनुराधा के लिए कोई उपाय नहीं है। मैंने अपने धर्म और अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपनी बेटी का सर्वनाश कर दिया···"

"गुरुजी !"

"हाँ बेटा, मैंने अपनी बेटी का सर्वनाश कर दिया; और अब मैं धर्मात्मा बनकर इस संसार से कूच करने की तैयारी में हूँ। लेकिन···लेकिन मैं आदमी बनकर, बाप बनकर इस संसार से जाना चाहता था। मैं चाहता था कि मेरी बेटी की माँग सिन्दूर से भरी रहती और मैं उसे देखता-देखता अपने शरीर का त्याग कर देता। क्या···वह···वह···वह सपना···" गुरुजी का कंठ अवरुद्ध हो गया। जग्गू की इच्छा हुई कि वह चिल्ला पड़े—

"मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकता हूँ गुरुजी, मैं अनुराधा को प्यार करता हूँ, अनुराधा बचपन से मेरी है—जन्म-जन्मान्तर से मेरी है। मैं उसकी माँग में सिन्दूर भर सकता हूँ···" लेकिन जग्गू अपना तमाम प्यार, अपनी तमाम वेदना और अपनी तमाम सहानुभूति अपने में ही समेटे चुप बैठा रहा।

कुछ देर के बाद अनुराधा भी मुँह-हाथ धोकर आ गयी। जग्गू ने उसे जबरदस्ती कुछ खा-पी लेने को भेज दिया और स्वयं वह गुरुजी की परिचर्या में जुटा रहा। गुरुजी बीच-बीच में कुछ बोलने की कोशिश करते तो जग्गू उन्हें रोक देता। अनुराधा को भी उसने कोठरी से निकाल दिया जिससे कि वह बेचारी थोड़ी देर आराम कर ले।

शाम हो गई। अनुराधा लालटेन जलाकर ले आयी। अंधकार धुल गया। जग्गू कोठरी की स्वच्छता देखकर दंग रह गया। माटी की दीवार और माटी का फर्श—लिपा-पुता मनोहर लग रहा था। खाट पर गुरुजी पड़े हुए थे और खाट के नीचे एक ओर माटी के दो चौड़े-चौड़े बर्तन थूक-

मल-मूत्र त्यागने के लिए और दूसरी ओर काठ की पुरानी कुर्सी पर लोटा-गिलास और दवा की पुड़िया रखी हुई थीं। कोठरी के बायें भाग में, दीवार के पास, काठ के दो बक्से रखे हुए थे।

"अब आप जाकर थोड़ा आराम कर लीजिये।"—अनुराधा के दीन-क्षीण स्वर से जग्गू सिहर उठा। गुरुजी ने भी हाँ में हाँ मिलायी—

"हाँ बेटा, अब तुम जाओ, थोड़ा आराम कर लो! अनुराधा बेटी, इसे रोशनी दिखला दो।"

अनुराधा लालटेन लेकर आगे-आगे चलने लगी। घर के बाहर पहुँच कर जग्गू ने कहा—

"अनुराधा, मैं फिर आऊँगा।" अनुराधा ने सिर उठाकर जग्गू को देखा। जग्गू बोला—

"चिन्ता मत करना। ईश्वर जो करता है, अच्छा ही करता है।" अनु-राधा एकटक जग्गू को देख रही थी। जग्गू बोलता गया—

"लेकिन, तुम्हें अपने स्वास्थ्य पर भी ध्यान देना चाहिए। सूखकर कैसी हो गयी हो! तुम अकेली हो अनुराधा। यदि तुम भी बीमार पड़ गयीं तो…?" अनुराधा फफक-फफककर रोने लगी। जग्गू उस अन्तस-तप्त विधवा की वेदना से काठ होकर रह गया। वह क्या करे? अनुराधा रोती जा रही थी। उसका एकमात्र सहारा वृद्ध पिता संसार को छोड़ जाने की तैयारी में था। फिर अनुराधा का क्या होगा? वह इस क्रूर समाज से बहिष्कृत होकर भी उसी समाज के विष-न्याय-अंक में परिश्लिष्ट होकर दम तोड़ेगी। जग्गू कुछ भी नहीं सोच पा रहा था, कुछ भी नहीं समझ पा रहा था लेकिन उसके मस्तिष्क में तरह-तरह की आशंकाएँ तूफान उठा रही थीं।

"रो मत अनुराधा!" जग्गू तोष दिलाने के स्वर में कहता। फिर भी अनुराधा रोये जा रही थी। जग्गू उसके निकट आ गया। वेदना और सहानु-भूति के आधिक्य से उसका स्वर अब रुद्ध हो रहा था। उसने बहुत ही धीमे स्वर में पुकारा—

"अनुराधा···मेरी बात सुनो अनुराधा !" अनुराधा ने आँसुओं से लबालब आँखों से जग्गू को देखा। जग्गू ने सरस स्वर में कहा—

"तुम्हें धीरज रखना चाहिए अनुराधा। ऐसे कैसे काम चलेगा ?"

"कितना धीरज रखूँ ? अब तो मेरा जीना भी मुश्किल हो जायेगा।" और अनुराधा फिर फूट पड़ी। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयीं। जग्गू परवश स्थिति में खड़ा रहा; और अनुराधा रोती रही। जब जग्गू से नहीं देखा गया और उसका धीरज भी जवाब देने लगा तब वह जल्दी से, वहाँ से चल पड़ा। अनराधा देख भी नहीं सकी।

१२

सुबह होते ही जग्गू गुरुजी के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में गोपाल से भेंट हो गयी। जग्गू को देखते ही वह बोल उठा—

"मैं आपके यहाँ ही जा रहा था जग्गू चाचा! रात क्या बात हुई आपको मालूम है?"

"क्या हुआ?" जग्गू ने सहज कौतूहल से पूछा।

"चन्नू दुसाध की सास मर गयी।"

"बुढ़िया मर गयी? लेकिन शाम को तो वह मेरे पास आयी थी। वह तो बिल्कुल भली-चंगी थी!" आश्चर्य से जग्गू का मुँह खुला का खुला रह गया।

"चन्नू दुसाध ने स्वयं उसका गला दबाकर उसे मार दिया।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"मुझे ही नहीं, पूरे गाँव को मालूम है। वह बुढ़िया कल दिन-भर सबों के पास भटकती रही लेकिन, किसी ने उसकी मदद नहीं की। गाँववाले भी उसे डायन समझकर उससे मुक्ति चाहते थे। और जानते हैं जग्गू चाचा? ······बिसेसरसिंह ने उसकी हत्या करवायी है जिससे कि वह गिरफ्तार होने से बच सके।"

"लेकिन···लेकिन इसकी खबर पुलिस को तो मिलनी ही चाहिए। यह तो हत्या है।" जग्गू ने क्रोध से कहा। गोपाल नाटकीय ढंग से बोला—

"हुँह्, पुलिस! पुलिस क्या कर लेगी? चन्नू और बिसेसरसिंह ने रातों-रात उस बुढ़िया को जलाकर राख कर दिया।"

जग्गू बहुत देर तक अपने दोनों हाथ अपनी पीठ पर बाँधे, जमीन की ओर देखता रहा। काफ़ी देर की चुप्पी के बाद गोपाल बोला—

"यह तो जुल्म की हद है।" जग्गू सिर उठाकर दूर क्षितिज की ओर देखता हुआ एक लम्बी साँस छोड़कर बोला—

"इसका कोई इलाज भी तो नहीं है गोपाल !"

"इलाज क्यों नहीं है ?" क्रोध और सहज अहंकार से गोपाल गरज उठा—"हम लोगों के देखते-देखते आपका हुक्का-पानी बन्द कर दिया गया, फसल बरबाद कर दी गयी, बुढ़िया की हत्या कर दी गयी और पुलिस ने सबों के घर में घुसकर तलाशी ली। यह सब कुछ चन्द रोज के भीतर ही हुआ और हम लोग मुँह ताकते रहे। यह बड़े शर्म की बात है।"

"मानो तो बहुत-सी शर्मनाक और दर्दनाक बातें हुई हैं और यदि नहीं मानो तो कुछ नहीं हुआ।" जग्गू ने वेदना से भरकर कहा—"हम सब लोग अपनी-अपनी डफली अलग-अलग पीट रहे हैं, और हम लोगों की दृष्टि भी भिन्न है। इसलिए हर आदमी को हर आदमी से शिकायत है, लेकिन जो असल खराबी है, जो सचमुच ही शिकायत की बात है, उस ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। मैं तो तुम्हारे गाँव से ऊब गया हूँ गोपाल।"

गोपाल कुछ उम्मीद से आया था, दंगा-फसाद का तमाशा देखने की उम्मीद से। उसने सोचा था कि जग्गू कुछ कहेगा, कुछ बोलेगा। लेकिन, जग्गू निष्क्रिय बना रहा, बल्कि, क्रोध या ललकार की जगह उसमें उदासी की मात्रा ही ज्यादा बढ़ गयी। इसलिए गोपाल निराश होकर चुप हो रहा। जग्गू को अचानक गुरुजी का खयाल आया। "अच्छा गोपाल, मैं जरा जल्दी में हूँ। गुरुजी की तबीयत बहुत खराब है। अब चलता हूँ।" यह कहकर वह चलने ही लगा था कि राघव आ धमका। दरअसल राघव को आते देखकर ही जग्गू को ख़याल आया कि उसे जल्दी गुरुजी के यहाँ पहुँचना है। लेकिन राघव दूर से ही पूछ बैठा—

"रात-भर कहाँ रहे जगनारायण बाबू ?"

"मैं तो गुमटी पर ही था।" जग्गू ने ऊब के स्वर में कहा। राघव सरलता से छोड़नेवाला आदमी नहीं था। उसने अजीब नाटकीय ढंग से मुँह फैलाकर, हँसते हुए कहा—

"लेकिन मैं तो हुजूर की सेवा में दो बार आया और आपका द्वार खटखटाकर वापस चला गया। आपको मालूम है कि आपके गाँव में कितना बड़ा जुल्म हो रहा है ? आप जानते हैं कि चन्नू दुसाध की सास की हत्या कर दी गयी ?"

"मुझे मालूम है।" जग्गू ने विरक्त भाव से कहा।

"अब क्या होगा ?"

"होगा क्या ? जो होना था, सो हो चुका।"

"लेकिन सवाल यह है कि बिसेसरसिंह इस बार भी बच निकला।" राघव ने ऊँची आवाज में कहा। जग्गू के होठों पर वेदनापूर्ण मुस्कराहट काँप गयी। वह धीमे स्वर में बोला—

"आपको बुढ़िया के मरने का दुःख नहीं है, आप यह भी नहीं सोचते कि दुःख, अनाचार और अन्याय को आप स्वयं बढ़ावा देते हैं।"

"मैं अन्याय को बढ़ावा देता हूँ ? आपका दिमाग़ ख़राब हो गया है जग्गू बाबू।" राघव ने सूखी हँसी हँसते हुए कहा। जग्गू ने पूर्ववत स्वर में कहा—

"हाँ, अब मेरा दिमाग़ भी आप लोगों के चलते ख़राब हो रहा है। इसलिए मैं आप लोगों से दूर ही रहना चाहता हूँ। बिसेसरसिंह यदि अन्यायी और कठोर हैं तो आप जैसे लोग स्वार्थी, क्रूर और बेहया हैं।"

गोपाल अब तक चुप खड़ा था। जग्गू की बात उसे भायी नहीं। उसने हिचक के साथ प्रतिवाद किया—

"यह तो आप अनुचित बात कह रहे हैं जग्गू चाचा।"

"मैं अनुचित बात कह रहा हूँ—लेकिन साथ ही सत्य बात भी कह रहा हूँ। एक निरपराध बुढ़िया व्यर्थ ही, राघव बाबू और बिसेसर बाबू के स्वार्थ की बलिवेदी पर चढ़ गयी; और राघव बाबू को बुढ़िया की मृत्यु पर थोड़ा भी दुःख नहीं हुआ हालांकि इन्होंने ही उस बुढ़िया को फँसाया। इन्हें इस बात की चिंता है कि बिसेसरसिंह फिर बच निकला। मैं चाहता हूँ कि इन्हें अपनी ही शक्ति के बूते पर अन्याय का मुकाबला करना चाहिए।

यदि इन्हें सहारा ही लेना हो तो उस व्यक्ति का सहारा लें जो इन्हें अच्छी तरह जानता हो, जिसे इनका उद्देश्य मालूम हो और जो स्वेच्छा से इनका साथ देने को तैयार हो।"

"कहाँ है ऐसा आदमी ? मुझे तो कहीं नहीं दिखाई देता।" राघव ने दोनों हाथ फैलाकर पूछा।

"तो फिर चुपचाप अपने घर में बैठिए। अनजान लोगों को साधन बनाकर उन्हें मुसीबतों के चक्कर में फँसाना सबसे बड़ी क्रूरता और अन्याय है, धोखा है।"

"ठीक है। मैं किसी को धोखा नहीं देना चाहता। मैं आपसे ही पूछता हूँ—क्या आप मेरा साथ देंगे ?" राघव ने कृत्रिम गम्भीरता से पूछा।

"हर काम में मैं आपका साथ नहीं दे सकता।" जग्गू ने सहज गंभीरता से कहा।

राघव ने छूटते ही कहा—

"हर काम में मुझे आपकी सहायता चाहिए भी नहीं। मैं तो केवल बिसेसरसिंह की पोल खोलना चाहता हूँ।"

"लेकिन मैं किसी का मज़ाक उड़ाना या किसी को बेइज्जत करना नहीं चाहता। हाँ, अगर आपका उद्देश्य बिसेसरसिंह न होकर, समाज या देश की सम्पत्ति की रक्षा करना हो तो मैं आपका साथ देने को तैयार हूँ।"

"चलिए, मैंने आपकी बात मान ली। अब तो आप साथ देंगे ?"

"हाँ।"

"और तुम गोपाल भाई ?"

"मैं भी तैयार हूँ।"

"बस तो ठीक है, मैं अब चलता हूँ। आज से मेरा यही व्रत हो गया। जब तक अपराधी को सजा नहीं मिल जायेगी, मैं चैन नहीं लूँगा। अच्छा, आप लोग अपना वायदा याद रखियेगा।" इतना कहकर राघव स्टेशन की ओर चल दिया। गोपाल के साथ जग्गू गुरुजी के घर पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देखा कि बिसेसरसिंह, उदास मन से, गुरुजी की खाट के पास बैठे थे

और अनुराधा को स्नेहपूर्वक डाँट रहे थे—

"तुमने मुझे खबर तक नहीं दी! आखिर मैं कोई बेगाना तो हूँ नहीं। गुरुजी को मैं अपने पिता से भी बढ़कर मानता हूँ और तुम्हें…" कि इतने में जग्गू और गोपाल आ पहुँचे। बिसेसरसिंह ने अपना पहला वाक्य अधूरा छोड़कर जग्गू से तपाक से कहा—

"आओ जग्गू भाई! तुम सचमुच देवता आदमी हो। अभी-अभी गुरुजी तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे। तुम्हें इनकी बीमारी का पता था लेकिन मुझ से तुमने कुछ नहीं बताया।"

"मुझे कल रात मालूम हुआ।" जग्गू ने अन्यमनस्क भाव से कहा। वह मन-ही-मन, बिसेसरसिंह की नाटकीयता पर आश्चर्य कर रहा था—कि कल ही यह मुझसे झगड़कर गया, कल ही इसने बुढ़िया की हत्या करवायी और ऐसे बोल रहा है जैसे कभी कुछ हुआ ही नहीं। बिसेसरसिंह का व्यवहार देखकर, जग्गू को कभी-कभी अपनी आँख, कान और समझ पर भी अविश्वास होने लगता।

कुछ देर तक बिसेसरसिंह वहीं बैठे रहे। कभी वह गुरुजी को हिम्मत दिलाते तो कभी अनुराधा पर अपना स्नेह बिखेरने लगते। अनुराधा को वह कभी-कभी अजीब दृष्टि से देखते—ऐसी दृष्टि से जो बिसेसरसिंह की साधारण दृष्टि से बिल्कुल भिन्न होती। जग्गू उस दृष्टि को छुपकर देख लेता। उसे वह दृष्टि बुरी लगती।

बिसेसरसिंह के चले जाने पर अनुराधा ने जग्गू से हिचकिचाते हुए कहा—

"ज़रा वैद्यजी के यहाँ से दवा ला देते।"

"मैं ले आता हूँ।" गोपाल बीच ही में उत्साह से बोल उठा और गुरुजी की बीमारी के सम्बंध में नयी-पुरानी जानकारी प्राप्त करके वैद्य जी के यहाँ चल पड़ा।

"बिसेसरसिंह कब से बैठे थे?"—जग्गू ने चुप्पी तोड़ते हुए अनुराधा से पूछा।

"आपके आने के एक घंटा पहले से।" अनुराधा ने सिर नीचा किये उत्तर दिया। जग्गू चुप हो रहा। अनुराधा को जग्गू के प्रश्न और उसकी मुद्रा पर कौतूहल हुआ। उसने पूछा—

"क्यों ? कोई खास बात है क्या ?"

"नहीं, कुछ नहीं।" जग्गू हँसकर टाल गया। फिर दोनों चुप हो गये। गुरुजी की हालत अच्छी नहीं थी। वह चुपचाप, आँखें बन्द किये, पड़े थे। गोपाल के साथ वैद्यजी स्वयं आये। गुरुजी के शरीर की परीक्षा लेकर उन्होंने दवा दी और निराश स्वर में अनुराधा को धीरज बँधाकर चले गये।

अनुराधा ने जीवन देखा था, दुःख झेले थे, किस्मत की ठोकर ने उसमें अनुभूति भर दी थी। इसलिए, वैद्यजी के निराश स्वर का अर्थ उससे छिपा नहीं रह सका। वह चुपचाप अपने पिता के पास बैठी रही; बीच-बीच में उसकी आँखें भर आती थीं, कभी-कभी लगता कि वह चीत्कार कर उठेगी।

"तुमने मुँह-हाथ धोया या नहीं ?"—जग्गू ने पूछा। अनुराधा चुप रही। जग्गू क्रोध से बोला—

"इस तरह तो काम चलेगा नहीं। दस बजे की गाड़ी पास हो गयी और अभी तक तुमने मुँह भी नहीं धोया।"

अनुराधा सिर झुकाये जग्गू की डाँट सुनती रही। जग्गू पूर्ववत् स्वर में बोलता रहा—"तुम समझती हो कि मैं यहाँ केवल दर्शन देने आता हूँ। अगर मेरे रहते हुए भी तुम यहीं बैठी रहो तो मेरा आना व्यर्थ है। मैं यहाँ शिष्टाचार के नाते नहीं आता हूँ।" अनुराधा ने आँखें उठाकर जग्गू को देखा। जग्गू की आँखें भरी हुई थीं और उसका मुखमण्डल संवेदनशील हो रहा था। जग्गू का स्वर कोमल हो उठा—

"जाओ अनुराधा, मुँह-हाथ धोकर कुछ खा-पी लो। उठो।" अनुराधा जग्गू का आग्रह टाल न सकी और उठकर चली गयी। जग्गू गुरुजी की परिचर्या में लगा रहा। इस बीच उसने गुरुजी को दवा पिलायी, पाखाना-पेशाब करवाया और उनके तलवे में तेल की मालिश की। उसे समय का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। अनुराधा अचानक ही उसके सामने आकर खड़ी हो गयी

और बोली—

"चलकर कुछ खा लीजिये।"

"मैं ?—मैं तो अभी कुछ नहीं खाऊँगा।"

"फिर मैं भी नहीं खाऊँगी।"

"जाओ बेटा, थोड़ा खा लो।"—गुरुजी ने क्षीण स्वर में कराहते हुए कहा। जग्गू चुपचाप सकुचाता हुआ अनुराधा के पीछे हो लिया।

जग्गू चुपचाप खाता रहा और सोचता रहा। आधी जिन्दगी बैरागी की तरह बिताकर, अब जग्गू माया-मोह, छल-प्रपंच और अन्य सांसारिक ऊहा-पोह में जा फँसा था। पहले उसके लिए कोई आकर्षण नहीं था, रागात्मकता नहीं थी, बेचैनी या कौतूहल का कोई कारण नहीं था, सम्पृक्त या असम्पृक्त हो जाने की कोई भावना नहीं थी...लेकिन अब उसमें सब कुछ अनायास ही आ गया था, जितना ही वह जाल तोड़कर निकलने की कोशिश करता, उलझन उतनी ही बढ़ती जाती।

"भात दूँ ?" अनुराधा ने पूछा।

"नहीं, अब कुछ नहीं चाहिए।"

"दूसरों को तो आप स्वास्थ्य पर ध्यान देने का उपदेश देते हैं, लेकिन अपने स्वास्थ्य की आपको बिल्कुल चिन्ता नहीं रहती।"—अनुराधा ने किंचित् अधिकार के स्वर में कहा। जग्गू ने अनुराधा को आश्चर्य से देखा और उदासी की साँस खींचकर, वह थाली की ओर देखता हुआ बोला—

"मेरा क्या है अनुराधा।"—इतना कहकर जग्गू सम्हल गया और अपनी वेदना छिपाने के लिए हँसकर बोला—"मुझे तो किसी की देखभाल नहीं करनी है और न मुझे दुनिया का सामना करना है। लेकिन तुम्हें तो इस पापी दुनिया में रहकर अपने धर्म का जीवन व्यतीत करना है।" अनुराधा कुछ भी नहीं बोली। जग्गू ने देखा, महसूस किया कि अनुराधा की आँखों में, उसके चेहरे पर दीनता की उदासी है, वह कुछ बोलना चाहती है, कुछ माँगना चाहती है, लेकिन उसके होंठ काँप कर रह जाते हैं, आँखें भर जाती हैं और उदासी की छाया घनीभूत हो उठती है।

"किसी चीज की जरूरत है क्या ?"—खाना खा चुकने के बाद जग्गू ने प्यार से पूछा। अनुराधा ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। जग्गू दुबारा नहीं पूछ सका और कुछ देर तक वहीं ठहरने के बाद अपने घर की ओर चल पड़ा।

इधर कई रोज से जग्गू ने शारदा की खोज-खबर नहीं ली थी। शारदा भरी बैठी थी। जग्गू को देखते ही उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। जग्गू ने सकपकाते हुए कुछ पूछना चाहा, उससे बात करनी चाही और जल्दी में उसके मुँह से निकल पड़ा—"भानु बाबू की कोई खबर मिली ?"

"आपको इससे मतलब ?"—शारदा ने तमककर पूछा। उसका स्वर बहुत रूखा और घृणा से भरा हुआ था। जग्गू की मानसिक-स्थिति संतुलित नहीं थी। बुढ़िया की हत्या, गाँववालों की बेइन्साफ़ी और अनुराधा की वेदना ने जग्गू को बेसब्र बना दिया था। शारदा के इस उत्तर से वह तिलमिला उठा—

"मुझे क्या मतलब रहेगा ? लेकिन···लेकिन उनके आसार मुझे अच्छे नजर नहीं आते, और···और आपके व्यवहार का भी मुझे पता नहीं चलता। कभी तो आप···जमीन पर रहती हैं और कभी आसमान में। खैर, आगे से मैं कुछ नहीं पूछूँगा।"—क्रोध के अतिरेक से जग्गू ठहर-ठहरकर बोल रहा था। शारदा ने छूटते ही कहा—"हाँ-हाँ, मत पूछियेगा। मैं भी अच्छी तरह समझती हूँ कि आपके मन में क्या है।" जग्गू चौंक उठा। उसने किंचित् आशंकित होकर पूछा—

"क्या है मेरे मन में ?"

"उसे बताना कोई जरूरी नहीं है। आप भी समझते हैं। 'उनके' आते ही मैं यहाँ से चली जाऊँगी। मैं तो समझती थी कि आप सीधे-सच्चे आदमी हैं।"—शारदा ने रोषावेष्ठित स्वर में कहा। जग्गू तरह-तरह की बुरी बातें सोच गया। वह गरजकर बोला—

"आखिर आपका क्या मतलब है ?"

"यही कि जल्दी से जल्दी यहाँ से चली जाऊँ।"

"ठीक है, चली जाइये।" जग्गू ने भी तमककर कहा और वह तेजी से घर के बाहर हो गया।

"हाँ-हाँ, चली जाऊँगी।" इस वाक्य के साथ ही जग्गू के कान में फफक-फफककर रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। लेकिन वह सीधे गुमटी पर आकर ही रुका।

उसका हृदय और मस्तिष्क फटा जा रहा था। 'यह सब-कुछ क्या हो रहा है— यह प्रश्न, लाख मन बोझ की तरह उसके मस्तिष्क पर लदा था; और उसका वह मस्तिष्क, तरह-तरह की घटनाओं के दुरूह मंजिल की तरफ बढ़ना चाहता था।

उसे क्रोध आ रहा था। शारदा को उसने शरण दी थी, उसके लिए गाँव-वालों से वैर मोल लिया था, मानसिक अशांति को आमंत्रित किया था, लेकिन शारदा की दृष्टि में इन बातों का कोई महत्त्व नहीं था'''क्या मनुष्य इतना कृतघ्न होता है?'—जग्गू अपने आपसे पूछता। शारदा की सूरत उसके सामने उभर आती—सद्यःस्नाता, कोमल, संवेदनशील, प्रेम की दीवानी, क्रोध से आरक्त, तमतमायी हुई'''जग्गू आँखें बन्द कर लेता, आँखें खोल देता, ठहरकर कुछ देखने लगता, चक्कर लगाने लगता और फिर बैठ जाता'''जग्गू के मस्तिष्क में अब एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ—'क्या मैं शारदा से उपकार का बदला चाहता हूँ?' और तब जग्गू के मन में ग्लानि उभरने लगी। उसे लगा कि वह भानुप्रताप से ईर्ष्या करता है, वह शारदा को प्यार करता है, प्यार'''? हाँ, शारदा की खूबसूरती ने, शारदा की एकनिष्ठा ने और शारदा के विश्वास ने उसके हृदय में पाप उत्पन्न कर दिया है'''लेकिन वह पाप नहीं था'''वह तो अभावजनित ईर्ष्या की उदासी थी जो'''जो!

जग्गू काफ़ी देर तक बेचैनी की हालत में चक्कर काटता रहा और तब अचानक ही वह घर की तरफ बढ़ चला। घर पहुँचकर उसने देखा कि ब्रह्मदेव सामान बाँध रहा था। शारदा की आँखें सूजी हुई थीं। जग्गू का हृदय करुणा से भर उठा। उसने लपककर, ब्रह्मदेव के हाथ से बिस्तर छीन लिया

और उसे खोलकर खाट पर बिछाता हुआ बोला––

"बिस्तर बिछाने की चीज़ होती है, लपेटने की नहीं।" ब्रह्मदेव मुँह ताकने लगा। शारदा करुणार्द्र स्वर में ब्रह्मदेव पर बरस पड़ी––

"मुँह क्या देख रहे हो? जल्दी बाँधो बिस्तर!"

"किसलिए?"––जग्गू ने मनाने के स्वर में पूछा।

"इससे आपको मतलब?" शारदा ने डपटकर पूछने की कोशिश की लेकिन उसके स्वर की दीनता प्रकट हो गयी।

"मुझे मतलब है, तभी तो पूछ रहा हूँ।"

"लेकिन मुझे कोई मतलब नहीं है। मैं यहाँ से जा रही हूँ···ब्रह्मदेव! भीतर से अटैची ले आओ!" अंतिम वाक्य शारदा ने ब्रह्मदेव से कठोर आज्ञा के स्वर में कहा। जग्गू गरज उठा––

"खबरदार ब्रह्मदेव, अटैची लाये तो तुम्हारा हाथ तोड़ दूँगा। तुम बाहर जाकर आराम करो।" सात्विक क्रोध से जग्गू काँप रहा था। ब्रह्मदेव सहमकर बाहर निकल गया। शारदा तमककर भीतर से अटैची उठा लायी और आँगन पारकर बाहर निकलने ही वाली थी कि जग्गू ने लपककर शारदा की बाँह पकड़ ली। शारदा ने बाँह छुड़ाने की पूरी कोशिश की लेकिन व्यर्थ और अंत में हार मानकर वहीं आँगन में धम्म से बैठ गयी। जग्गू को शारदा के बचपने पर हँसी आ गयी। उसने हँसते हुए स्नेह से कहा––

"तुम्हें कहीं नहीं जाना होगा।"

शारदा ने आँखें उठाकर देखा, जग्गू की निर्व्याज आँखों में हँसी तैर रही थी। जग्गू ने पहली बार स्नेह से 'तुम' कहा था।

"बनावटी व्यवहार मुझे नहीं अच्छा लगता। मैं सब समझती हूँ।" शारदा अपने दोनों ठेहुनों पर अपनी ठुड्डी रखे हुए बोली। जग्गू ने तपाक से कहा––

"यही तो मुसीबत है कि तुम कुछ नहीं समझतीं। बिना सोचे-समझे मुँह फुला लेना या उबल पड़ना कमजोरी की निशानी है। तुम्हें नहीं मालूम कि आजकल गाँव में क्या हो रहा है।"

"मुझे क्या मतलब है आपके गाँव से !" शारदा के कठोर स्वर में निश्छलता थी।

"गाँव या समाज में रहकर कितनी बातों से इन्कार करोगी ?" जग्गू ने किंचित दार्शनिक मुद्रा में कहा। शारदा, शायद, इसी बात की प्रतीक्षा में थी। बोल उठी—

"आप अपने घरवालों से हर बात पर इन्कार कर सकते हैं और मैं गाँव की अनजान बातों से भी इंकार नहीं कर सकती ?"

"तुमने क्या कहा है जिसे मैंने इन्कार कर दिया है ?"

" 'उन्होंने' आपको चिट्ठी लिखी, मैंने भी आपसे विनती की लेकिन आपने एक छोटी-सी बात भी नहीं मानी। आपको डर है कि मकान बना-कर कहीं ये लोग यहीं न बस जायें। आप हम लोगों से नफ़रत करते हैं।" शारदा ने अंतिम वाक्य मानिनी के स्वर में कहा। जग्गू भावना में बहा जा रहा था। बोला—

"ऐसी बात नहीं है शारदा। मैं तुमसे नफ़रत करने की बात सोच भी नहीं सकता बल्कि जब से तुम्हें देखा है, न जाने क्यों, गार्हस्थ्य-जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया है। पहले मैं बिल्कुल वैरागी था, अब अनुरागी बनता जा रहा हूँ।"

"फिर मुझे भगाना क्यों चाहते हैं ?"

"किसने कहा कि मैं तुम्हें भगाना चाहता हूँ। मेरा बस चले तो तुम्हें हमेशा-हमेशा के लिए रोक लूँ। लेकिन तुम पराया धन ठहरीं। मजबूर हूँ।" जग्गू की यह बात सुनकर शारदा भी भावातिरेक से भर उठी—

"मैं भी आपको अपना बड़ा भाई समझती हूँ। इसीलिए तो आपसे लड़ जाती हूँ। देखिए न, इस घर में क़दम रखते ही मैं ऐसी हो गयी कि बात-बात में आपसे लड़ने लगी। पता नहीं, मैं ऐसी क्यों हो गयी ! अपने घर पर तो मैं किसी से भर-मुँह बात भी नहीं करती थी।" यह कह शारदा उठ खड़ी हुई और बरामदे में पड़ी खाट पर बैठ गयी। जग्गू और शारदा, दोनों बहुत देर तक तरह-तरह की बातें करते रहे। मकान की नींव खुद-

वाने की बात भी तय हो गयी।

किसी बात का परिणाम तर्क-वितर्क से नहीं निकलता। वह तो समय विशेष की मानस-भाव-तीव्रता का सुफल या कुफल होता है। जग्गू भावना की धारा में बहा जा रहा था, विरोध-अवरोध का झंझावात उठाकर वह अपनी रागात्मकता की नाव को खतरे में डालना नहीं चाहता था। जग्गू के आचरण, उसकी भंगिमा, मुद्रा, उसके विचार और बातचीत करने का ढंग असामान्य था—असाधारण था। वह न तो बहुत पढ़ा-लिखा था और न बिल्कुल अनपढ़। गाँव का वातावरण जितना सरल और स्वच्छ दीखता है, उतना होता नहीं। छोटी-सी जगह में, छोटी बातें ही तूफ़ान उठाने को काफ़ी होती हैं। बात-बात पर माया और ब्रह्म की दुहाई देनेवाले ग्रामीण, अपनी शान या भौतिक समृद्धि के लिए, सहोदर भाई का गला काटने से भी नहीं हिचकिचाते। जग्गू संस्कार और विचार से वैरागी था, व्यवहार से कर्मठ, ऊपर से स्थितप्रज्ञ लेकिन भीतर से मोम जैसा। इसी लिए, गाँववालों की स्वार्थपरता, क्रूरता और नीचता को वह उनकी मूढ़ता समझता। मुद्दत तक कठोरता और एकाकीपन का नीरस-जीवन व्यतीत करने के बाद जग्गू अचानक ही, अनजाने ही तरह-तरह की भयंकर घटनाओं से सम्बद्ध हो गया। उसकी सुप्त भावनाएँ जागृत हो उठीं। अनजान-वृत्तियों ने जग्गू के जीवन में हलचल और तूफ़ान उठा दिया। जग्गू को नई दृष्टि मिली। उसने देखा··· महसूस किया कि दाह, ईर्ष्या, छल, क्रूरता और नग्न स्वार्थ के अंधकार में वह भटकता जा रहा है। शारदा और अनुराधा, उसके जीवन में, ज्योति की हल्की किरण बनकर भासमान हो गयीं। जग्गू सोचता कि यहाँ थोड़ा आराम तो मिलता है, प्यार की चेतना तो जागृत होती है। और इस तरह जग्गू रेशमी उलझनों में जकड़कर निस्पन्द हो जाना चाहता।

प्रेम और करुणा की राह दुर्गम और अछोर होती है—जग्गू इस सत्य से अपरिचित था।

१३

गुरुजी को स्वस्थ नहीं होना था और न हुए। पन्द्रह रोज़ तक शारीरिक-मानसिक कष्ट सहन करते-करते आखिर वह थक गए और सोलहवें रोज़ निष्प्राण होकर संसार से चल बसे। अनुराधा मूक हो गयी। उसके लिए छोटा-सा गाँव, विराट-विश्व की तरह, भयावना बन गया। वह बिल्कुल अकेली रह गयी। जग्गू की इच्छाएँ, संस्कार की सीमाओं से टकराकर तड़प उठीं। शेष गाँव ज्यों का त्यों स्थिर रहा। अपने पिता की अंतिम क्रिया समुचित ढंग से सम्पन्न करने में अनुराधा ने कोई कोर-कसर नहीं उठा रखी। रुपये-पैसे के सम्बन्ध में जग्गू से कुछ कहने में उसे हिचक और लज्जा महसूस हुई। बिसेसरसिंह ने स्वेच्छा से सारा खर्च पूरा करने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। अनुग्रह के बोझ से अनुराधा झुक गयी। बिसेसरसिंह, बिना समय-असमय का ध्यान किये, अनुराधा के घर पहुँच जाते और हाल-चाल पूछने बैठ जाते। इस प्रकार समय बीतने लगा।

जग्गू ने नींव खुदवानी शुरू कर दी थी। गाँववाले कौतूहल और ईर्ष्या से मरे जा रहे थे। चारों तरफ चर्चा थी कि जग्गू के घर से, ज़मीन खोदने पर अशर्फियों के घड़े निकले हैं। एक अनजान आदमी के कहने पर, जग्गू ने, उतने बड़े मकान की नींव खुदवानी शुरू कर दी थी। गाँववालों का कौतूहल और ईर्ष्या करना स्वाभाविक ही था।

जब नींव डाली जाने लगी और सैकड़ों रुपये कपूर की तरह उड़ने लगे तब जाकर जग्गू को अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। शारदा के पास के रुपये भी समाप्त हो चुके थे। उधर भानुप्रताप का कहीं पता नहीं था। जग्गू को अपने पर क्रोध आता। शारदा से वह कुछ कह नहीं पाता क्योंकि भानुप्रताप के विरुद्ध वह एक शब्द भी नहीं सुन सकती थी। आखिर एक दिन

शारदा से जग्गू की अच्छी-खासी झड़प हो गयी। जग्गू तिल-मिलाकर अपने घर से निकल भागा और अनायास ही अनुराधा के घर चल पड़ा।

अनुराधा घर के भीतरी ओसारे में, दीवार से सटकर, खोयी-खोयी-सी बैठी हुई उंगलियों से लकड़ी तोड़ती जा रही थी। अनुराधा को देखते ही जग्गू अपनी परेशानी भूल पूछ बैठा—

"किस चिंता में डूबी हो अनुराधा ?" जग्गू के इस प्रश्न से अनुराधा चौंककर उठ खड़ी हुई। क्षण-भर वह सहमी रही, फिर जाकर आश्वस्त हुई। जग्गू को, अनुराधा की यह स्थिति देखकर आश्चर्य हुआ। उसने फिर पूछा—

"क्या बात है ?"

"कुछ नहीं ! मैंने समझा, कोई अनजान आदमी आ धमका।" अनुराधा ने कृत्रिम हँसी हँसते हुए कहा। लेकिन घबराहट की छाया अभी भी उसके चेहरे पर विद्यमान थी। जग्गू का आश्चर्य आशंका में बदल गया। उसने अधिकारपूर्वक पूछा—

"बात क्या है ? इतनी घबरायी हुई क्यों हो ?"

"मैं यहाँ से कहीं चले जाने की बात सोच रही थी कि अचानक आप आ गये।" अनुराधा के स्वर में वेदना गूँज रही थी।

"कहाँ जाओगी ?"

"सोचती हूँ कि पटना चली जाऊँ। वहाँ मेरे मामू रहते हैं। डाकघर में डाक-पीउन का काम करते हैं।"

"लेकिन यहाँ से क्यों जाना चाहती हो ? तुम्हारा घर-बार, खेत-खलिहान कौन देखेगा ?"

"आप जो हैं !" अनुराधा ने सहज गाम्भीर्य से कहा। जग्गू मन-ही-मन अनुराधा के विश्वास और स्नेह से अभिभूत हो उठा लेकिन प्रकट में बोला—

"नहीं-नहीं, मुझसे यह सब नहीं होगा।"

"क्या मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकते ?"

"मैं तुम्हारे लिए ''सब'''" जग्गू भावावेश के स्वर में बोलता-बोलता सम्हल गया और फिर उसने कृत्रिम विरोध के स्वर में कहा—"मैं तुम्हारे लिए

सबसे अच्छा काम यही कर सकता हूँ कि तुम्हें कहीं भी जाने से रोक दूँ।"

"फिर तो मेरी जान ही चली जायगी ! इज्जत-आबरू गँवाकर—नहीं जग्गू बाबू, मुझे यहाँ मत रोको।" अन्तिम वाक्य, अनुराधा के मुख से हलकी चीख की तरह निकला। जग्गू चिन्ता और कौतूहल से बेचैन हो उठा। उसने खीझकर पूछा—

"आखिर हुआ क्या है जो इस तरह की बातें कर रही हो ? तुम औरतों का पार पाना बिल्कुल असंभव है।"

"मेरे लिए आप क्यों माथा खराब करते हैं ? अब तो मेरी ज़िन्दगी में रोज़ ही कुछ न कुछ होता रहेगा। कहाँ तक आप लोगों से कहती फिरूँगी ? मेरी किस्मत तो उसी दिन फूट गयी जिस दिन मेरा जन्म हुआ। अब क्या है ? अब तो···अब तो···" इससे आगे अनुराधा कुछ नहीं बोल पायी। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। जग्गू उसके निकट आकर खड़ा हो गया। स्नेह और सहानुभूति के अतिरेक से वह पागल हो उठा। उसकी इच्छा हुई कि अनुराधा को अपनी भुजाओं में जकड़ ले। लेकिन ऐसा उसने किया नहीं। केवल स्नेह के स्वर में उसने पुकारा—

"अनुराधा !"

अनुराधा ने क्षण-भर के लिए सिर उठाकर देखा और फिर दोनों हथेलियों से अपना चेहरा ढँककर वह सिसकती रही। जग्गू ने करुणार्द्र होकर कहा—

"अनुराधा, क्या मुझे भी पराया समझती हो ? मुझसे कहो कि तुम्हें क्या दुःख है। तुम जानती हो कि मैं गाँववालों की बिल्कुल परवाह नहीं करता। मैं सच कहता हूँ अनुराधा, न जाने क्यों, मेरी इच्छा होती है कि मैं तुम्हारे लिए···"

"बस-बस, अब और कुछ मत बोलिए। इस निस्सार जीवन के अन्त में किसी का स्नेह लेकर मैं क्या करूँगी। मुझमें अब क्या है ! मैं तो जीवित लाश हूँ।"

"मैं भी तुम से कुछ नहीं चाहता अनुराधा। मैं तो अपनी इच्छा मात्र

प्रकट कर रहा हूँ; और मेरी इच्छा में बदला या स्वार्थ की गंध तक नहीं है। विश्वास करो। बस, मैं इतना ही चाहता हूँ कि तुम इसी गाँव में रहो। चन्द रोज में ही मैंने इस गाँव में बहुत कुछ देख लिया—बहुत कुछ सीख और समझ लिया है। मैं अब अपनी समझ से फायदा उठाना चाहता हूँ। लेकिन मेरा मन कहता है कि यदि तुम इस गाँव से चली गयीं तो मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा।"

"लेकिन मेरे यहाँ रहने से आपकी मुसीबत बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। इधर, रोज़ ही बिसेसर बाबू यहाँ आते हैं। उनका हाव-भाव, उनके विचार और उनकी बातचीत मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। मुझे बड़ा डर लगता है।"

"तो मना क्या नहीं कर देती? वह तो बड़ा ही पतित आदमी है। पता नहीं, ऐसे चोर और उचक्के को गाँववालों ने सिर पर क्यों चढ़ा रखा है।" जग्गू ने घृणा से दाँत पीसते हुए कहा। अनुराधा चुपचाप खड़ी रही। जग्गू क्षण-भर रुककर निर्णयात्मक स्वर में बोला—

"उस पाजी से दूर ही रहो तो अच्छा है। वह आदमी नहीं, साँप है।"

"ऐसा मैं नहीं कर सकती, तभी तो यहाँ से जाने की बात सोच रही हूँ।"

"ऐसा क्यों नहीं कर सकती? वह क्या कर लेगा?"—जग्गू ने क्षुब्ध होकर पूछा। अनुराधा ने सहज दीनता के स्वर में कहा—

"वह क्या कर लेगा—यह तो मैं नहीं जानती लेकिन, उसकी करुणा और उसकी विनम्रता से मुझे बड़ा भय लगता है। मैंने उससे रुपये भी ले रखे हैं।"

"रुपये ले रखे हैं? कब लिये तुमने रुपये?"

"पिताजी का अंतिम संस्कार करने के लिए। आपसे कहते मुझे लाज लगी थी।" अनुराधा ने सहमकर कहा। जग्गू कुछ देर मौन रहा। फिर अचानक ही संकल्पात्मक स्वर में बोला—

"अच्छा, तुम चिंता मत करो। मैं कल सुबह तुमसे मिलूंगा और

देखो, बिसेसरसिंह को यहाँ आने से मना कर दो—या रहने दो, मैं स्वयं निबट लूँगा।"

इतना कहकर जग्गू सीधे मुनिदेव के पास पहुँचा। मुनिदेव अपनी दुकान पर अकेला बैठा था।

"मुझे थोड़े से रुपये चाहिएँ।" जग्गू ने पहुँचते ही कहा। मुनिदेव कुछ चौंक-सा उठा। बोला—

"कितने रुपये ?"

"यह तो मुझे भी नहीं मालूम।" जग्गू झेंपता हुआ बोला। मुनिदेव आश्चर्य से भौंचक, जग्गू को देखता रह गया। मुनिदेव की मुख-मुद्रा देखकर जग्गू को अपनी हास्यास्पद स्थिति का ज्ञान हुआ। उस दिन शारदा के व्यवहार ने उसमें ईर्ष्या और विक्षोभ पैदा कर दिया था। अनुराधा की शालीनता और दीनता ने उसमें करुणा और सहानुभूति की धारा बहा दी थी। भावावेश की स्थिति में प्राप्त हुआ तुलनात्मक ज्ञान समुद्र की तरह गहरा नहीं होता, पहाड़ी नदी की तरह उथला होता है और उसकी उद्दंड लहरों के थपेड़ों से मर्यादा, गाम्भीर्य और अनुभव की नींव भी हिल उठती है। जग्गू थोड़ा संकोच में पड़ गया। मुनिदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्या बात है ? मकान की नींव अधूरी रह गयी क्या ? मैं तो अभी भी सावधान किये देता हूँ दोस्त। यह तुम्हारा राजस्थानी सेठ भानुप्रताप मुझे तो चमगादड़ जैसा लगता है—पूरा चार सौ बीस !"

"उसके लिए नहीं माँग रहा हूँ।" जग्गू ने संकोच के स्वर में कहा।

"फिर किसके लिए ?" मुनिदेव ने पूछा।

"अनुराधा ने अपने पिता के श्राद्ध-कर्म के लिए बिसेसरसिंह से कर्ज ले लिया और अब वह बदमाश नाजायज़ फ़ायदा उठाना चाहता है।"

"तो क्या, बिसेसरसिंह को, रुपये देने तुम स्वयं जाओगे ?"—मुनिदेव ने किंचित क्रोध से पूछा।

"हाँ।" जग्गू मुनिदेव के क्रोध का आशय नहीं समझ सका।

"और कहते हो—हाँ ! तुम्हारा दिमाग आजकल कहाँ चरने चला

गया है ?"

"क्यों, इसमें हर्ज ही क्या है ?" जग्गू ने सहज कौतूहल से पूछा।

मुनिदेव जेब से बीड़ी निकालता हुआ बोला—

"एक तो तुमने शारदा देवी को अपने घर में बिठाकर सारे गाँव को अपना दुश्मन बना लिया और अब तुम, खुले आम, अनुराधा को रुपये-पैसे से मदद देना शुरू कर रहे हो। जानते हो, इसका परिणाम क्या होगा ? लोग, तुम्हारा त्याग और तुम्हारी आदमीयत देखने नहीं जायेंगे। लोग देखेंगे तुम्हें और उस अकेली जवान विधवा को और तब एक हंगामा शुरू हो जायगा।"

"तो क्या हंगामे के डर से एक असहाय विधवा को बर्बाद हो जाने दूं ?"

"पता नहीं, आजकल तुम्हें हो क्या गया है। अजीब ढंग की बातें करते हो और अजीब-अजीब काम करते हो। एक तिकड़मी के चक्कर में पड़कर इतने बड़े मकान की नींव डलवा दी; और अब तुम्हारे सिर पर विधवाओं के उद्धार का भूत सवार हुआ है।"

"अनुराधा मेरे लिए केवल एक विधवा ही नहीं है मुनिदेव ! तुम जानते हो कि हम दोनों बचपन से ही......" जग्गू इसके आगे बोल नहीं सका। शर्म से उसने आँखें झुका लीं। मुनिदेव के चेहरे पर, एक साथ ही, गंभीरता और मुस्कराहट स्पष्ट हो उठी। वह जग्गू को बनाता हुआ बोला—

"तो यह बात है ! बासी कढ़ी में भी उबाल आने लगा।"

"नहीं मुनिदेव, अनुराधा को मैं उस नजर से नहीं देखता। अनुराधा तो बचपन से मेरी मर्यादा और पवित्रता की प्रेरणा रही है। वह मेरी आस्था है। तुम भी तो मुझे बचपन से जानते हो।"

मुनिदेव अपने मित्र की बिपन्नता पर दुःखी हो गया। वह जानता था कि जग्गू का अनुराधा के प्रति मोह, उन दोनों के विनाश का कारण होगा। वह यह भी महसूस करता था कि दोनों ही त्याग और तपस्या की भूमि पर खड़े हैं, दोनों ही निर्विकल्प-भाव से एक दूसरे में स्थित हैं और दोनों ही

निश्छल, निरीह और निरुपाय हैं। मुनिदेव गाँववालों को भी जानता था। इसलिए वह आशंका से मन-ही-मन काँप उठा। लेकिन वह धर्म-संकट में पड़ा रहा। उसकी इतनी भी हिम्मत नहीं हुई कि वह जग्गू को इस राह पर बढ़ने से रोक दे। काफ़ी देर की चुप्पी के बाद मुनिदेव बोला—

"अच्छी बात है ! अनुराधा से पूछ आओ कि उसने कितने रुपये कर्ज लिये हैं। इन्तज़ाम हो जायगा। हाँ, तुम बिसेसरसिंह से इस सम्बन्ध में कोई बात मत करना। इसी में अनुराधा की भलाई है और मैं समझता हूँ कि तुम अनुराधा की भलाई ही चाहते हो।"

"लेकिन, वह रोज ही अनुराधा के पास पहुँच जाता है। अगर उस दानव ने कहीं कोई ऐसी-वैसी हरकत शुरू कर दी तो ?"

"तुम इसकी चिंता मत करो। बिसेसरसिंह कायर शैतान है। वह अपनी मान-प्रतिष्ठा पर दाग नहीं लगने देगा। इसलिए, वह समाज से छिप-कर पतितों जैसा काम करता है; और समाज के सामने वह बहुत ही महान और आदर्श व्यक्ति बनने का स्वांग रचता है। ऐसा आदमी अनुराधा पर ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं कर सकता।"

"तुम भी तो कायरों जैसी बातें कर रहे हो। आखिर वह होता कौन है अनुराधा के यहाँ बिना बुलाये जानेवाला ?" जग्गू ने तमककर कहा।

मुनिदेव को जग्गू की सरलता पर हँसी आ गयी। बोला—

"बच्चों की तरह बातें मत करो जग्गू ! आखिर तुम कौन होते हो उसे रोकनेवाले ?"

"मैं ? मैं···मैं तो अनुराधा की तरफ़ से बोल रहा हूँ। मैं तो···"

"बस-बस ! किसी दूसरे आदमी के सामने ऐसी बात मत बोलना नहीं तो अनुराधा को लोग कच्चा ही चबा जायेंगे। तुम्हारा तो कुछ नहीं होगा। मैं जो कहता हूँ वह करते चलो। फिर देखो कि साँप भी मरता है और लाठी भी सलामत रहती है।"

उस दिन जग्गू ने अनुराधा के यहाँ दुबारा जाना अच्छा नहीं समझा। वह गुमटी पर चला आया। पश्चिम में सूरज डूब रहा था। जग्गू, बहुत देर

तक, उसी ओर देखता रहा। गाँव के घरों से धुआँ उठता रहा, चीख-पुकार मचती रही और गुमसुम अंधकार धरती पर उतरता रहा—बिखरता रहा, ठंडी हवा के झोकों से कंपन-सिहरन सुलगती रही लेकिन जग्गू संध्या के अवसादमय चित्र-जैसा जड़ीभूत बैठा रहा—न जाने कब तक ! शायद बचपन से लेकर जवानी तक ! ! लेकिन सात बजे की गाड़ी पास होते समय, उसकी धमक से, जग्गू की तन्द्रा टूट गयी और तब उसने अचकचाकर देखा—चारों ओर दुर्निवार अंधकार व्याप्त था।

१४

काफ़ी रात गये जग्गू को झपकी लगी ही थी कि चीख़-चिल्लाहट सुनकर वह लपककर गुमटी से बाहर निकल आया। उसके घर की ओर से ब्रह्मदेव की तेज़ आवाज़ आ रही थी। ब्रह्मदेव उसी को पुकार रहा था। अंधकार में वह कुछ देख या समझ नहीं पाया और घर की ओर दौड़ पड़ा।

शोर-गुल सुनकर गाँव के बहुत से लोग इकट्ठे हो गये थे। जग्गू ने देखा—शारदा के लगभग सभी कपड़े-लत्ते, कुछ ज़ेवर और लगभग डेढ़ सौ रुपये, जो उसके पास कुल पूँजी शेष थी—चोरी हो गये थे। शारदा बरामदे में खड़ी मुस्करा रही थी। उसके लिए जैसे कुछ हुआ ही नहीं। जग्गू को देखते ही वह बोली—

"क्यों भैया! तुम्हारे गाँव के लोग तो अपनी बहन का सामान भी नहीं छोड़ते!"

"जिसने अपने आपको चुरा रखा है उसके लिए बहन-भाई, माँ-बाप, अपना-पराया सब एक समान है। जिस गाँव का मुखिया ही डकैत हो उस गाँव का भगवान ही मालिक है।" जग्गू का स्वर व्यंग्य में डूबा हुआ था। दरवाज़े पर गाँव के बहुत से लोग इकट्ठे थे। जग्गू, सही बात जानने की व्यग्रता में, सीधे घर के भीतर चला आया था। बाहर कोलाहल सुनकर उसे गाँववालों का ध्यान आया। बाहर निकलकर उसने देखा—काफ़ी सरगर्मी मची हुई थी। जग्गू को देखते ही गणेशसिंह आगे बढ़कर बोले—

"मैंने मुनेश्वर को सामान के साथ भागते देखा है। यह चोरी, बेशक उसी ने की है।"

"हाँ-हाँ, यह उसी पाजी का काम है।"—कई गाँववालों ने आक्रोशपूर्ण स्वर में हाँ में हाँ मिलायी। लेकिन जब गवाही देने की बात उठी तब

सबके सब, एक-एक कर खिसकने लगे। बिच्चित्तरसिंह और गोपाल के सिवा किसी की हिम्मत नहीं हुई कि बिसेसरसिंह के चेले मुनेश्वर के खिलाफ खुलकर सामने आये। बात वहीं खत्म हो गयी क्योंकि गोपाल या उसके पिता ने मुनेश्वर को भागते नहीं देखा था। धीरे-धीरे, जग्गू का घर फिर सन्नाटे में डूब गया। जग्गू मन-ही-मन क्रोध से उबल रहा था और अपनी असमर्थता पर उसे झुँझलाहट हो रही थी।

पूरब का आकाश लाल हो उठा। अंधकार धुलने लगा। जग्गू के तन-मन की समस्त उदासी उसकी आँखों में सिमट आयी। 'अब वह कैसे इस गाँव में रहे ?—क्या करे ?' यह सोचता हुआ घर के भीतर आया। शारदा चाय बना रही थी।

"पता नहीं, गाँव के ये तीन शैतान कब मरेंगे ?" एक लम्बी उसाँस के साथ बोलता हुआ, जग्गू, उदास मन से बरामदे की खाट पर बैठ गया। शारदा ने जग्गू को देखा और स्नेह के स्वर में कहा—

"क्यों बेचारों को कोसते हो ? ठीक-ठीक मालूम तो है नहीं कि किसने चोरी की है !"

"बिल्कुल मालूम है। बिसेसरसिंह और उसके दोनों चेलों को छोड़ गाँव में ऐसा कृतघ्न और कोई नहीं है। असल में बिसेसरसिंह इस गाँव का कलंक है। एक सड़ी मछली पूरे तालाब की मछलियों को नष्ट कर देती है।"

"लेकिन आप क्यों चिंतित होते हैं ? आपको तो उस तालाब से निकाल बाहर कर दिया गया है।" शारदा चाय का प्याला बढ़ाती हुई बोली। जग्गू कुछ नहीं बोला। उसी समय मुनिदेव वहाँ आ पहुँचा। शारदा को प्रणाम करता हुआ वह जग्गू से बोला—

"सुना, यहाँ चोरी हो गयी। मुझे तो अभी मालूम हुआ और भागा चला आ रहा हूँ।" जग्गू कुछ नहीं बोला। शारदा ने एक प्याला चाय मुनिदेव की ओर बढ़ा दिया। चाय की चुस्की लेता हुआ मुनिदेव बोला—

"सुबह पाँच बजे की गाड़ी से मुनेसरा मुजफ्फरपुर गया है शायद। क्योंकि

उस समय उसे मैंने स्टेशन पर देखा था। मुझे तो लगता है कि यह उसी की बदमाशी है। कल शाम को वह मुझसे ताड़ीखाने में मिला था।" अचानक मुनिदेव को कुछ याद आया और वह जेब से एक लिफाफा निकालकर जग्गू की ओर बढ़ाता हुआ बोला—

"कल शाम को तुम्हारे चले आने के बाद डाक-पीउन तुम्हें ढूंढ रहा था। मैंने उससे यह चिट्ठी लेली।" जग्गू ने लिफाफे को उलट-पलटकर देखा और उसे शारदा की ओर बढ़ा दिया।

शारदा विह्वलता से पत्र पढ़ने लगी और धीरे-धीरे उसके मुखमंडल की स्वाभाविक चपलता लुप्त होने लगी और वह पीली पड़ती गयी। जग्गू और मुनिदेव बेचैनी से उसकी ओर देखते रहे कि अचानक शारदा अपनी हथेलियों से मुँह ढँककर रोने लगी। जग्गू अवाक् देखता रहा। मुनिदेव ने बढ़कर पूछा—

"क्या बात है?" शारदा और जोर से रोने लगी। मुनिदेव ने फिर पूछा—

"क्या लिखा है चिट्ठी में? किसने लिखी है?"

लेकिन शारदा रोती ही रही। बोली कुछ नहीं।

जग्गू से नहीं रहा गया। उसने शारदा के पास पड़ी चिट्ठी उठा ली और पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था—

"……मैं लुट गया। व्यापार में मुझे ऐसा घाटा लगा कि अब मैं कंगाल हो गया हूँ। अब किस मुँह से तुम्हारे पास आऊँ! जगनारायणजी को कौन-सा मुँह दिखाऊँ! मैंने उन्हें भी धोखा दिया। अब तो आत्महत्या के सिवा मेरे लिए और कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है……।"

पूरी चिट्ठी पढ़कर जग्गू ने मुनिदेव से कहा—

"भानुप्रताप जी को व्यापार में बहुत घाटा उठाना पड़ गया।" उसने चिट्ठी को तह करके शारदा के पास रख दिया। मुनिदेव ने शारदा को समझाने-बुझाने की कोशिश की लेकिन वह रोती ही रही। आखिर वह जग्गू से विदा लेकर चला गया। ब्रह्मदेव कहीं बाहर गया हुआ था।

जग्गू कुछ देर तक कुछ निश्चय नहीं कर पाया। दया, करुणा और सहानुभूति से उसका कलेजा फटा जा रहा था लेकिन वह क्या बोले, क्या करे —यही बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। यदि भानुप्रताप ने सचमुच ही आत्महत्या कर ली तो शारदा का क्या होगा ?"—यह सोचकर ही जग्गू का दम घुटने लगता। शारदा का रोना उससे देखा नहीं गया। शारदा के पास ही वह बैठ गया और उसका कंधा पकड़कर बोला—

"अब रोने से क्या होता है? और तुम तो बड़ी दिलेर औरत हो। सारा सामान चोरी चले जाने पर भी अभी-अभी हँस रही थी। फिर रोने क्यों लगीं?"

"वह बहुत ज़िद्दी हैं, आत्महत्या न कर लें।"—शारदा, मरती हुई हिरणी जैसी आँखों से जग्गू को देखती हुई बोली। उसका पूरा चेहरा आँसुओं से तर था। जग्गू पूर्णतया द्रवित हो उठा। उसने अपने हाथों से शारदा के आँसू पोंछ दिये और कहा—

"नहीं शारदा, भानुप्रताप ऐसा नहीं करेंगे। तुम उन्हें यहाँ आने के लिए लिख दो।"

"मेरे लिखने से वह हर्गिज नहीं आयेंगे। उन्होंने आपके रुपये मकान में फँसा रखे हैं इसलिए वह आपके सामने आने में हिचकते होंगे।"—शारदा ने अवरुद्ध-स्वर में कहा। जग्गू तपाक से बोला—

"तो मैं उन्हें पत्र लिख देता हूँ। लेकिन शर्त यह है कि तुम चुप हो जाओ।"

"अब तो हम लोग राह के भिखारी हो गये भैया!"

"ऐसी क्या बात हो गयी? मेरे जीते-जी मेरी बहन भीख नहीं माँग सकती। मुझ पर भरोसा रखो! गरीब आदमी हूँ लेकिन इज्जतवाला हूँ। समझी?"—जग्गू ने किंचित गर्व से कहा। मनुष्य के मन से कुछ कर गुजरने की वृत्ति यदि विलुप्त हो जाय तो ज़िन्दगी बड़ी सरल और सुखद राह से गुजरे। जग्गू आरम्भ से ही दुनियावी नहीं था। शारदा को रोते देखकर उसने अनायास ही संरक्षण का वचन दे दिया। परिणाम की उसने

कल्पना तक नहीं की।

उसी समय उसने भानुप्रताप को एक पत्र लिखा। शारदा किंचित आश्वस्त होकर, उदास मन से अपने काम-धाम में लग गयी। जग्गू, ब्रह्मदेव को डाक-घर में पत्र छोड़ आने को कहकर प्रफुल्लित मन से अनुराधा के घर की ओर चल पड़ा। उस समय सूरज पेड़ों की फुनियों तक चढ़ आया था। हवा में सुखद उष्णता आ गयी थी। जात-पाँत से निष्कासन, चोरी और दिवाला पिट जाने की घटनाओं के बावजूद, जग्गू, पुलकित हो रहा था। शुद्ध मन से किया गया लघु उपकार भी उपकारी के रक्त में उत्साह का नशा उड़ेल देता है और तब अभाव और दुःख मनुष्यता के पोषक तत्त्व बन जाते हैं।

अनुराधा स्नान करके आयी थी और आँगन में गीली साड़ी फैला ही रही थी कि जग्गू बिना आवाज़ दिए भीतर पहुँच गया। अनुराधा चौंककर वहीं बैठ गयी क्योंकि उसने समुचित वस्त्र नहीं पहन रखे थे। जग्गू लजाकर उल्टे पैर बाहर लौट गया और वहीं से चीखकर बोला—

"कितने रुपये कर्ज़ लिये हैं?" अनुराधा ने कोई जवाब नहीं दिया। जग्गू ने तीन-चार बार पूछा फिर भी अनुराधा चुप रही। जब जग्गू ने घर में पहुँच जाने की धमकी दी तब अनुराधा बोली—

"तीन सौ रुपये।"

जग्गू, न जाने कौन-सी—कैसी तस्वीर अपने मन में अंकित किये स्टेशन की ओर चला कि उसका चेहरा स्निग्धता से धुला हुआ-सा लग रहा था और उसकी आँखें रह-रहकर बंद हो जाती थीं। वह अपने आप में खो गया था। गहरे-नीले मनभावन आकाश का सौन्दर्य, अप्राप्य होने पर भी, जग्गू को महान् सुखद और मादक आकर्षण से सराबोर लग रहा था।

१५

सामुदायिक-योजना-अफसर रामपालसिंह सदल-बल आ पहुँचा। वैसे उसका मुख्य कार्यालय मुजफ्फरपुर था लेकिन देसौरा के इलाके में अभी नया काम शुरू हुआ था, इसलिए, कुछ दिनों तक उसे गाँव में ही अधिकतर रहना था।

घर में चोरी होने के बाद से जग्गू बहुत आशंकित हो उठा था। रामपाल के आने से उसे थोड़ी राहत मिली।

अनुराधा ने अचानक ही बिसेसरसिंह के सभी रुपये चुका दिये। बिसेसरसिंह को यह बात समझते देर नहीं लगी कि नदी का पानी ही नदी में आया है और वह जग्गू से मन-ही-मन जल उठे। अनुराधा के व्यवहार ने बिसेसरसिंह के आवागमन को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया; और तब जलन का भाव प्रतिहिंसा में बदल गया। सारे गाँव में शोर हो गया कि अनुराधा ने एक रात में ही तीन सौ रुपये का कर्ज उतार दिया और आश्चर्य तो यह कि उसी दिन सामुदायिक-योजना-अफसर रामपाल जग्गू के यहाँ आया था। गाँव की औरतें अनुराधा के लिए काल बन गयीं। गुरुजी के रहते वहाँ बहुत कम औरतें आती थीं। वैसे भी गाँव में किसी विधवा की पूछ कम होती है। लेकिन इधर गाँव की बहुत-सी औरतें अनुराधा के पास आने लगीं। औरतें, अनुराधा की अपनी बनकर, उसे गाँव की चर्चा सुनातीं। अनुराधा सब-कुछ सुन-सुनकर घुटती रही। रामपाल को उसने कभी देखा भी नहीं था। अनुराधा को इसी बात का दुःख था कि एक निरपराध आदमी उसके चलते व्यर्थ ही बदनाम हो गया।

वह घंटों बैठकर रोती रहती। खाना-पीना उसके लिए हराम हो गया। सूनापन उसके तन-मन में श्मशान की शान्ति भर देता। गाँव की औरतें

आ-आकर उसके मस्तिष्क में वीभत्स कोलाहल पैदा कर जातीं। चन्द रोज में ही, सुरूपा अनुराधा कंकाल-सी दीखने लगी। लेकिन उसका वह रूप भी गाँववालों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गया। लोग कहने लगे कि अब तो अनुराधा पाप की अति करने लगी। अनुराधा यह सब सुनती और वेदना की तीव्रता से ऐंठकर रह जाती। वह क्या करे?—कहीं भाग जाय? या आत्महत्या कर ले? ऐसी बातें वह सोचा करती और रोया करती।

"कैसी हो अनुराधा?" आत्महत्या के विचार में डूबी हुई अनुराधा का हृदय, यह प्रश्न सुनकर धक् से रह गया। उसने आँखें उठाकर देखा—सामने जग्गू खड़ा था।

"पता नहीं, बैठी-बैठी क्या सोचा करती हो?"—जग्गू ने किंचित झुँझलाहट से कहा। अनुराधा के होठों पर मुस्कराहट दौड़ गयी लेकिन उस मुस्कराहट में भयंकर चीत्कार का संकेत था, उसमें वेदना की असीमता चित्रित थी। जग्गू की ओर देखकर वह बोली—

"घर में बैठी-बैठी तरह-तरह की बातें सुनना और उन्हें सोचना, यही तो काम रह गया है जग्गू बाबू।"

"हाँ-हाँ, तरह-तरह की बातें मैं भी सुनता हूँ, बहुत सुनता हूँ। लेकिन उससे क्या? कुत्तों के भौंकने से हाथी बाजार में चलना बन्द नहीं कर देता।"

"आपको मालूम है कि लोग मेरे बारे में क्या कहते हैं?"—अनुराधा, विषय की गम्भीरता को यों ही हवा होते देख, जरा रुआँसा होकर बोली। जग्गू स्नेहवश हँसने लगा और बोला—"तुम अकेली हो, जवान हो और सबसे बड़ी मुसीबत यह कि सुन्दर हो। फिर लोग तुम्हारे बारे में बातें नहीं करेंगे तो क्या झनखू चमार की दादी के बारे में करेंगे? बैठे-बिठाये परेशानी मोल लेती फिरती हो।"

"आपको तो सब-कुछ ऐसा ही मालूम होता है।"—अनुराधा ने चिढ़कर कहा लेकिन उसके स्वर में किंचित आश्वस्त होने का भाव स्पष्ट था।

"अरी पगली, मुझे तो इस गाँव ने जाति से भी निकाल रखा है। लेकिन उससे मेरा क्या बिगड़ गया? उनकी संख्या ही कम हो गयी। मैं तो अभी

भी जिन्दा हूँ और रहूँगा। अच्छा, मैं एक ज़रूरी काम से आया हूँ। बाहर रामपाल साहब खड़े हैं। वह तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं।"

"रामपाल साहब!" अनुराधा चौंकती-सी बोली।

"हाँ।"

"मुझसे क्या बातें करनी हैं?"—अनुराधा के स्वर में आशंका थी। लेकिन उसे देखने के लिए जग्गू रुका नहीं। वह बाहर जाकर रामपाल को बुला लाया।

अकारण विरोध, ईमानदार और भावुक को अतिवादी बना देता है। जग्गू भी ईंट का जवाब पत्थर से देना जानता था। और दे सकता था। लेकिन, इसमें विरोधियों के अस्तित्व को बल मिलता और जग्गू को अपनी राह पर रुक जाना पड़ता। रामपाल के संसर्ग ने जग्गू की भावुकता को विवेक दिया और वह एक नई राह पर चल पड़ा। उस राह पर अनुराधा को सहकर्मिणी बनाना वह नहीं भूला। वह राह थी—सच्चाई की, साधना की, कर्त्तव्य की। उसने महसूस किया कि व्यर्थ की बातों में रहकर, व्यर्थ ही, वह अपना जीवन नष्ट कर रहा है। रामपाल ने उसकी आँखें खोल दीं और वह देश के सात्विक-विकास में जुट पड़ा।

"नमस्ते!"—रामपाल अनुराधा के सामने खड़ा था। अनुराधा लाज से गड़ गयी। रामपाल ने संकोचपूर्ण शालीनता से कहा—

"सुना, आप पढ़ी-लिखी हैं इसलिए, आपको तकलीफ देने आया हूँ।" अनुराधा चुप रही। रामपाल पूर्ववत स्वर में बोलता रहा—"आपकी बहुत-सी बहनें अनपढ़ हैं, वे न तो रहना जानती हैं और न जीना। अगर आप जैसी देवियाँ चाहें तो सैकड़ों गँवार औरतों की जिन्दगी सुधर जाये।"

"मेरी बात कौन सुनेगा? मैं तो सब औरतों की आँखों का काँटा बन रही हूँ।"

"मैं आपको उपाय बताऊँगा। पहले तो आपको खुद ट्रेनिंग लेनी होगी। इसके लिए, आपको कुछ रोज के लिए पटना जाना होगा। वहाँ से लौटकर आप हरिजनों और अन्य छोटी जाति की औरतों को पढ़ाना शुरू कर दीजिए।

वे आपकी बात सुनेंगी। फिर देखियेगा कि आपकी जाति की औरतें भी ईर्ष्यावश अपने आप दौड़ी आयेंगी।

अनुराधा गाँव के वातावरण से ऊब गयी थी। वहाँ एक पल रहना भी उसके लिए पहाड़ मालूम होता था। इसलिए वह शीघ्र ही सहमत हो गयी।

जग्गू जब रामपाल के साथ घर लौटकर आया तब देखता क्या है कि भानुप्रताप पहुँचे हुए हैं। जग्गू ने रामपाल से उनका परिचय कराया। रामपाल बड़े उल्लास और उत्साह से मिला, उसने आत्मीयता जताने के विचार से तरह-तरह की बातें पूछीं। लेकिन भानुप्रताप ने बातचीत में कोई जिज्ञासा और दिलचस्पी नहीं दिखायी। बल्कि उनके स्वर से उपेक्षा और अहंकार की बू आ रही थी। जग्गू को भानुप्रताप का व्यवहार अच्छा नहीं लगा। कुछ देर तक बाहर ठहरने के बाद भानुप्रताप, गंभीर मुद्रा में, मुँह से सीटी बजाते हुए भीतर चले गये।

"बेचारे को व्यापार में घाटा लग गया है। इसलिए बड़ा दुःखी है। शारदा तो रो-रोकर जान देने पर उतारू थी।" जग्गू ने रामपाल को स्थिति से अवगत कराने के विचार से यह बात कही ताकि वह, भानुप्रताप के व्यवहार का बुरा न मान जाये।

"अच्छा ?······किस चीज़ का व्यापार करते थे ?" रामपाल ने सहानुभूति और जिज्ञासा के स्वर में पूछा। जग्गू ने कहा—

"यह तो मुझे भी मालूम नहीं। लेकिन ज़रूर कोई बड़ा कारोबार होगा। तभी तो इतना बड़ा मकान बनवा रहे थे। आपने तो देखा ही होगा।"

"जी हाँ।" रामपाल कुछ सोचता हुआ बोला। दोनों कुछ देर चुप रहे।

"अब मकान की इस नींव का क्या कीजिएगा ?"—रामपाल ने चुप्पी तोड़ते हुए पूछा। जग्गू उदासी से हँसता हुआ बोला—

"करना क्या है ! पड़ी रहेगी वैसी ही। उसे उखड़वाकर फिर से खेत बनवाने में भी तो काफी रुपये लग जायेंगे।"

"इसे आप सरकार के हाथ बेच देंगे ?"

"क्यों ?"

"असल में, इस इलाके में बुनियादी तालीम के लिए एक स्कूल भी बनने वाला है। वह स्कूल यदि यहीं, इसी जमीन में, बन जाये तो गाँववालों को भी सुविधा होगी और मुझे भी जमीन के लिए कहीं भटकना नहीं पड़ेगा।"

"भला इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? अंधा चाहे दोनों आँख !" जग्गू ने तपाक से कहा। बात तय हो गयी।

रामपाल कुछ देर के बाद इलाके का निरीक्षण करने चला गया। जग्गू ने भानुप्रताप से पूरी बातें नहीं की थीं। अतः वह भानुप्रताप से मिलने भीतर पहुँचा। भानुप्रताप खाट पर बैठे हुए कोई अखबार पढ़ रहे थे। उनके बायें हाथ की उँगलियों में जलता सिगरेट दबा हुआ था। दाहिने हाथ में अखबार और बायें हाथ की हथेली गाल के नीचे-ऊपर हो रही थी। जग्गू को देखकर भी उनके चेहरे पर स्वाभाविक गंभीरता बनी रही। जग्गू चुप-चाप उनकी बगल में कुछ देर तक बैठा रहा। भानुप्रताप जग्गू को एक बार देखकर फिर अखबार पढ़ने में तल्लीन हो गये।

"कैसे घाटा लग गया ?" आखिर जग्गू से नहीं रहा गया और उसने पूछ लिया। भानुप्रताप ने सिर उठाकर जग्गू को ऐसे देखा, जैसे उन्होंने प्रश्न सुना ही नहीं। जग्गू ने अपना प्रश्न दुहरा दिया। तब भानुप्रताप ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया—

"मेरे पार्टनर ने मुझे धोखा दे दिया। कुछ लिखा-पढ़ी थी नहीं कि मैं दावा करता।"

जग्गू के मन में यह बात जमी नहीं। उसे भानुप्रताप का किस्सा गढ़ंत जैसा लगा। फिर भी उसने पूछा—

"तब ? अब क्या करने का विचार है ?"

"अभी तक कुछ सोचा नहीं है।" भानुप्रताप ने अखबार के पृष्ठ उलटते हुए कहा।

"रामपाल साहब जानना चाहते थे कि आप कहाँ तक पढ़े-लिखे हैं।"

"मेरे पास डिग्री तो कोई नहीं है लेकिन, मैं एम० ए० पास को भी पढ़ा

सकता हूँ।"—बड़े दम्भ से भानुप्रताप ने कहा।

जग्गू ने महसूस किया कि भानुप्रताप अजीब खोपड़ी का आदमी है। शायद अभी यह बहुत दुःखी है—ऐसा सोचकर जग्गू चुप हो रहा। शारदा भी गुमसुम अपने घरेलू काम-धंधे में लगी थी। कुछ देर तक यों ही बैठे-बैठे जग्गू का मन ऊब गया और वह बिना कुछ बोले-बतियाये गुमटी पर चला आया।

काफी दिन चढ़ आया था। खाना बनाने में देर हो जाती इसलिए उसने चिउरा और गुड़ खाकर पानी पी लिया। रामपाल अभी लौटा नहीं था। जग्गू काफी देर तक, बाहर धूप में खाट पर बैठा रहा और रामायण पढ़ता रहा। वह इतनी तन्मयता से अरण्य-काण्ड में डूबा हुआ था कि बिसेसर-सिंह का आना उसे मालूम भी नहीं हुआ।

"क्या पढ़ रहे हो जग्गू भाई?" बिसेसरसिंह ने खाट पर बैठते हुए पूछा।

"रामायण पढ़ रहा था। क्या करूँ बिसेसर बाबू, जब कभी थोड़ा-बहुत समय मिलता है, भगवान राम की गाथा पढ़कर आत्मा को पवित्र कर लेता हूँ।"

"बहुत बढ़िया काम करते हो। मुझे तो माया-मोह से फुर्सत ही नहीं मिलती कि राम का ध्यान करके परलोक की चिंता करूँ।"

बिसेसरसिंह की इस बात से जग्गू को मन-ही-मन हँसी आ गयी। लेकिन ऊपर से वह गंभीर बना रहा। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बात चीत के बाद बिसेसरसिंह ने काम की बात शुरू की। सामुदायिक योजना के अधीन बहुत से काम शुरू किये गये थे। उन कामों में, बिसेसरसिंह को, रुपया बनाने की काफी गुँजायश दीख पड़ी। इसीलिए वह रामपाल से सम्बन्ध बनाना चाहते थे। इस सिलसिले में जग्गू को अपने साथ ले लेना उन्होंने जरूरी समझा।

काफी देर तक बिसेसरसिंह की लल्लो-चप्पो सुनते-सुनते जग्गू ऊब गया और बोला—

"यह सारी बातें आप रामपाल साहब से कीजिए। आप तो जानते हैं कि मुझे इन बातों से कभी कोई मतलब नहीं रहता।"

"लेकिन जग्गू भाई, यह तो देश-सेवा का काम है। हमारे-तुम्हारे जैसे लोग आगे नहीं बढ़ेंगे तो काम कैसे चलेगा? अब गंडक के बाँध की ही बात ले लो। इस काम में तो मुझे मजबूरन भी पड़ना ही पड़ेगा, क्योंकि यह बाँध ग्राम-पंचायतों के अधीन ही सम्पन्न होना है। ऐसे बहुत से काम हैं जिसमें जनता का सहयोग बिल्कुल जरूरी है। मैं तुम्हारे पास इसीलिए आया हूँ कि ऐसे काम में तुम्हारे जैसे ईमानदार आदमियों की सख्त जरूरत है।"

"जहाँ मैं अपनी जरूरत महसूस करूँगा, वहाँ बिना बुलाये ही पहुँच जाऊँगा।"

"खैर, जसी तुम्हारी इच्छा! लेकिन रामपाल साहब से मेरी सिफारिश तुम्हें ही करनी होगी।" बिसेसरसिंह ने अधिकारपूर्वक कहा। जग्गू जल उठा—

"मुझसे यह सब नहीं होगा।"

"देखो जग्गू भाई, तुमने ही मेरे काम को नापसन्द किया था, और आज तुम्हारी बात मानकर ही मैं लूट-पाट का काम बन्द करना चाहता हूँ। लेकिन मेरे बाल-बच्चे हैं, इज्जत-प्रतिष्ठा है और इन सबको बनाये रखने के लिए मुझे कोई-न-कोई उद्यम करना ही है। यदि तुम अच्छे काम में भी मेरी मदद नहीं करोगे तो फिर मुझे मजबूर होकर अपने पुराने काम में जुट जाना पड़ेगा। मैं तो अच्छी राह पर स्वयं चलना चाहता हूँ, लेकिन लोग चलने दें तब न।" बिसेसरसिंह इस लम्बे व्याख्यान के पश्चात् दुखी और गंभीर मुद्रा में चुप बैठ गये। उनकी बातों से अधिक उनकी मुद्रा का जग्गू पर असर पड़ा। जग्गू को बिसेसरसिंह की बातों में सच्चाई की झलक मिली। वह बोला—

"अच्छी बात है। आप रामपाल साहब से मिलकर बातें कीजिए। मैं भी उनसे कह दूँगा।" बिसेसरसिंह जग्गू की बात सुनकर मन-ही-मन खिल

उठे, लेकिन वह इस ढंग से बोले जैसे उन्होंने जग्गू की बात सुनी ही नहीं—

"सच कहता हूँ जग्गू भाई, मुझे बड़ी ग्लानि होती है जब मैं अपने कुकर्मों के बारे में सोचता हूँ। लेकिन क्या करूँ? आखिर, जिन्दा रहने के लिए कुछ-न-कुछ तो करना ही है।" बिसेसरसिंह बहुत ही भावपूर्ण मुद्रा में बोल रहे थे। जग्गू ने उन्हें तोष दिलाने के विचार से कहा—

"अच्छा, अब पिछली बातों को भूल जाइए। रामपाल साहब जरूर कुछ-न-कुछ करेंगे।"

"अच्छी बात है, मैं रात में लगभग आठ बजे तुम्हारे घर पर आऊँगा।" बिसेसरसिंह अनासक्त भाव से बोले और उठकर चलते बने।

जग्गू बिसेसरसिंह का जाना देखता रहा। सूरज पश्चिम की ओर झुका जा रहा था। खेत में गेहूँ के बड़े-बड़े पौधे हवा के झोंकों पर लहरा रहे थे। जग्गू को धूप बड़ी सुखद मालूम दे रही थी लेकिन उसे मुनिदेव के पास जरूरी काम से जाना था, इसलिए वह उठ खड़ा हुआ कि तभी गोपाल आ पहुँचा।

"......आप कहीं जा रहे हैं क्या जग्गू चाचा?"—गोपाल ने पहुँचते ही पूछा।

"हाँ, जरा स्टेशन तक जा रहा हूँ। मुनिदेव से कुछ काम है।"

"चलिए, मैं भी साथ चलता हूँ। रास्ते में बात हो जायेगी।"

दोनों स्टेशन की ओर चल पड़े। कुछ देर तक दोनों खामोश चलते रहे कि गोपाल ने किंचित संकोच से पूछा—

"जग्गू चाचा! रामपाल साहब आपकी बात तो मानते ही होंगे?"

"क्यों?"

"मुझे उनसे एक काम था।" गोपाल ने दीनता से कहा।

"भाई, वह बहुत पढ़े-लिखे हैं—अफसर हैं। मेरी बात वह क्यों मानने लगे?"

"नहीं, आप उनसे कह दीजियगा तो मेरा काम अवश्य हो जायेगा।"

"पहले काम तो बताओ।"

"वह.....गंडक के किनारे बाँध बननेवाला है। उसमें मैं भी काम

करना चाहता हूँ। बात यह है कि घर पर बेकार ही बैठा रहता हूँ, यदि कुछ काम मिल जाये तो मन भी लगा रहेगा और कुछ जेब-खर्च भी निकल आयेगा। हर चीज़ के लिए बाबू से पैसा मांगने में शर्म लगती है। आप तो जानते हैं जग्गू चाचा कि मैं शादी-शुदा हूँ; दो बच्चे भी हैं। और रूपनसिंह के मुकदमे ने तो हम लोगों की रीढ़ ही तोड़ दी।"

जग्गू ने कोई जवाब नहीं दिया। स्टेशन पर पहुँचते ही फ़ौजा खलासी से भेंट हो गयी।

"कहाँ चले जग्गू बाबू?"

"यहीं बाज़ार तक जा रहा हूँ। मुनिदेव से कुछ काम है।"

"अरे बाजार-वाज़ार जाना छोड़िए, बड़े साहब आये हुए हैं। अभी गुमटी पर भी जायेंगे। जल्दी से गुमटी पर पहुँचकर वर्दी-पेटी में तैयार रहिए।"

"कौन साहब आये हैं?"—जग्गू ने सहमकर पूछा।

"इंजीनियर साहब और डी० टी० एस० साहब दोनों ही आये हुए हैं। देखते नहीं, वहाँ सैलून लगा हुआ है?"

जग्गू उल्टे पैर गुमटी पर लौट आया। जल्दी-जल्दी उसने गुमटी के दोनों ओर की जगह साफ की और वर्दी-पेटी पहनकर प्रतीक्षा करने लगा। उसके मन में तरह-तरह की आशंकाएँ उठ रही थीं। उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसने देखा कि स्टेशन की ओर से मोटर-ट्राली हड़हड़ाती हुई चली आ रही थी। गुमटी पर आकर मोटर-ट्राली रुक गयी। जग्गू ने झुककर सलाम किया लेकिन साहब बहादुरों ने उसके अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया। इंजीनियर साहब को जग्गू पहचानता था लेकिन डी० टी० एस० साहब कोई नये आदमी थे। इंजीनियर साहब ने मुस्कराते हुए पूछा—

"क्यों जग्गू, आजकल तुम्हारी गुमटी पर बहुत चोरी होने लगी है? क्या बात है?"

"हुजूर, मेरी गुमटी पर तो कभी चोरी नहीं हुई। हाँ, इसके आस-पास

ज़रूर हुई है।"

"लेकिन तुमको मालूम है कि इससे रेलवे को कितना घाटा लगता है ?"

"घाटा तो बहुत लगता होगा हुज़ूर !"

"फिर तुम यहाँ किस मर्ज की दवा हो ?"—डी० टी० एस० ने डपट-कर पूछा। क्षण-भर के लिए जग्गू के चेहरे का रंग उड़ गया। वह कुछ नहीं बोल पाया। उसे चुप देखकर डी० टी० एस० ने फिर पूछा—

"तुम ड्यूटी के समय कहाँ रहते हो ?"

"यहीं रहता हूँ हुज़ूर !"

"झूठ बोलते हो। हमारे पास तुम्हारे खिलाफ़ रिपोर्ट पहुँची है कि तुम गुमटी पर कभी नहीं रहते और जितनी चोरी होती हैं, उनमें तुम्हारा हाथ रहता है। इसके पहले कि यह मामला पुलिस में जाये, हम लोगों को तुम ठीक-ठीक बता दो कि मुजरिम कौन है।"

"हुज़ूर, मैं ग़रीब आदमी हूँ लेकिन रुपये का भूखा नहीं हूँ। आज बीस वर्ष से रेलवे की नौकरी कर रहा हूँ, लेकिन कभी किसी ने मुझ पर उँगली नहीं उठायी। आज भी मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैं भूखों मर जाऊँगा लेकिन, चोरी जैसा नीच काम नहीं कर सकता।"

"इसीलिए तो रिपोर्ट पाकर हम लोग पहले तुम्हारे पास आये हैं।"—इंजीनियर ने विनम्र स्वर में कहा।

"हुज़ूर, क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यह रिपोर्ट किसने भेजी है ?"

"तुम्हारे गाँववालों ने भेजी है। कौन हैं ये लोग ?"

इंजीनियर साहब ने फाइल देखते हुए पूछा—"कुलदीप, मुनेश्वर और रूपनसिंह !"

"इन लोगों के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है। आप चाहें तो इन सज्जनों के बारे में गाँववालों से या आपके साथ ही बड़े बाबू हैं—इनसे पूछ सकते हैं।"

"सो तो हम पूछ लेंगे, लेकिन तुम ग़रीब होकर भी इतना बड़ा मकान कैसे बना रहे हो ? इतना रुपया तुम्हारे पास कहाँ से आया ?"

"यह बात आप मुझसे पूछिए !" गम्भीर आवाज में गूँजती हुई इस बात ने सबों को चौंका दिया। जग्गू ने आश्चर्य और उल्लास से देखा—सामने रामपाल मौजूद था। जग्गू की जान-में-जान आयी। रामपाल के चेहरे पर गहन गम्भीरता व्याप रही थी।

"आप कौन हैं ?"—डी० टी० एस० साहब ने किंचित अहंकार के स्वर में पूछा। रामपाल ने हँसकर सहज भाव से उत्तर दिया, लेकिन उसके स्वर में अनजाने ही व्यंग्य मुखरित हो उठा—

"आप ही की तरह मैं भी एक छोटा-सा सरकारी कर्मचारी हूँ—लोक-सेवक !"

"आप सामुदायिक योजना-क्षेत्र के मुख्य प्रादेशिक अफसर हैं।" बड़े बाबू ने बात को बिगड़ते देखकर जल्दी से डी० टी० एस० को बताया। तीनों अफसर आपस में मिले। तीनों ने अँग्रेजी में कुछ बातचीत की और फिर तीनों ही मोटर-ट्राली पर बैठकर स्टेशन की ओर चले गये। जग्गू से किसी ने कुछ नहीं पूछा। वह हक्का-बक्का रह गया। पश्चिम में ज़मीन के निकट पहुँचकर सूरज अत्यधिक लाल हो उठा था लेकिन उसका तेज समाप्तप्राय हो चुका था। पूस की शाम ठंड से सिकुड़कर जमी जा रही थी। ठंड के मारे हवा भी बोझिल हो रही थी।

कुलदीप, मुनेश्वर और रूपनसिंह की दुष्टता पर जग्गू को हँसी आ गयी। लेकिन उसकी हँसी मौसम की ठंडक में दबकर उसी के पास रह गयी।

गाँववालों के विरोध के बावजूद अनुराधा पटना चली गयी। कुछ दिनों तक गाँव में इसकी खूब चर्चा रही लेकिन समय और घटनाचक्र नित्य नवीन रूप धारण करते रहे।

बिसेसरसिंह ने रामपाल को फँसाकर सीमेंट, खाद और दवाइयाँ हड़पने की पूरी कोशिश की लेकिन रामपाल एक चेतन नौजवान अफसर था। अभी उसके खून में घूस खाने और फरेब करने का नशा असर नहीं कर पाया था। बचपन से ही वह ग़रीबी, परेशानी, छल-प्रपंच और सामाजिक विषमता के वातावरण में पला था। उसे इन बातों से बहुत घृणा

थी। वह सामाजिक अनाचार और प्रशासनिक बुराइयों से पूरी तरह परिचित था इसलिए हमेशा जागरूक और चेतन रहता। वह जानता था कि सामुदायिक योजना के अन्तर्गत मिलनेवाला सामान मुखिया और ग्राम-सेवक के थैले में लीन हो जाता है। इसलिए वह जहाँ भी जाता था, पूरी सख़्ती बरतता था।

ग्राम पंचायत की ओर से गोपाल, बिसेसरसिंह का लड़का सहदेव और गाँव के तीन-चार नौजवान गंडक बाँध के काम पर लगा दिये गये। जग्गू के घर की बगल में स्कूल की इमारत बनाने का काम भी आरम्भ कर दिया गया। सब की गति तेज़ थी। सब काम अपनी जगह आसानी से होता जा रहा था। केवल जग्गू बेचैन रहता।

भानुप्रताप अपने साथ कुछ रुपये लाये थे जो उन्होंने मुज़फ्फरपुर जाकर सिनेमा देखने, शराब पीने और बेकार चीज़ों के खरीद-फ़रोख्त में खर्च कर दिये। ब्रह्मदेव से उसे मालूम होता रहता कि किस दिन भानुप्रताप ने शारदा को मारा-पीटा और किस दिन घर में कृत्रिम शान्ति रही। कई बार जग्गू के मन में हुआ कि वह भानुप्रताप को समझाये-बुझाये लेकिन मियाँ-बीवी के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिए—ऐसा सोचकर वह चुप रह जाता।

जग्गू के निरीक्षण में ही स्कूल की इमारत बन रही थी। इसलिए वह सुबह ही अपना खाना बनाकर खा लेता और काम में जुट जाता। उस दिन जग्गू खा-पीकर गुमटी बन्द कर रहा था कि भानुप्रताप आ धमके। भानुप्रताप कभी भी जग्गू से खुलकर बातें नहीं करते थे। जग्गू भी उनकी ओर अधिक उन्मुख नहीं होता था। भानुप्रताप कुछ देर तक इधर-उधर निरीक्षण की दृष्टि से देखते रहे, फिर बोले—

"मुझे आप कुछ रुपये दे सकेंगे ?"

"कुछ जरूरी काम है क्या ?"—जग्गू ने सहज-स्वर में पूछा। भानुप्रताप को जग्गू का प्रश्न अच्छा नहीं लगा क्योंकि उन्होंने बहुत ही बेरुखी से कहा—

"हाँ, कुछ ऐसी ही जरूरत आ पड़ी है।"

"कितने रुपये चाहिएँ ?"

"सौ रुपये से काम चल जायेगा।"—भानुप्रताप ने अनासक्त भाव से कह दिया। जग्गू को उनका ढंग बुरा लगा। उसने अपनी बेरुखी छिपाते हुए कहा—

"मेरे पास इतने रुपये कहाँ से आये ? कर्ज लेना पड़ेगा।"

"ठीक है, ले लीजिए। मैं लौटकर वापस कर दूँगा।"

"क्या आप कहीं जा रहे हैं ?"

"हाँ।"

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप अब कहाँ जा रहे हैं ?"

"नया बिजिनेस शुरू करना है।"—भानुप्रताप ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। जग्गू के मन में आशंका जगी कि कहीं यह, शारदा को छोड़कर, भागना तो नहीं चाहता है। जग्गू को मन-ही-मन क्रोध आ रहा था। फिर भी उसने शान्तिपूर्वक कहा—

"आपके पास पूँजी तो है नहीं, फिर भी आप बिजनेस करने जा रहे हैं। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि आप कोई नौकरी क्यों नहीं कर लेते।"

"मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।"—भानुप्रताप ने यह बात धीमी रफ्तार और धीमी आवाज़ में कही लेकिन उसके स्वर में दम्भ स्पष्ट था। जग्गू ने किंचित उग्र आवाज में कहा—

"आप कुछ नहीं जानते। आपको अपने भविष्य का पता नहीं था और एक अबोध लड़की को उसके घर से भगा लाये। आपके पास पूँजी थी नहीं और पता नहीं किस उम्मीद के बूते पर इतने बड़े मकान की नींव डलवा दी। मैंने कर्ज लेकर आपको पिछली बार रुपये दिये, मकान में सैकड़ों रुपये का कर्ज हो गया। लेकिन आप जो भी रुपया लाये उसे आपने शराब में उड़ा दिया।"

जग्गू की फटकार सुनकर भानुप्रताप का चेहरा फक् पड़ गया। उन्हें उम्मीद नहीं थी कि एक मामूली गुमटीवाला इतना कुछ बोल जायेगा। जग्गू का चेहरा और हाव-भाव देखकर भानुप्रताप के मन में डर समा गया। उन्होंने अपने दोनों हाथ पेंट की जेब में डाल लिए और गला साफ करते हुए वह यह बोलकर वहाँ से चल दिये—

"पहले ही कह देते कि आप मुझे रुपये नहीं देंगे !"

जग्गू क्रोध से ऐंठता हुआ उनका जाना देखता रहा। जग्गू सोचता रहा कि यह कितना बड़ा उल्लू आदमी है। जब से आया है, सिनेमा, शराब और शारदा को पीटने में लगा हुआ है। नौकरी करने का नाम सुनकर शान बघारने लगता है। लेकिन भीख माँगते हुए इसे शर्म नहीं आती है। जग्गू की इच्छा हुई कि अभी जाकर उन लोगों को घर से निकाल बाहर करे। लेकिन उसके हृदय ने जग्गू को फटकारना शुरू किया। भानुप्रताप पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था। उसे लाखों रुपये का घाटा लगा था। ऐसी हालत में तो लोग पागल हो जाते हैं। लेकिन भानुप्रताप शराब पीकर अपनी विपत्ति भूल जाना चाहता होगा। ऐसी हालत में लोग चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं और भानुप्रताप कोई अपवाद नहीं है। फिर उसने तो शारदा को बहन बनाया है, उसे संरक्षण देने का वचन दिया है !

जग्गू बहुत देर तक तर्क-वितर्क में उलझा रहा। काफी दिन चढ़ आया था। जब उसने देखा कि स्कूल में काम शुरू हो गया है तब वह घर की ओर लपका। रामपाल कपड़े पहन रहा था। जग्गू ने रामपाल से सौ रुपये लिए और घर के भीतर पहुँचा। उसे देखते ही संयोगवश शारदा बोल उठी—

"क्यों भैया ! मुझे सौ रुपये दोगे ?"—शारदा के स्वर में निश्छल स्नेह, लज्जा और चिढ़ाने का भाव समन्वित हो रहा था। खाट पर बैठे हुए भानुप्रताप कोई किताब पढ़ने के उपक्रम में तल्लीन थे। जग्गू ने सौ रुपये शारदा के हाथ पर रख दिये और वह बिना कुछ बोले घर के बाहर हो गया।

स्कूल का काम लगभग पूरा होने को था। खपड़ैल का मकान बनाना था

लेकिन उसके लिए लकड़ी, सरकंडा और खपड़ा जुटाने में काफी दिक्कत पैदा आ रही थी। बिसेसरसिंह मन-ही-मन इन सारी योजनाओं के विरुद्ध थे इसलिए गाँववालों से सामान उगाहना कठिन हो रहा था। खुल्लम-खुल्ला तो कोई भी न नहीं करता, लेकिन, बला टालने का भाव अधिकांश गाँववालों के व्यवहार से प्रकट हो जाता।

जग्गू दिन-भर गाँववालों के दरवाजे-दरवाजे सामान के लिए निहोरा करता फिरता, फिर, इमारत के काम की भी देखभाल करता और रात में बिस्तर पर जाते ही, थकान के नशे में चूर एक नींद में ही भोर कर देता।

उस दिन बिचित्तरसिंह के यहाँ से सामान उगाह कर वह लौटा ही था कि ब्रह्मदेव ने उसे एक चिट्ठी लाकर दी।

"किसकी चिट्ठी है ?" जग्गू ने पूछा। उसके पास कभी कोई पत्र नहीं आया था। लिफाफे पर उसी का नाम था। उसने आश्चर्यचकित होकर एक बार ब्रह्मदेव की ओर देखा और फिर वह पत्र खोलकर पढ़ने लगा—

"प्रिय·········!

बहुत दिनों तक उधेड़-बुन में पड़ी रही लेकिन आज पत्र लिखने की हिम्मत हुई। फिर भी यही नहीं समझ पा रही हूँ कि क्या लिखूं ? बहुत-सी बातें मन में घुमड़ती हैं लेकिन उन्हें कागज पर उतारने का ढंग मुझे नहीं मालूम। बचपन में मैं आपको 'तुम' कहकर पुकारती थी। आज वैसी ही इच्छा हो रही है। क्या 'तुम' कहूँ ? मेरा जीवन बदल गया लेकिन यह नहीं मालूम कि अच्छा हुआ या बुरा क्योंकि परिणाम तो अभी बाकी है। अब तो जल्दी ही वहाँ पहुँचनेवाली हूँ। पता नहीं मिलने पर मेरी क्या दशा होगी।

स्नेह-भिक्षुणी—

अनुराधा"

जग्गू को लगा जैसे एक साथ, अचानक ही, पन्द्रह-बीस रेलगाड़ियाँ हड़हड़ाकर उसके कलेजे पर से गुजर गयीं, जैसे भयंकर बाढ़ की लपेट में उसका कलेजा, कगार की तरह कटकर, बह गया। इस अनुभूति में उसे

आनन्द मिला या वेदना—यह बात भी वह नहीं जान सका। लेकिन उसका अंग-प्रत्यंग नवीन आभा के स्पर्श से पुलकित हो उठा, उसकी धमनी में मधुर स्वरलहरी प्रवाहित होने लगी जिसकी गूंज में, वह, क्षण-भर के लिए अपना अस्तित्व भूल बैठा।

"मालकिन ने आपको बुलाया है।"—ब्रह्मदेव कीआवाज सुन कर उसे होश आया।

"चलो, मैं अभी आता हूँ।"—जग्गू ने कृत्रिम गंभीरता से कहा। उसके स्वर में स्फूर्ति साकार हो उठी थी।

रात हो गयी। अन्धकार ने पश्चिम-पूरब को एकाकार कर दिया था। बछड़ों के रभाँने की आवाज़ ठंडे मौसम को भेदती हुई गाँव के आर-पार हो जाती; गहरे-नीले, स्वच्छ आकाश के तारे भी ठंड से काँप रहे थे। सारा वातावरण सुख-दुख की समन्वित अनुभूति उत्पन्न करता-सा लग रहा था। ब्रह्मस्थान पर इकट्ठे गाँव के कीर्तनिया ज़ोर-ज़ोर से गा रहे थे—

रामा, श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। रामा हो रामा !
रामा, नेकु न संक सकुच मन माहीं। रामा हो रामा !
रामा, सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। रामा हो रामा।
रामा, हरषे सकल पाइ जनु राजू। रामा हो रामा।

ढोलक और झाल में होड़ लगी हुई थी। जग्गू बहुत देर तक गुमटी के दरवाजे पर बैठा अंधकार में देखता रहा। इतने शोरगुल के बावजूद उसके हृदय में विराट शान्ति व्याप गयी थी और कभी-कभी हलकी कचोट, उर्मियों की तरह, उसके शान्त हृदय में सुगबुगा उठती और तब वह अपनी पैनी दृष्टि अन्धकार में चुभो देता।

१६

"माफ करना शारदा, कल शाम को आ नहीं सका। बात बिल्कुल ध्यान से उतर गयी।"—जग्गू ने घर में घुसते ही शारदा की मानभरी भंगिमा देखकर कहा।

"मैं कौन होती हूँ माफ़ करनेवाली!" शारदा ने चिढ़कर उदास-स्वर में कहा। जग्गू आजिज़ी से बोला—

"तुम तो व्यर्थ ही नाराज़ हो रही हो। असल में आजकल काम इतना आ पड़ा है कि······"

"मेरे जैसे गरीबों का ख़याल भी नहीं रहता!"—शारदा ने व्यंग्य से वाक्य पूरा कर दिया। जग्गू कुछ क्षण चुप रहा। शारदा उसके लिए चाय बनाकर ले आयी। अन्त में जग्गू ने आरज़ू-मिन्नत करके शारदा का क्रोध ठंडा कर दिया। दोनों, देर तक, इधर-उधर की बातें करते रहे। दोनों की रुचि एक-दूसरे के अनुरूप हो चली, बातचीत में प्रवाह आया और दोनों एक-दूसरे के स्नेहभाजन होकर, भावावेश में, अपने-अपने मन की बात कह निकले। शारदा ने कहा—

"मैं तो आपको अपने बड़े भाई के रूप में देखती हूँ और अंत-अंत तक इसी भाव से देखती रहूँगी।"

"मैं भी तुम्हें शुद्ध मन से स्नेह करता हूँ शारदा।"

"झूठ बात।"

"सच कहता हूँ। मैं अक्खड़ आदमी हूँ। छः-पाँच नहीं जानता; बल्कि तुम ही बीच-बीच में तुनुक-मिजाज हो जाती हो; और तुम्हारे भानुप्रताप जी तो बिल्कुल अजीब आदमी हैं।"

"हाँ, उनका स्वभाव तो मैं भी नहीं समझ पायी हूँ। दिल खोलकर तो

कभी बात करते ही नहीं। इधर उनका स्वभाव और भी अजीब हो गया है। लेकिन मैं क्या करूँ? मेरी आँख तो उसी दिन फूट गयीं जिस दिन घर से बाहर आयी!" जग्गू विस्मय से भर गया जब उसने शारदा के मुँह से भानुप्रताप के सम्बन्ध में इस तरह की बातें सुनीं। शारदा की बातों से उत्साहित होकर जग्गू ने पूछा—

"मैंने सुना है कि वह तुम्हें पीटता भी है। क्या यह सच है?"

"उनके मन में जो आता है वही करते हैं—लेकिन आप उनसे कभी मत पूछियेगा नहीं तो वह मुझे जिन्दा ही चबा जायेंगे।"

जग्गू का मस्तिष्क आक्रोश से भिन्ना उठा। साथ ही, शारदा के लिए वह करुणा और दया से द्रवित हो उठा। एकान्त नारी के प्रति सहानुभूति का अतिरेक भावुकता की गंगोत्री है। यहीं से प्रेम की धारा फूटती है—उद्दाम, अविराम और निर्मल! यही स्वाभाविक है, सहज नियम है। लेकिन, स्वाभाविकता और सहजता पर विजय प्राप्त करने का उत्साह भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक और सहज है। इसी बूते पर मनुष्य में मनुष्यता आती है, विकास और प्रगति होती है। अग्नि का धर्म है जलाना लेकिन दिया रोशनी देता है—इसीलिए वह मधुर है, घर-घर में उसकी पैठ है।

जग्गू शनैः शनैः शारदा के निकट आता गया। शारदा रोती तो वह अब निस्संकोच होकर अपने हाथ से उसके आँसू पोंछ देता। अनुराधा के प्रेम ने जग्गू को देवता से आदमी बना दिया था और शारदा का प्रेम उसे देवत्व की ओर उन्नमित करता।

इसी बीच एक घटना और घट गयी जिसने जग्गू को शारदा के निकट ला दिया। जग्गू का दृष्टिकोण, उसकी प्रवृत्ति विकृत होते-होते रह गयी। रामपाल ने ईमान लाकर नौकरी शुरू की थी। देश की परतन्त्रता के दिनों में, वह, सरकारी अफसरों को घृणा की दृष्टि से देखता था क्योंकि वे अफसर घूस लेते, अन्याय करते, काम-चोर होते, साधारण जनता को उपेक्षित और हीन समझते और अहंकार की निस्सारता में डूबे रहते। स्वतन्त्रता का उदय हुआ। उसके प्रकाश में रामपाल ने देखा कि विपन्न

देश को समृद्ध और सुदृढ़ बनाना ही परम कर्त्तव्य है। इसी विचार से उसने नौकरी की। देसौरा के इलाके में उसकी बहाली हुई। सामुदायिक योजना कार्य आरम्भ होते ही, गाँवों की बेकारी कम हो गयी। इसी कारण, अच्छे गृहस्थों और जमीदारों की जमीन में काम करने के लिए, खेतिहर मजदूरों का अकाल-सा पड़ गया। बेगार के नाम पर तो खेतिहर-मजदूर साफ टाल जाते। बिसेसरसिंह तो मन-ही-मन रामपाल की जान के लागू बने बैठे थे। रामपाल अपनी राह के अन्तराय से अपरिचित नहीं था। फिर भी उसने हार नहीं मानी और योजना-कार्य सम्पन्न करने में सतत प्रयत्नशील रहा।

लेकिन तीन ठगों ने मिलकर, बेचारे ब्राह्मण के बछड़े को कुत्ता कह-कर, आखिर बछड़ा ले ही लिया। एक ही बात कई मुँह से सुनते-सुनते अन्त में जग्गू को विश्वास हो गया कि रामपाल और शारदा में जार-सम्बन्ध है। वही शारदा, जो भानुप्रताप के विरुद्ध कोई बात नहीं सुन सकती थी, इधर स्वयं भानुप्रताप की शिकायत करने लगी थी। रामपाल जैसा बड़ा अफसर उसके जैसे गरीब के घर महीनों पड़ा रहे—यह भी कम आश्चर्य की बात नहीं थी। रामपाल ने शारदा को पढ़ाना भी शुरू कर दिया था। ये सब बातें देख-सुनकर जग्गू ने सोचा कि निश्चय ही रामपाल शारदा के प्रति व्यासक्त है।

अनुराधा के पटना से वापस आने में दस दिन शेष रह गये थे। जग्गू का मन सन्ताप से कराह रहा था। रामपाल और शारदा की ओर से उसने मुँह फेर लिया था। लेकिन उसे चैन नहीं था। इस घटना से वह इस कदर विक्षिप्त हो गया था कि कभी-कभी अनुराधा के प्रति भी वह शंका से भर उठता।

शाम हो चुकी थी। जग्गू बड़ी बेचैनी और बेसब्री से गुमटी के आगे टहल रहा था। ठंड काफी कम हो गयी थी फिर भी जग्गू रह-रहकर काँप उठता। विचिप्ति की दशा में उसे यह भी पता नहीं रहा कि कितना समय गुज़र चुका। वह दस बजने की प्रतीक्षा में पहाड़ जैसा समय ढो रहा था।

डफ और झाल की गूँज पर होली का समूह-गान, समुद्र पर उत्ताल

तरंगों के तांडव-सा ध्वनित हो रहा था। चारों ओर घना अन्धकार व्याप्त था। जग्गू अपने मन के द्वन्द्व से आप ही घुटा जा रहा था। उसे लग रहा था कि वह पतनोन्मुख हो रहा है, वह कृतघ्नता करने पर आमादा है, उसके विचार विकृत हो गये हैं और उसका व्यवहार अमानुषिक। जार-सम्बन्ध हो या प्रेम-सम्बन्ध, उसे क्या मतलब ? आस्था की धारा बहे या गरल की वह क्यों जीना-मरना चाहता है ? क्या उसे ईर्ष्या की आग नहीं जला रही है ?...

दस बज गये। जग्गू अनायास ही घर की ओर चल पड़ा। बिसेसरसिंह ने जग्गू से आज ही कहा था कि शारदा और रामपाल, रोज रात को दस बजे, घर के भीतर एक साथ होते हैं। जग्गू को बिसेसरसिंह की बातों में प्रपंच मालूम हुआ लेकिन शंका मनुष्यता का सबसे बड़ा शत्रु है। शंका के फूटते ही मनुष्य की आस्था कराह उठती है। जग्गू ने सोचा, समझा, फिर भी, अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सका।

घर के बाहर ओसारे पर रामपाल के दो आदमी सो रहे थे। कोठरी में रामपाल की खाट खाली थी। जग्गू ने एक बार इधर-उधर देखा—बाहर चारों ओर अन्धकार, गाँव के कुत्ते भौंकते हुए, वातावरण में भयानक सन्नाटा। वह धड़धड़ाता हुआ, घर के भीतर घुस गया। ओसारे पर कोई नहीं था। शारदा की कोठरी का द्वार खुला हुआ था। भीतर रोशनी हो रही थी। जग्गू चुपचाप कोठरी में जा पहुँचा लेकिन वहाँ पहुँचकर वह ग्लानि और पश्चात्ताप से भर उठा। जीवन में पहली बार उसने किसी पर शंका की थी, अकारण ही वह दोष, प्रतिहिंसा और विप्रलम्भ का शिकार हुआ था। रामपाल के सामने, ज़रा हटकर, शारदा बैठी हुई मनोयोग से पढ़ रही थी और रामपाल उसे कुछ बता रहा था। जग्गू को अचानक आया हुआ देखकर रामपाल सहज रूप से किंचित चौंक उठा। तीनों में से कोई कुछ नहीं बोला। सभी एक दूसरे के मन की बात समझ गये लेकिन रामपाल जग्गू का मुँह ताकता रह गया। और इस ज्ञान से जग्गू और भी गड़ गया। किसी तरह अपने पैर घसीटता हुआ वह बाहर भागा। रामपाल

और शारदा को अब वह अपना कौन-सा मुँह दिखायेगा। जग्गू के मन की दशा अजीब हो गयी। 'मुझे क्या हो गया था?'—यही प्रश्न बार-बार उसके मन को कचोटता रहा। उसने शारदा और रामपाल पर शंका की लेकिन उसे उल्टे मुँह गिरना पड़ा······रात-भर जग्गू अपने किये पर पछताता रहा!

मुँह अँधेरे रामपाल गुमटी पर पहुँचा। जग्गू खाट पर बैठा था। रात-भर में ही उसका मुँह इतना-सा निकल आया था। रामपाल को देखते ही उसे लगा कि अब वह रो देगा। रामपाल क्षण-भर खड़ा रहा फिर बोला—

"जग्गू भाई! गाँव में चलनेवाली कानाफूसी से मैं अनभिज्ञ नहीं था; लेकिन आप भी विचलित हो जायेंगे, ऐसी आशा नहीं थी। मेरे लिए यही उचित है कि अब मैं स्कूल पर जाकर रहूँ। लेकिन मैं एक बात आपसे अवश्य कह देना चाहता हूँ कि किसी तरह का मनमुटाव लेकर मैं आपके घर से नहीं जा रहा हूँ। मुझ पर और मेरी बातों पर विश्वास कीजिए। आपके भरोसे ही मैं इस गाँव में रहना चाहता हूँ।"

जग्गू का मुँह सूखकर रह गया। उसने रामपाल से क्षमा माँगनी चाही लेकिन उसकी ज़बान तालू से चिपक गयी। रामपाल ने आगे बढ़कर अपना बायाँ हाथ जग्गू के कन्धे पर रख दिया और स्नेहपूर्वक कहा—

"नाराज़ हो क्या? बात यह है कि आदमी जब अपने आपसे नाराज़ होता है तब वह अधिक खतरनाक हो उठता है। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि कैसा भी गुस्सा हो, किसी पर हो, उसे थूक दीजिए। फिर सभी राह घर की राह हो जायेंगी।"

जग्गू फिर भी चुप रहा। कुछ देर तक रामपाल मुस्कराता हुआ जग्गू को देखता रहा और फिर—"अच्छा, अब चलता हूँ," कहकर चला गया।

काफी दिन चढ़ आया। तीसरा पहर भी बीत गया। लेकिन जग्गू गुमटी से बाहर नहीं निकला। कभी वहीं छोटी-सी जगह में चहलकदमी करने लगता, कभी बैठ जाता तो कभी खाट पर औंधे मुँह पड़ जाता।

लगभग नौ बजे रात को मुनिदेव झूमता हुआ उसके पास पहुँचा। मुनिदेव के पहुँचते ही, गुमटी के भीतर ताड़ी की भभक फैल गयी। जग्गू अन्धकार में ही खाट पर पड़ा था।

"जग्गू भाई! जग्गू भाई!!" मुनिदेव ने थोड़ी लटपटाती जुबान से पुकारा।

"आओ, बैठो।" थकी आवाज़ से जग्गू ने कहा।

"अरे, अन्धकार में क्यों पड़े हो?"

"दिल की धुँधली रोशनी से ऐसा अन्धकार ही मेल खाता है मुनिदेव। आओ, बैठो। मैं अभी हथबत्ती जलाता हूँ।"

जग्गू ने हथबत्ती जलाकर रख दी। मद्धिम रोशनी से गुमटी का भीतरी भाग झिलमिला उठा। "बहुत ताड़ी पी ली है?"—जग्गू ने उदास मुस्कराहट से पूछा।

"हाँ, जिन्दगी में और क्या रखा है मेरे लिए?" 'हाँ' को बहुत लम्बा करता हुआ मुनिदेव आँखें बन्द करता हुआ बोला। जग्गू ने अपने पूर्ववत् स्वर में पूछा—

"मुझे भी पिलाओगे?"

"जरूर! लेकिन आज नहीं, कल! आज तो तुम्हारे यहाँ चोरी होनेवाली है।"

"मेरे यहाँ चोरी होनेवाली है?"

"हाँ! अभी साला मुनेसरा ताड़ीखाने में बैठा ताड़ी पी रहा है। उसी ने बताया। साले ने बिसेसरसिंह की शिकायत करनी शुरू की। उसके पेट से बात निकालने के लिए मैंने उसे खूब ताड़ी पिलायी—खूब पिलायी।"

"अब मेरे घर में क्या रखा है जो चोरी होगी?" जग्गू स्वगत भाषण के स्वर में बोला। मुनिदेव ने ज़रा नाटकीय ढंग से कहा—

"बहुत कुछ है दोस्त! अभी तो तुम्हारे घर में बिसेसरसिंह के लिए शारदा ही खजाने के रूप में बैठी है। साला बड़ा ही पतित हो गया है।

आज वह स्वयं ही आयेगा।"

इतना सुनते ही जग्गू तमककर खड़ा हो गया ! उसी नीच के बहकावे में आकर उसने रामपाल और शारदा के सम्बन्ध पर शक किया था। क्रोध से उसके दाँत कटकटा उठे—

"तो अब वह नीच इस हद तक उतर आया है ! अच्छी बात है, आज मैं इस झगड़े की जड़ को ही काट फेंकूँगा। भरे-गाँव के बीच जब वह अपना काला मुँह लेकर खड़ा होगा तब उसे मालूम होगा कि जग्गू कौन है।"

मुनिदेव वहीं गुमटी में सो गया। भीतर से उसने दरवाज़ा लगा लिया। जग्गू ने रामपाल को सारी स्थिति बता दी और गोपाल को भी खबर कर दी। तीनों, घर के तीन कोने में छुपकर बैठ गये। तय हुआ कि जब बिसेसर-सिंह घर में प्रविष्ट हो जाये तब उसे ही पकड़ा जाये—शेष लोगों को पकड़ने की कोशिश भी नहीं की जाये। शारदा अपने घर में जगी बैठी रही।

आधी रात बीत गयी। कोई नहीं आया। जग्गू के मन में फिर शंका उपजी कि हो न हो, मुनिदेव ताड़ी के नशे में बहककर झूठ-मूठ बोल गया हो। और इस तरह की बातें सोचता-सोचता वह निश्चिन्तता के प्रभाव में आ गया। रात बीतती गयी। जग्गू को झपकी आने लगी। गोपाल और रामपाल, अपनी-अपनी जगह पर, सतर्क बैठे थे। जग्गू किंचित् आश्वस्त होकर, दीवार के सहारे ओंठगने ही लगा था कि हलकी-हलकी धमक सुनकर वह चौकन्ना हो उठा। जहाँ पर जग्गू बैठा हुआ था वहीं पर की दीवार में सेंध लगाया जा रहा था। जग्गू ने बिसेसरसिंह को पकड़कर पीटने और पूरे गाँव के सन्मुख उसके मुँह पर कालिख पोतने का क्रत निश्चय कर रखा था। जग्गू ने जब देखा कि सेंध फूटने ही वाला है तब वह शीघ्रता से अनाज रखने की कोठी की बगल में छिप गया। धमक की आवाज़ स्पष्ट होती गयी, भीतरी दीवार की परत झड़ने लगी। जग्गू खूँखार चीते की तरह घात में बैठा रहा।

सेंध फूट गया। एक आदमी का सिर सेंध से होकर भीतर आया और क्षण-भर बाद वह फिर वापस चला गया। कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा कि दो पैर सेंध के भीतर आये—फिर जाँघें—फिर कमर, छाती और तब

जग्गू ने देखा कि एक नंग-धड़ंग आदमी, कमर में एक लंगोटी मात्र पहने हुए, बड़ी सावधानी से आंगन के दक्षिण ओर पिछले दरवाज़े की ओर बढ़ा। जग्गू साँस रोके उसे देखता रहा। उस आदमी ने आहिस्ता से पिछला दर-वाजा खोल दिया। दरवाजा खुलते ही दो आदमी भीतर घुस आये। जग्गू को बिसेसरसिंह को पहचानते देर नहीं लगी। एक आदमी वहीं दरवाज़े पर रुक गया। बिसेसरसिंह धीरे-धीरे शारदा की कोठरी की ओर बढ़ा। अभी वह कोठरी के दरवाज़े तक ही पहुँचा होगा कि गोपाल कूदकर उसके पास जा पहुँचा। बिसेसरसिंह शायद ऐसी स्थिति के लिए तैयार था। वह भी पैंतरा बदलकर आंगन के दरवाज़े की ओर लपका। गोपाल की जल्दबाज़ी पर जग्गू को झल्लाहट हुई, लेकिन उस समय सोचने का अवसर नहीं था। वह बिसेसरसिंह के पीछे, अपना भाला सम्हालता हुआ लपका। बिसेसरसिंह बहुत तेज़ी के साथ, दरवाज़े से निकलकर, अरहर के खेत की ओर भागा। जग्गू में और उसमें मुश्किल से पच्चीस कदम की दूरी रह गयी होगी कि अरहर का खेत आ गया। उस अँधेरी रात में, घने अरहर के खेत में पीछा करना मुश्किल होता इसलिए, जग्गू ने तौलकर भाला चला दिया। निशाना ठीक बैठा। बिसेसरसिंह के चूतड़ पर भाला लगा और वह चीखकर लड़-खड़ा उठा कि उसी समय जग्गू को लगा जैसे उसके सिर पर वज्र जैसा कोई शिलाखण्ड गिर पड़ा। उसकी आँखें बन्द हो गयीं और चारों ओर अंधकार छा गया।

जग्गू को जब होश आया तब सूर्योदय हो रहा था।

"बिसेसरसिंह को पुलिस पकड़कर थाने ले गयी या अभी वह गाँव में ही है?"—जग्गू ने कराहते हुए क्षीण स्वर में पूछा। शारदा सिरहाने बैठी थी। वह चिन्तित स्वर में बोली—"वह तो भाग गया।"

"ऐं!"—जग्गू चौंककर उठ बैठा। शारदा ने उसे पकड़कर खाट पर लिटा दिया।

"अभी आप चुपचाप लेटे रहिए।"—शारदा ने स्नेह के स्वर में कहा। जग्गू को शारदा का स्वर बड़ा मधुर लगा। उसके मन की ग्लानि धुल गयी।

उसने आँखें बन्द किये ही पूछा—"मुझसे नाराज हो ?"

"नहीं तो !"—शारदा ने निश्छल किन्तु करुणार्द्र स्वर में कहा। जग्गू को शारदा के व्यवहार और स्वर में आकस्मिक परिवर्त्तन की गन्ध मालूम हुई। शारदा निश्छल थी—लेकिन क्रोधी भी, सरल-मधुर थी लेकिन स्वाभिमानिनी भी और उसका रूप क्षण में सुन्दर लगता तो क्षण में रौद्र। वह अपने प्रेम में बहुत ही उच्छृङ्खल, दकियानूस और एकांगी थी। लेकिन उसी दिन जग्गू ने महसूस किया कि शारदा में परिवर्त्तन आ गया है, वह बहुत दुःखी है। जग्गू ने अपनी आँखें खोल दीं और शारदा को देखा। शारदा भी उसे ही देख रही थी। शारदा के मुखमण्डल पर सौम्यता और स्निग्धता बिछल रही थी लेकिन उसकी आँखों में विषाद का समुद्र सिमट आया था। जग्गू ने शारदा को ध्यान से देखा लेकिन कुछ भी अनुमान नहीं लगा सका। उसने शारदा की ओर देखते हुए पूछा—

"दुखी हो ?"

"नहीं तो।"—शारदा ने कृत्रिम मुस्कराहट से कहा।

"क्या बात है शारदा ? मुझसे छिपाओ मत।"

शारदा चुप रही।

"बोलती क्यों नहीं ? किसी ने कुछ कहा है क्या ?"

"किसी के कुछ कहने से अब क्या होता है।"

"क्या भानुप्रताप का पत्र आया है ?"

"पहले तुम अच्छे हो जाओ, फिर सब बातें जान लेना।"

"अरे, मैं बीमार थोड़े हूँ। हलकी-सी चोट है, अपनी जगह है। तुम अपनी बात तो बताओ।" शारदा फिर चुप हो गयी। जग्गू सारी बातें जानने की जिद्द पर अड़ा रहा। अन्ततोगत्वा शारदा को बताना ही पड़ा—

"उन्होंने लिखा है कि मैं देसौरा गाँव छोड़कर कहीं दूसरी जगह जाकर रहूँ—फिर वह आयेंगे। वह तुम्हें पसन्द नहीं करते; और इधर मैं माँ बनने वाली हूँ। लेकिन उनका कहना है कि इसे नष्ट कर दिया जाये।"—अंतिम वाक्य कहते-कहते संकोच और आक्रोश से वह रोने लगी। जग्गू क्षण-भर

सोच भी नहीं पाया कि उसे क्या कहना चाहिए। आदमी इतना नीचे गिर सकता है—इसका उसे अनुमान भी नहीं था। बहुत ही नियन्त्रित स्वर में वह बोला—

"भानुप्रताप पागल हो गये हैं। खैर, मुझे क्या?—जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ जाओ, जो तुम लोगों के मन भावे, वही करो।"

"जब तक मुझे तुम निकाल नहीं दोगे, मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

"मैं क्यों निकालने लगा? लेकिन यदि तुम यहाँ रही तो भानुप्रताप को तुम्हें सताने के लिए और कारण मिल जायेगा।"

"अब और कितना सतायेंगे। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। भला मैं बिना पैसा-कौड़ी के कहाँ जाकर रहूँ? मैं तो कहीं नहीं जाऊँगी।"

"लेकिन शारदा, मैं समझता हूँ कि भानुप्रताप तुमसे अब पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं।"

"तुम क्या चाहते हो?"

"मैं क्या चाहूँगा शारदा? मैं चाहता हूँ कि तुम लोग सुखी रहो। इतने दिनों में ही मुझे तुमसे मोह हो गया है। लेकिन सोचता हूँ यह अच्छा नहीं हुआ।"

"क्यों?"

"समय मेरे खिलाफ जा रहा है। अपने पराये हो रहे हैं, फिर पराये का मोह तो और भी अनुचित है।"

"यह क्यों नहीं कहते कि तुम भी मुझसे पिण्ड छुड़ाना चाहते हो। मुझ अभागिन के लिए तो अब ईश्वर के यहाँ भी जगह नहीं होगी!"

"नहीं शारदा, ऐसा कहकर मेरा दिल मत दुखाओ। मैं तो चाहता हूँ कि···लेकिन जाने दो, मेरे चाहने या न चाहने से क्या होता है।"

कुछ देर तक दोनों चुप रहे। इसी बीच रामपाल आ पहुँचा। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् रामपाल ने शारदा से चाय बनाने को कहा। शारदा चाय बनाने चली गयी।

"बिसेसरसिंह तो बिल्कुल ही लापता हो गया। सुना कि वह अपने

समधी के यहाँ चला गया है—क्योंकि उसके समधी बहुत बड़े नेता हैं।"—रामपाल ने किंचित् क्षुब्ध स्वर में कहा।

"अरे वह किस्मत का बड़ा ही जबरदस्त आदमी है। तभी तो हाथ से निकल भागा।" जग्गू के स्वर में मायूसी थी।

दोनों देर तक बातें करते रहे। गोपाल भी आ पहुँचा था। गाँव के दो-तीन आदमियों ने बिसेसरसिंह को भागते देखा था। लेकिन गवाही देने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ—ऐसा आतंक था बिसेसरसिंह का। अछता-पछताकर तीनों चुप हो गये।

जग्गू को स्वस्थ होते चार-पाँच दिन लग गये। तब तक वह घर पर, शारदा के संरक्षण में पड़ा रहा। शारदा ने उसकी परिचर्या में कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। जग्गू, शारदा के निश्छल स्नेह से आप्लावित हो उठा। जिसने कभी किसी का सहवास नहीं पाया, जो कभी किसी के स्नेह-सम्पर्क में नहीं आया और जिसने कभी किसी का आभार नहीं जाना—उस जग्गू का तन-मन शारदा के अनुग्रह से भर उठा और उधर उस रात बिसे-सरसिंह जो गाँव से गायब हुआ तो लौटकर नहीं आया।

तीसरा पहर बीत रहा था। जग्गू खाट पर बैठा, पास ही खंभे के सहारे खड़ी शारदा से बातें कर रहा था कि भानुप्रताप आ धमका। जग्गू ने उठ-कर नमस्ते की। शारदा संकोच में खड़ी रही। भानुप्रताप के होठों पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट दौड़ गई। जग्गू के अभिवादन का उत्तर दिये बिना ही वह कुली के सिर पर से सामान उतरवाकर, कोठरी के भीतर चला गया। भानुप्रताप के हाव-भाव से ऐसा लगा जैसे उसने जग्गू को देखा ही नहीं। जग्गू को अपनी उपेक्षा पर हँसी आ गयी। जिस आदमी को उसने अपने घर में शरण दी, जिसके चलते वह बदनाम और जाति-बहिष्कृत हुआ, आर्थिक-संकट में पड़ा, उस आदमी के मन में निरर्थक अहंकार देखकर जग्गू आश्चर्य और तरस के अतिरेक से मुस्कराता रहा। शारदा कुछ देर, सिर झुकाये लाज और ग्लानि से खड़ी रही कि भानुप्रताप ने उसे भीतर से पुकारा। जग्गू अकेला रह गया! बिल्कुल अकेला!!

१७

गाँव में काफी सरगर्मी थी। बिसेसरसिंह ने गाँव में आते ही सूचना दी कि राज्य के महान नेता और मन्त्री महादेव बाबू देसौरा स्कूल का उद्घाटन करने के लिए सहमत हो गये हैं। बिजली की रफ्तार से यह बात आसपास के इलाके में फैल गयी। सब लोग मंत्री महोदय के स्वागत की तैयारी में लग गये। चन्दा उगाहा जाने लगा। बिसेसरसिंह ने बड़े उत्साह से पाँच सौ रुपया अपने नाम पर लिखा दिया। अभिनन्दन-पत्र छपाने का भार मुनेश्वर पर डाल दिया गया। सब लोग भूल गये कि जग्गू के घर चोरी हुई थी और बिसेसरसिंह उसी रात को गायब हो गये थे।

लेकिन जग्गू और रामपाल अवाक् थे। बिसेसरसिंह ने अपने आप मंत्री महोदय को आमन्त्रित कर दिया, यद्यपि उन्होंने स्कूल के लिए एक तिनका भी उठाकर इधर से उधर नहीं रखा था। लेकिन अब क्या किया जा सकता था। सब लोग तैयारी में जुट गये। जग्गू बिल्कुल तटस्थ हो गया लेकिन रामपाल तो सरकारी नौकर था। उसे हर काम में योग देना ही पड़ा।

अनुराधा पटना से वापस आ गयी थी। उसने गाँव की शूद्र औरतों को पढ़ाना-लिखाना भी शुरू कर दिया था। एक नयी लहर, एक नयी हलचल गाँव में उठ खड़ी हुई थी। लग रहा था कि जैसे अचानक ही, भूचाल के झटके से गाँववाले जाग उठे हों। सभी चेतन हो रहे थे, सभी वाचाल और कर्मठ बने हुए थे। केवल जग्गू खामोश था। वह फिर से गुमटी पर आकर रहने लगा था। अनुराधा आयी, लेकिन वह मिलने नहीं गया। अनुराधा ने अपना काम-काज भी शुरू कर दिया। लेकिन, जग्गू से उसकी भेंट नहीं हुई। जग्गू ने घर जाना भी बन्द कर दिया क्योंकि जिस दिन भानुप्रताप आया उसी रात को उसने शारदा को पीटना शुरू किया। जग्गू ने रोका तो

भानुप्रताप घृणा और दम्भ के स्वर में बोला—

"मैं अपनी पत्नी को जो चाहूँगा करूँगा, आप बीच में कूदनेवाले कौन होते हैं ? यह औरत मक्कार और पतिता है। लेकिन ऐसी औरतों का इलाज करना मैं अच्छी तरह जानता हूँ !"

जग्गू क्रोध से ऐंठता हुआ उसी समय गुमटी पर चला आया। और तब से वितृष्णा के मारे वह गुमटी में ही पड़ा-पड़ा घुटता रहा। रामपाल आया, मुनिदेव ने पूछताछ की लेकिन, जग्गू सूखी मुस्कराहट के साथ सबों को टाल गया।

ठंड भोथी हो चुकी थी। दिन में कार्य-रत रहने पर पसीना आ जाता और रात में, खुले में खुली देह रहने पर, बहुत ही हलकी सिहरन महसूस होती। जग्गू गुमटी के चौकठ पर बैठा सामने अँधेरे की गहराई में अपलक दृष्टि से देख रहा था। उसके मन में कोई विशेष बात नहीं थी, फिर भी वह कहीं खोया हुआ था कि अचानक ही पदचाप की ध्वनि से वह चौंक उठा। सिर घुमाकर देखा—अनुराधा खड़ी थी।

"तुम ?"

अनुराधा चुप रही। पता नहीं, क्या सोचकर, जग्गू जल्दी से उठ खड़ा हुआ और बोला—

"भीतर चली आओ !"

जग्गू के साथ-साथ अनुराधा भी गुमटी के भीतर चली आयी। जग्गू ने दरवाजे ओठँगा दिये और हथबत्ती की बत्ती उकसाकर अनुराधा के चेहरे को ध्यान से देखा। अनुराधा ने लजाकर अपनी आँखें झुका लीं।

"तुम तो बिल्कुल नहीं बदली !"

"लेकिन आप तो बदल गये !"

"मैं बदल गया ?"

"हाँ, मैं आयी, यहाँ रहते भी इतने दिन बीत गये लेकिन आप नहीं आये।"

"मैं बड़ा अभागा हूँ अनुराधा। जहाँ जाता हूँ वहीं ग्रहण लग जाता

है। इसीलिए, अपनी मनहूसी लिए यहीं पड़ा रहता हूँ।" जग्गू की बात अनुराधा को पूस महीने में बर्फ के पानी के स्पर्श की तरह लगी। उसने सिहर-कर जग्गू की ओर देखा। जग्गू धुँधली रोशनी में, खंडहर हुए मन्दिर की मूर्ति जैसा स्थिर बैठा था। अनुराधा उसके पास सरक आयी। दोनों शान्त रहे। अनुराधा अपलक दृष्टि से जग्गू को देखती रही। दूर पर बछड़े के रँभाने की आवाज गूँज उठी। अनुराधा का कलेजा मुँह को आ रहा था। वह बहुत संयम से बोली—

"क्या आप मुझसे भी अधिक मनहूस हैं? तनिक मेरी ओर देखिए। मैंने क्या-क्या नहीं सहा, क्या-क्या नहीं देखा। फिर भी, आपकी बदौलत आज मैं अपने भाग्य की बात भी भूल गयी। लेकिन, अब मैं सोचती हूँ कि जो कुछ हुआ, बुरा हुआ। असल में जब से आपने मेरी खोज-खबर लेनी शुरू की तब से आपका सुख-सन्तोष जाता रहा।"

"नहीं अनुराधा, ऐसा नहीं है। ऐसी बात तुम्हें बोलनी भी नहीं चाहिए, सुनकर दुःख होता है। तुम नहीं जानती कि तुम्हारे जाने के बाद यहाँ क्या-कुछ हुआ। पश्चात्ताप, ग्लानि और प्रतिशोध की भट्ठी में सुलग-सुलगकर मैं समाप्त हो गया। लेकिन यह सब-कुछ क्यों हुआ? कैसे हुआ?—यही नहीं समझ पा रहा हूँ। सोचता हूँ, मेरी पहली राह ही सही थी। आज मैं भटक गया हूँ और अब मेरे भाग्य में भटकते रहना ही लिखा है।"

"नहीं-नहीं, आपको ऐसी बात बोलने-सोचने का अब कोई अधिकार नहीं है। इतने बड़े संसार में मुझे अकेली छोड़कर अब आप अपनी जान बचाना चाहते हैं। लेकिन याद रखिए, जिधर आप भटकिएगा उधर ही मेरी राह होगी।"

"क्या कहती हो अनुराधा!"

"मैं ठीक कह रही हूँ। मैं विधवा हूँ फिर भी आपने मुझे संसार में धकेल दिया और आप समर्थ होते हुए भी संसार से भाग रहे हैं। मैंने आज तक सबों का अन्याय ही सहा है और आगे भी सहूँगी। लेकिन आपका अन्याय कभी बर्दाश्त नहीं करूँगी क्योंकि आपने ही मुझे जीने पर मजबूर किया है।"

जग्गू आत्म-विस्मृत होकर अनुराधा को देख रहा था। उसकी आँखों में कौतूहल और उत्साह की आभा छिटक रही थी। उसके होंठों पर उल्लास की हलकी रेखा गहरी हो रही थी और अनुराधा निर्विकार भाव से जग्गू को देख रही थी। दोनों एक दूसरे में कुछ ढूंढ रहे थे, दोनों को एक दूसरे में कुछ विचित्रता, नवीनता का आभास मिल रहा था, दोनों एक दूसरे के मन में उठनेवाली लहरों का कलकल निनाद सुन रहे थे, दोनों एक दूसरे की ललक बन रहे थे, और दोनों ही, संस्कार के केंचुल में परिश्लिष्ठ, ऊपरी शिथिलता के घेरे में उद्दाम हो रहे थे। विचित्र स्थिति थी। अजीब संयोग था कि एकाकी जग्गू के जीवन की हर नयी बात, उसी पुरानी गुमटी से शुरू होती थी और उस दिन भी जग्गू का अखंड एकाकीपन उसी गुमटी में शत सहस्र खंडों में विकीर्ण होता जा रहा था......

"हम दोनों अकेले रहने के लिए ही पैदा हुए हैं अनुराधा।" जग्गू खाट से उठकर अनुराधा के पास आता हुआ किंचित काँपती आवाज़ में बोला। अनुराधा ने कोई जवाब नहीं दिया। जग्गू क्षण-भर अनुराधा को देखता रहा, फिर बोला—

"अब तुम जाओ। फिर कभी मत आना। हमारा अकेले रहना भी समाज को खलता है और कहीं किसी ने साथ देख लिया तो एक तूफ़ान उठ खड़ा होगा। जैसे हम लोग रहते आये हैं, वैसे ही रहते चलें।"

"लेकिन, मैं तो रोज़ आऊँगी। आप मुझे धक्के देकर निकाल दीजिएगा, फिर भी आऊँगी।"

"इसमें तुम्हारा ही नुकसान होगा पगली। मेरा क्या? मैं तो जाति-समाज से बहिष्कृत-उपेक्षित आदमी हूँ।"

"और मैं तो धूल बन चुकी हूँ। मेरा अब क्या बिगड़ेगा—धूल का कुछ और बनने-बिगड़ने से तो रहा।" अनुराधा के स्वर में हँसी स्पष्ट थी। जग्गू ने सदा अनुराधा का भला चाहा था। अपने सुख के चलते उसने किसी को दुख नहीं पहुँचाया। फिर अनुराधा को तो वह प्यार करता था। वह जानता था कि अनुराधा अप्राप्य है। वह यह भी जानता था कि अनुराधा के प्रति

उसका प्रेम अनुराधा के लिए नहीं है, मात्र प्रेम के लिए है। जग्गू ने जो कुछ जाना था, समझा था, पढ़ा था और भोगा था उसके आधार पर, उसके मन में एक बात बैठ गयी थी कि त्याग और आत्मदमन से बढ़कर मनुष्य में और कोई गुण नहीं आ सकता। वह बचपन से अनुराधा को प्यार करता आया था, लेकिन बोला कभी नहीं क्योंकि उसका बोलना अनुराधा के लिए काल हो जाता। और अनुराधा का दुःख, अनुराधा का अपमान या उसकी बदनामी वह सह नहीं सकता था। फिर अब तो स्थिति और भी प्रतिकूल थी। विधवा की राह यों भी उँगलियों, भवों और नथुनों के प्रकोप के बीच से गुजरती है; और कहीं जो कोई बात हो गयी तब तो भगवान ही मालिक है।

जग्गू को अपने लिए कोई भय नहीं था। विरोध तो दूर, यदि प्रलय भी आ जाये फिर भी वह सामना करने की हिम्मत रखता था। लेकिन वह कोई ऐसा काम करने की कल्पना भी नहीं कर सकता था जिससे अनुराधा को दुःख या परेशानी होने की आशंका हो। इसलिए उसने कठोर स्वर में कहा—

"यह सब व्यर्थ की बातें मैं कुछ नहीं समझता। अभी तुम यहाँ से चली जाओ।"

अनुराधा ने आश्चर्य से जग्गू के इस आकस्मिक परिवर्त्तन को देखा लेकिन वह कुछ समझ नहीं पायी। जग्गू ने फिर जरा जोर से कहा—

"जाओ!"

अनुराधा सहमकर दो क़दम पीछे हट गयी और फिर मुड़कर धीरे-धीरे गुमटी के बाहर हो गयी। जग्गू की इच्छा हुई कि वह अपना सिर दीवार से टकराकर फोड़ ले। उसे पुक्की फाड़कर रोने की इच्छा हुई। उसकी आँखों में आँसू आ गये। वेदना की तीव्रता से वह ऐंठकर रह गया लेकिन खुलकर रो नहीं सका। गुमटी के द्वार खुले छोड़कर अनुराधा चली गयी थी। जग्गू द्वार तक आया। अनुराधा कुछ देर तक दिखाई देती रही,

लेकिन दूरी, अंधकार और समय ने जग्गू का वह कष्टप्रद सुख भी छीन लिया। जग्गू शून्य दृष्टि से देखता रहा—सामने का अंधकार, दूर गाँव में किसी के दालान में जलती हुई लालटेन की चिथड़ी रोशनी—घूरती हुई सी-फीकी, पीली, वीभत्स ! !

१८

महादेव बाबू आये। मंत्री महोदय के आगमन से गाँव में ज़िन्दगी की लहर दौड़ गयी। बिसेसरसिंह की धूमिल प्रतिष्ठा फिर से चमक उठी। महादेव बाबू ने गाँव के लोगों को बताया कि देश-विदेश में क्या कुछ हो रहा है। स्कूल के निर्माण में सहयोग देने पर उन्होंने गाँववालों की सराहना की, विशेषकर, बिसेसरसिंह की उन्होंने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। उनके भाषण में जग्गू और रामपाल का ज़िक्र तक नहीं आया। गोपाल ने मंत्री महोदय के सामने अभिनन्दन-पत्र पढ़कर सुनाया। बाँध के काम में बिसेसर-सिंह का लड़का सहदेव और गोपाल, दोनों मिलकर काम करते थे। परि-स्थिति कमज़ोर आदमी को अस्थिर बना देती है। साथ-साथ काम करने का सिलसिला और रुपये की चसक ने गोपाल के चरित्र को निर्बल कर दिया। इसलिए मंत्री महोदय के स्वागत की तैयारी में सबों के साथ-साथ गोपाल ने भी जग्गू की उपेक्षा की।

गाँव में जिस समय चारों ओर धूम-धाम मची हुई थी, जग्गू अपनी गुमटी के बाहर अकेला बैठा हुआ अपने भाग्य पर मुस्करा रहा था। शाम हो चुकी थी। सामने स्कूल पर पेट्रोमेक्स जल रहा था। शोर-गुल की आवाज़ गुमटी से टकरा रही थी। उद्घाटन और भाषणों का क्रम समाप्त हो चुका था। मंत्री महोदय और उनके स्वागत-सत्कार में आये हुए इलाके के अन्य नेताओं को चाय पिलायी जा रही थी। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बिसेसरसिंह ने भानुप्रताप पर ही चाय-पानी की व्यवस्था का भार सौंप दिया था। लेकिन जग्गू, जैसे यह सब बिल्कुल नहीं देख रहा था। पता नहीं, वह किस विचार में डूबा हुआ था कि अनुराधा के वहाँ आकर खड़ी होने की उसे आहट तक नहीं मिली।

"किस चिंता में डूबे हुए हैं ?" अनुराधा ने धीमे स्वर में पूछा। जग्गू ने अनुराधा की ओर ऐसे देखा जैसे वह उसी की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन वह बोला कुछ नहीं। क्षण-भर वह फिर सिर झुकाये बैठा रहा और तब आहिस्ता से उठकर गुमटी की ओर जाता हुआ गम्भीर स्वर में बोला–

"तुम फिर आ गयी ! यह नहीं सोचा कि तुम्हारे बार-बार यहाँ आने से लोग क्या सोचेंगे।"

"लोग यही सोचेंगे कि किसी निरक्षर को पढ़ाने आयी होगी।" अनुराधा ने मज़ाक के स्वर में कहा।

"तुम्हें हँसी सूझ रही है लेकिन मुझे ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं।" गुमटी के भीतर पहुँचकर जग्गू खाट पर उदास मन से बैठता हुआ बोला।

अनुराधा ने पूर्ववत् स्वर में कहा—

"आपको कुछ भी अच्छा नहीं लगता तो मैं क्या करूँ ? लेकिन मुझे तो आजकल सब-कुछ अच्छा लगता है।"

"तुम तो बिल्कुल पागल हो गयी हो। पटना से लौटने के बाद तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। गाँव को शहर समझने लगी हो। लेकिन याद रखो कि गाँव में हड्डियाँ सूँघनेवाले आदमी बसते हैं। अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो एक दिन ये लोग तुम्हें नोच-नोचकर खा जायेंगे।"

"वह दिन मेरे जीवन का सबसे शुभ दिन होगा।"

"सोचना और बोलना बहुत आसान है अनुराधा, लेकिन जब वह मुसीबत सिर पर आयेगी तब तुम मेरी बातों को याद करोगी। मैं तुम्हें अपनी समझकर नेक सलाह देता हूँ। तुम मेरे पास मत आया करो। मुझे बहुत दुःख होता है।"

"मैं आपके पास नहीं आऊँगी तो फिर नेक सलाह कैसे पाऊँगी ?"

अनुराधा की बात सुनकर जग्गू क्रोध से भभक उठा—

"मैं तुमसे बात करना भी पसन्द नहीं करता।" यह कहकर खाट से उठकर गुमटी में चक्कर काटने लगा कि अनुराधा किंचित विषाद के स्वर में बोली—"आपको मुझसे इतनी नफ़रत हो गयी है ?"

"हाँ।" जग्गू ने तमककर कहा और फिर चक्कर काटने लगा। अनुराधा चुप रही। जग्गू अचानक ही बौखला उठा—

"सुना था कि औरतों का दिमाग नहीं होता और आज उसका प्रमाण भी मिल गया।"

"औरतों के पास दिमाग़ होता तो आज मर्द ज़िन्दा भी नहीं बचते। औरतें भी लाभ-हानि की बातें सोचतीं, हर चीज़ को ठोक-बजाकर ग्रहण करतीं तो मर्द अपनी कायरता को अहंकार के पर्दे में नहीं छिपा पाते। आपको मुझसे इतना डर लगता है यह मैं नहीं जानती थी।" इतना कहकर वह तेज़ी से गुमटी के बाहर चली गयी। जग्गू किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रह गया। उसकी ज़ुबान तालू से चिपक गयी। उसने अनुराधा को पुकारा लेकिन उसके मुँह से कोई आवाज़ नहीं निकली। उसने हाथ बढ़ाकर रोकने का उपक्रम किया लेकिन वहाँ अंधकार की शून्यता के सिवा और कुछ नहीं था। वह अनायास ही गुमटी के बाहर दौड़ आया और वहाँ का दृश्य देखकर उसे काठ मार गया। सामने रूपनसिंह अनुराधा की कलाई पकड़े खड़ा था और अनुराधा अपनी कलाई छुड़ाने के प्रयास में छटपटा रही थी। रूपनसिंह गाँववालों के नाम ले-लेकर पुकारता जाता था और अनुराधा को भद्दी-भद्दी गाली देता जाता था। स्कूल पर अभी भी पेट्रोमेक्स जल रहा था। लोगों की भीड़ अभी एकत्र ही थी। क्षण-भर जग्गू कुछ भी नहीं निर्णय कर सका कि उसे क्या करना चाहिए कि रूपनसिंह की कड़वी बात ने जग्गू को राह दिखा दी। रूपनसिंह ने अनुराधा की भर्त्सना करते हुए कहा—

"अपने भरतार से मिलने आयी थी!"

जग्गू ने दृढ़ता से आगे बढ़कर अनुराधा को छुड़ा लिया। जग्गू के कठोर पंजों में रूपनसिंह की कलाई कड़कड़ा उठी और वह चीख-चीखकर गाँववालों को पुकारने लगा। अनुराधा बेहोश-सी हो गयी थी। जग्गू उसे सहारा देकर गुमटी की ओर ले चला कि तभी गाँव के बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। ऐसे मौकों पर गाँववाले अपना विवेक खो देते हैं, ऐसा सोचकर जग्गू ने अनुराधा को गुमटी के भीतर कर दिया और बाहर से दरवाज़ा

लगाकर वहीं जयद्रथ की तरह खड़ा हो गया। पल-भर में एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। लोग तरह-तरह की बातें बोलने लगे, गन्दी-से-गन्दी गालियों से अंधकार का कलेजा फटने लगा लेकिन जग्गू चुपचाप दरवाजे के बाहर खड़ा रहा। तभी "क्या बात है? आप लोग क्यों शोर मचा रहे हैं?" प्रश्न पूछते हुए बिसेसरसिंह आ धमके। जब लोगों ने उन्हें सब-कुछ बता दिया तब वह जग्गू की ओर आते हुए बोले—

"क्यों जग्गू भाई, क्या बात हुई? अनुराधा कहाँ है?"

"इन लोगों ने आपको सारी बातें तो बता ही दी हैं। फिर और क्या जानना चाहते हैं?"

"अजाब आदमी हो! अरे तुम भी तो बताओ कि ये लोग जो कुछ कह रहे हैं वह सही है या ग़लत!"

"बिल्कुल सही है।" जग्गू ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। लोगों का शोरगुल दब गया; उत्तेजना की जगह, व्यंग्य और बीभत्स मज़ाक के साथ हँसी फूटने लगी। बिसेसरसिंह थोड़ी देर के लिए, जग्गू के सहज उत्तर पर चौंक उठे। लेकिन फिर सम्हल गये और बोले—

"लेकिन यह तो तुमने अच्छा काम नहीं किया।"

"मैंने क्या किया है यह मैं जानता हूँ। आप लोगों को इससे कोई मतलब नहीं है।"

"मतलब कैसे नहीं है? गाँव में रहकर गाँव की मान-मर्यादा भंग कीजिएगा सो कैसे होगा।"

गोपाल, जो अब तक चुप था, आगे बढ़कर बोल उठा। जग्गू को क्रोध नहीं आया। वह चुपचाप खड़ा रहा। गोपाल के चुप होते ही रूपनसिंह ने गरजकर कहा—

"निकालो उस सतभतरी को गुमटी के बाहर, नहीं तो आज खून हो जायेगा यहाँ। साले ने गाँव को कटरा बना रखा है। पाजी!"

"अरे ढोंगी है ढोंगी! दुनिया को दिखलाने के लिए साधु बनने का स्वांग रचता है और भीतर-भीतर गाँव की बहू-बेटियों पर डोरे डालता

फिरता है।" मुनेश्वर ने व्यंग्य और घृणायुक्त स्वर में कहा। तभी कुलदीप ने ललकारा—

"अरे मुँह क्या देखते हो ? मारो साले को चार डंडे, सारा ढोंग हवा हो जायेगा। लातों के देवता बातों से नहीं मानते।"

कुलदीप की ललकार सुनते ही बहुत से लोग उत्तेजित हो उठे। चारों ओर से 'मारो! मारो!' की आवाज़ें आने लगीं। किसी ने लाइन की बगल से रोड़े उठाकर जग्गू पर चला भी दिये। जग्गू धीरज खो बैठा और आवेश में आकर लपककर गुमटी के भीतर से अपनी लाठी उठा लाया और उसे हवा में नचाता हुआ आक्रोशपूर्ण स्वर में गरजकर बोला—

"मुझे क्या तुम लोगों ने औरत समझ रखा है ? खबरदार जो किसी ने गाली बकी या रोड़े फेंके! मैं सिर तोड़ दूँगा। अरे पापियो! खुद तो दिन-रात चोरी, डाकेजनी और हत्या करते फिरते हो और मुझ पर उँगली उठाते हो ? मैं एक-एक की पोल खोलकर रख दूँगा। जो बड़ा धर्मात्मा और बहादुर बनता हो वह मेरे सामने आये।"

जग्गू की गर्जना सुनकर लोग जरा सहम गये। गोपाल को ताव आ गया—

"वाह! उल्टा चोर कोतवाल को डाटे!"

"तू अपनी बकवास बन्द कर गोपाल! नाजायज ढंग से चार पैसे क्या कमाने लगा, दिमाग ही खराब हो गया।"

"कौन कहता है कि मैंने नाजायज ढंग से पैसे कमाये हैं ?" गोपाल ने जग्गू से चुनौती के स्वर में पूछा। तभी पीछे से आवाज आयी—

"मैं कहता हूँ।" रामपाल अचानक ही वहाँ पहुँचकर बोला। लोग सकपकाकर उसकी ओर देखते रहे। रामपाल ने आगे बढ़कर गोपाल से कहा—"बाँध के लिए मिट्टी काटने में आप लोगों ने जो जालसाज़ी की है, सब मुझे अच्छी तरह मालूम हो गयी है। चिंता न कीजिए, आप लोगों को भी जल्दी ही मालूम हो जायेगा।"

सब लोग इस आकस्मिक घोषणा से स्तम्भित रह गये। गोपाल की

जीभ तालू से सट गयी। खैरियत हुई कि अंधकार में उसके चेहरे पर छायी हुई भयावह मुर्दनी को कोई नहीं देख सका। तभी मुनिदेव वहाँ आ पहुँचा। भीड़-भाड़ का कारण वह नहीं जान सका लेकिन जग्गू को गुमटी के दरवाजे पर लठ्ठ लिए खड़ा हुआ देखकर वह झगड़े की स्थिति समझ गया। वह इधर-उधर देखकर पूछने लगा—

"क्या बात है ? आप लोगों ने भीड़ क्यों लगा रखी है ?"

मुनिदेव के आने से लोगों की जबान खुल गयी। बिसेसरसिंह ने नीति-पूर्वक कहा—

"अरे कोई बात नहीं है। अनुराधा जरा जग्गू भाई से मिलने चली आई थी, उसी पर गाँव के लोग नाराज़ हो गये हैं, क्योंकि बात जरा मर्यादा के विरुद्ध हो गयी है।"

"कहाँ है अनुराधा ?"—मुनिदेव ने पूछा।

"यहीं गुमटी में बैठी है।" बिसेसरसिंह ने कहा। मुनिदेव क्षण-भर कुछ निर्णय नहीं कर सका कि जग्गू बोल उठा—

"इन लोगों ने उस बेचारी को भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं, उसकी बाँह पकड़-कर उसे घसीटा सो कोई बात नहीं हुई लेकिन मैंने उसे इन लोगों के अत्या-चार से बचाकर बहुत बुरा किया !"

"किसने उसे बाँह पकड़कर घसीटा ?"—बिसेसरसिंह ने पूछा।

"रूपनसिंह ने।"—जग्गू ने उपेक्षा के स्वर में कहा।

"तो तुम्हारे विचार में मैं उसकी आरती उतारता !" रूपनसिंह ने आवेश के स्वर में व्यंग्य किया।

"आपको चाहिए था कि उसकी पूजा करते, फूल-अक्षत चढ़ाते, फिर उसके चरणों की धूल मस्तक से लगाते !"—मुनेश्वर ने व्यंग्य किया। कुछ लोग मुनेश्वर की बात पर हँसने लगे। बिसेसरसिंह ने डपटकर कहा—

"क्या बेवकूफों की तरह आप लोग हँस रहे हैं ?"

"आप लोगों का इरादा क्या है ?"—मुनिदेव ने गम्भीर स्वर में पूछा।

कई आवाजें एक साथ सुनायी दीं—"अनुराधा को हमारे हवाले

करो !" "उस भ्रष्टा को बाहर निकालो !"—"उस डायन का झोंटा काटकर उसे गाँव के बाहर निकाल दो।"

"इससे अच्छा तो यह होगा कि आप लोग यहाँ से अपना मुँह काला कर लें।"—जग्गू ने दृढ़ स्वर में कहा। शोरगुल फिर बढ़ने लगा। मुनिदेव को एक उपाय सूझ गया। उसने ऊँची आवाज़ में कहा—

"सुनिए ! अनुराधा कोई नाबालिग नहीं है। वह कुछ सोच-विचार-कर ही यहाँ आयी होगी। इसलिए आप लोगों का इस तरह ज़ोर-जबरदस्ती करना नाजायज़ है। इस तरह अगर आप लोग पागलपन कीजिएगा तो बाद में कानून के जाल में फँस जाइएगा। अभी आप लोग जाइए। कल सुबह होने पर, जो कुछ करना हो, कर लीजिएगा।" मुनिदेव की इस बात पर लोग और बौखला उठे और अनुराधा को बाहर निकाल लाने पर तुल गये। जग्गू अपनी जगह स्थिर खड़ा था। बात बिगड़ती जा रही थी। रामपाल ने चिढ़कर कहा—

"आप सब लोग जेल जाने पर उतारू हैं ! आपको मालूम होना चाहिए कि हर आदमी को स्वतन्त्रता है कि वह जब चाहे, जिससे चाहे मिले। आप लोगों को अनुराधा के आने-जाने पर प्रतिबन्ध लगाने का कोई अधिकार नहीं है।"

"जाइए-जाइए ! बड़े आये कानून छाँटनेवाले।" रूपनसिंह ने मुँह बिचकाकर आक्रोश के स्वर में कहा। मुनिदेव ने बिसेसरसिंह के कान में कुछ कहा, जिस पर सिर हिलाकर सहमति प्रकट करता हुआ बिसेसरसिंह ज़ोर से बोला—

"अच्छा, अब मैं एक उपाय बताता हूँ। आप सब लोग जाइए। गोपाल, मुनेश्वर, कुलदीप, मुनिदेव, रामपाल साहब और मुझ पर अनुराधा को यहाँ से ले जाने का जिम्मा छोड़ जाइए। कल दिन में हम गाँववाले बैठकर इस बात का फैसला कर लेंगे कि अनुराधा और जग्गू को इस जुर्म की क्या सजा मिलनी चाहिए।" बिसेसरसिंह की बात लोगों को पसन्द आ गयी। जग्गू कुछ बोलना ही चाहता था कि मुनिदेव ने उसका हाथ दबाकर उसे रोका

दिया। धीरे-धीरे लोग छँटने लगे। सब लोगों के चले जाने के बाद तय हुआ कि अनुराधा अपने घर चली जाये और रात में कोई दुर्घटना न हो इसलिए गोपाल, कुलदीप और जग्गू अनुराधा के घर, बाहर गुरुजी वाली कोठरी में जाकर सो जायें। सुबह होने पर देखा जायेगा। जग्गू ने मजबूर होकर सब-कुछ स्वीकार कर लिया। लेकिन उसकी भाव-भंगिमा से उसके मन का संकल्प मुखरित हो रहा था। उसके मन में कोई विषाद नहीं था, कोई ग्लानि नहीं थी बल्कि वह उत्साह और आनन्दानुभूति से विभोर हो रहा था; लेकिन उसकी ऊपरी आकृति से गम्भीरता, कठोरता और रौद्र टपक रहा था। वह रात-भर जगा रह गया।

१९

सुबह होते ही गाँव में सरगर्मी छा गयी। सबों की जुबान पर अनुराधा और जग्गू की चर्चा चढ़ी हुई थी। प्रायः सभी लोग एक स्वर से छीः छीः कर रहे थे। घर-घर में, कुएँ पर, रास्ते में, खेत में, बथान पर—सब जगह अनुराधा की विशेष रूप से भर्त्सना हो रही थी। औरतों की जुबान को तो जैसे चलने को पटरी मिल गयी थी। दिन चढ़ते-चढ़ते अनुराधा गाँववालों की आँखों पर चढ़ गयी। रात की घटना के अनुरूप, अनुराधा और जग्गू से सम्बद्ध कई क्षेपक भी सुबह होते-होते तैयार हो गये। 'छीः छीः' 'थू-थू' से गाँव का चप्पा-चप्पा घिना गया।

लेकिन जग्गू अपनी धुन में मस्त था। सुबह होते ही जग्गू गुमटी पर चला आया था। उस दिन बड़े इत्मीनान से उसने स्नान किया, बड़े चाव से भोजन बनाया और खा-पीकर धुले कपड़े पहनकर तैयार बैठ गया। मुनिदेव आया तो जग्गू अपने मन की बात उसके सामने खोल बैठा। मुनिदेव ने जब सुना कि जग्गू भरी पंचायत में अनुराधा से अपनी शादी करने की बात कहने जा रहा है तब वह बहुत ही झल्लाया। उसने जग्गू को डाँटा-डपटा, डराया-धमकाया लेकिन व्यर्थ। जग्गू अपने संकल्प पर सुदृढ़ रहा। रामपाल इस विषय पर मौन रहा।

पंचायत शुरू हुई। उस दिन की पंचायत में गाँव का बच्चा-बच्चा उपस्थित था। गाँव की लगभग सभी औरतें, सभा-स्थल से कुछ दूर, इधर-उधर, पाँच-पाँच छः-छः के गिरोह में नाक तक आँचल सरकाये खड़ी थीं।

सबसे पहले जग्गू का बयान शुरू हुआ। जग्गू ने खुले शब्दों में कह दिया कि वह अनुराधा से शादी करेगा। उसकी बात सुनकर लोग क्षण-भर स्तम्भित रह गये। फुसफुसाहट का स्वर कोलाहल में बदल गया। कुछ लोग तो गाली-

गलौज पर उतर आये। कोई जग्गू को गाली दे रहा था तो कोई अनुराधा को। दूर पर खड़ी बूढ़ी औरतों ने भी चीख-पुकार मचानी शुरू कर दी थी। इस असाधारण बात पर सबके सब क्रोध, ग्लानि और घृणा से भर गये। केवल जग्गू के चेहरे पर आत्म-विश्वास और धीरज की ज्योति जल रही थी। लाख मना करने पर भी जब शोरगुल नहीं दबा तो बिचित्तरसिंह उठे और जोर से बोले—

"आप लोगों ने जग्गू भाई के विचार सुन ही लिये। जग्गू भाई लाख चरित्रवान हों या ईमानदार लेकिन उनकी यह बात मुझे पसन्द नहीं आयी।"

"इनका दिमाग़ ख़राब हो गया है!"—कई आदमी बोल उठे कि बिचित्तरसिंह ने उन लोगों को डपट दिया—

"आप लोग मेरी पूरी बात सुन लीजिए फिर बोलिये—बात यह है कि देसौरा गाँव में ऐसी बात न कभी हुई और न हम होने देंगे। आख़िर धर्म-कर्म भी कोई चीज होती है। हम लोगों को जग्गू भाई से ऐसी उम्मीद नहीं थी। लेकिन इस औरत के चक्कर में पड़कर इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। जिस दिन इन्होंने इस औरत को शहर भेजा उसी दिन हम समझ गये कि अब गाँव से धरम-करम उठ गया; और अब तो अनर्थ ही हो गया। लेकिन इस पाप की जड़ में यह औरत है जो अभी सुपात्र जैसी सिर झुकाये बैठी है। आप लोग जरा इसका विचार भी तो सुन लीजिए!" इतना कहकर बिचित्तरसिंह बैठ गये। फिर शोरगुल उभर आया। कई लोगों ने अनुराधा से डपटकर कहा—"बोलती क्यों नहीं है? मुँह में दही जमा हुआ है? कुल्टा कहीं की!"

अनुराधा उठी। लोगों ने देखा कि उसकी आँखें सूजी हुईं और लाल थीं, उसका चेहरा उतरा हुआ था और उसके बाल अस्त-व्यस्त थे। जग्गू ने छिपी नजरों से उसे मुस्कराकर देखा लेकिन अनुराधा का विषादपूर्ण मुखमंडल देखकर वह आश्चर्य-चकित रह गया। अनुराधा ने धीमे स्वर में कहा—

"मैं इनसे गुमटी पर मिलने ज़रूर गयी थी, और भी कई दिन गयी थी।

इसके लिए आप लोग जो सजा चाहें दें। लेकिन मैं गाँव की मर्यादा को तोड़ना नहीं चाहती। मैं अपनी भूल के लिए प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ। मैं विधवा हूँ और अब मेरी शादी तो चिता की लपटों के साथ ही होगी।"

जग्गू, पर-कटे पक्षी की तरह, धम्म से ज़मीन पर आ गिरा। उसकी समझ में नहीं आया कि अचानक ही क्या से क्या हो गया। उसने घूरकर अनुराधा को देखा लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ कि उसके सामने वही अनुराधा बैठी हुई रो रही थी जिस अनुराधा को वह बचपन से जानता था, जो उससे गुमटी में मिलने आती थी, जो गुरुजी की बेटी थी। जग्गू का आत्म-विश्वास आत्म-ग्लानि में बदल गया, उसका धीरज प्रचंड क्रोध की सीमा को छूने लगा और अनुराधा के प्रति उसका प्रेम घृणा और प्रतिशोध के धुएँ से घुटकर मर गया। वह जल्दी से उठकर वहाँ से भागा और भागता ही चला गया। उसे पता भी नहीं चला कि किधर जा रहा है, क्या समय है और वह स्वयं कौन है ? उसके पैर थक गये, कलेजा फटने लगा, यथार्थ-स्वप्न की कड़ुवाहट से उसकी आँखें जलने लगीं; और तब वह पता नहीं कहाँ, किस गाँव में एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उसे महसूस हुआ कि वह एक दुःखपूर्ण स्वप्न देख रहा था। उसकी आँखों से आँसू की धारा बह चली। वह सिसक-सिसककर रोने लगा। शाम हो चुकी थी। वह किसी अज्ञात गाँव के बाहर आम की गाछी में बैठा रहा। इसी तरह न जाने वह कब तक मायूसी में डूबा रहा कि अचानक परिचित आवाज सुनकर चौंक उठा। सामने मुनिदेव खड़ा था। मुनिदेव को देखकर उसने जल्दी से आँखें पोंछ लीं और वह उठकर चलने को हुआ कि मुनिदेव ने उसकी कलाई पकड़कर कहा—

"मैंने अपनी साइकिल वहाँ पेड़ से लगा रखी है।"

"मुझे अब उस गाँव में नहीं जाना है।" जग्गू ने धीमी किन्तु दृढ़ आवाज में कहा। मुनिदेव हँसता हुआ बोला—

"फिर मैं व्यर्थ ही चला आया।"

"मैं ठीक कह रहा हूँ मुनिदेव। मैं उस गाँव में लौटकर गया तो पागल हो जाऊँगा।"

"अरे प्यारे! तुम होश में कब थे कि अब पागल होने से डरते हो! तुम्हें तो उस गाँव और समाज का शुक्र-गुज़ार होना चाहिए जिसने ठीक समय पर तुम्हें सही रास्ता बता दिया। अब चुपचाप गुमटी पर लौट चलो। जैसे पहले रहते थे, वैसे ही रहते चलो।"

"मैंने तुमसे कह दिया कि मुझे अब लौटकर नहीं जाना है। मैं इस विषय में किसी से बात करना भी नहीं चाहता।"

"तुम्हारे जैसे आदमी को इतनी कायरता शोभा नहीं देती।"

मुनिदेव की बात सुनकर जग्गू ने उसकी ओर कुपित होकर देखा। अँधेरे में, दोनों एक दूसरे की आकृति को देख-समझ नहीं सके, फिर भी मुनिदेव जग्गू का मनोभाव भाँपता हुआ बोला—

"मुँह क्या ताकते हो? मैं बिल्कुल ठीक कह रहा हूँ। इतना बड़ा हंगामा खड़ा करके अनुराधा को बदनामी के भँवर में डाल दिया और अब खुद किनारे हो जाना चाहते हो।"

"उस औरत का नाम मत लो मुनिदेव। उसने मुझे कहीं का नहीं रखा।"

"उसने तुम्हें कहीं का नहीं रखा या तुमने उसे कहीं का नहीं रखा? वे दिन भूल गये जब उसके घर चक्कर लगाया करते थे? पूरा गाँव इस बात को जानता था। गाँव की औरतें उस बेचारी के पास जाकर उसकी भर्त्सना करती थीं। फिर भी अनुराधा गाँव छोड़कर नहीं भागी। लेकिन तुम अपने स्वार्थ के चलते आज भाग रहे हो। यही तुम्हारा प्रेम-भाव है जिसका तुम दम भरते थे! मेरा मुँह मत खुलवाओ, चुपचाप मेरे साथ चले चलो।"

देर तक दोनों मित्र एक दूसरे से उलझते रहे। जग्गू के मन में यह बात घर कर गयी कि वह कायरतावश, अपने स्वार्थ के चलते ही, गाँव से भाग रहा है। निदान, वे दोनों घर की ओर लौट चले। तब तक रात उतर आयी थी। जग्गू विक्षोभ की बेहोशी में, अपने गाँव से छः-सात कोस दूर पहुँच गया

था सो गुमटी पर लौटते-लौटते दस बज गये।

मुनिदेव ने अपने घर से खाना लाकर जग्गू को खिलाया और तोष-भरोस देकर स्टेशन चला गया। जग्गू फिर अकेला रह गया। अकेली रात, एकांत गुमटी और सूनी, नीरस रेल की पटरी अपनी निस्तब्धता से जग्गू के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करती रही और तब जग्गू अपने भूत, वर्तमान और अतीत की अनिश्चितता में डूब गया। लेकिन कोई बात उसकी पकड़ में नहीं आती थी। वह निरा विवेक-शून्य, भाव-शून्य, जीवन-शून्य और दृष्टि-शून्य होकर बैठा रहा। वह हर घटना से अपने को सम्पृक्त महसूस करता और जितनी ही यह अनुभूति उसमें तीव्र होती उतना ही वह, जीवन और जगत् से असम्पृक्त होता जाता। लेकिन ममत्व का स्वाद, और उसके मन में कुछ व्यक्तियों के प्रति जमी हुई निश्चित धारणा, उसकी बेचैनी की आग में घृत का काम करती।

जग्गू गुमटी के चौकठ पर बैठा हुआ अंधकार में देख रहा था। दूर पर गुरुजी के घर के पास कोई गा रहा था—

जेहि बाटे कृष्ण ऽऽऽऽ गइले ऽऽऽऽ..........
दूबियो जनमी गइलै, आहो-आहो की......
सेहो देखी जिअरा मोरा फाटे रे न की ऽऽऽऽ...!

यद्यपि इस गीत के अर्थ और जग्गू के मनोभाव में कोई विशेष साम्य नहीं था फिर भी जग्गू का मन, इस स्वर-लहरी के सहारे, अंधकार में भटकता फिर रहा था। गीत का दर्द, उसके लय और धुन में घुल-मिलकर घनीभूत अंधकार में सिसकता हुआ-सा प्रवाहित हो रहा था और जग्गू की समस्त इन्द्रियाँ, चेतनाहीन होकर, उसी प्रवाह में बही जा रही थीं।

२०

जग्गू पूर्ववत अपनी गुमटी पर रहने लगा। उसने सबों से मिलना-जुलना बन्द कर दिया। कभी-कभार मुनिदेव आता तो उसी से दो-चार बातें कर लेता। गाँव में वह लौटकर कभी नहीं गया।

पंचायत ने अनुराधा को प्रायश्चित करने का आदेश दिया था—साधारण प्रायश्चित नहीं, अति कठोर प्रायश्चित ! अनुराधा को सिर के बाल कटाकर, प्रयाग में, त्रिवेणी पर बालू फाँकना था, दान-दक्षिणा करनी थी और गो-मूत्र पीना था। जग्गू का एक मन हुआ कि वह अनुराधा से जाकर मिले और उसे समझा-बुझाकर अपनी बात स्वीकार करा ले। लेकिन उसने ऐसा किया नहीं। वह गुमटी पर ही जमा रहा। इसी बीच, एक दिन अचानक ही उसे खबर मिली कि भानुप्रताप, शारदा को अकेली छोड़कर, नौ-दो-ग्यारह हो गया। मुनिदेव से उसे मालूम हुआ कि शारदा रो-रोकर जान देने पर उतारू है। फिर भी जग्गू वहाँ नहीं गया। वह पत्थर बना सुनता-सहता रहा। मुनिदेव के मुँह से उसने यह भी सुना कि गाँववाले भानुप्रताप के भाग जाने की बात को उसी के साथ सम्बद्ध कर रहे हैं। लोगों का कहना है कि शारदा पतिता है, वह जग्गू और रामपाल से भी फँसी है। इसीलिए भानुप्रताप ने उसे त्याग दिया। ऐसी कुलटा औरतों को तो जिन्दा जला देना चाहिए······और जग्गू इन तमाम बातों को सुनकर भी अनसुनी कर देता। उसे अब किसी की परवाह नहीं थी। उसके मन में नफरत जनम चुकी थी—तमाम चीजों के प्रति नफरत और अपने आपसे नफरत !!

उस दिन वह, गुमटी में बैठा, रामायण के पन्ने उलट-पुलट रहा था कि रामपाल आ पहुँचा। रामपाल कुछ दिन के लिए बाहर गया हुआ था। उसे अचानक आया देखकर जग्गू नम्रतापूर्वक उठ खड़ा हुआ और हाल-चाल

पूछने लगा—

"कब आये ? अच्छे हैं न ?"

"मैं कल ही आ गया था लेकिन आपसे मिल नहीं सका। आज मैं सदा के लिए आपके गाँव से जा रहा हूँ।"

"इस गाँव से आप जा रहे हैं ? क्यों ?" जग्गू ने आश्चर्य और दुःख से चौंककर पूछा। रामपाल ने मुस्कराते हुए कहा—

"मेरी ईमानदारी का मुझे पुरस्कार मिला है !"

"बड़ी प्रसन्नता की बात है।" जग्गू उत्साहपूर्वक बोला।

"हाँ, बहुत जल्दी मुझे शिक्षा मिल गयी और बहुत बड़ा अनुभव भी मिल गया। यह क्या कम प्रसन्नता की बात है ?" रामपाल ने अपने सहज भाव से उत्तर दे दिया, लेकिन उसके स्वर में वेदना स्पष्ट थी।

"मैं समझा नहीं ?" जग्गू ने परेशानी के स्वर में पूछा।

"इसे न समझो यही अच्छा है, जग्गू भाई। आज मुझे यदि दुःख है तो बस इसी बात का कि मैं सारी बातें क्यों समझ रहा हूँ ? लेकिन खैर, इस दुःख में प्रायश्चित का भाव नहीं है। मैंने आज तक ऐसा कोई काम नहीं किया जिसके लिए मुझे ग्लानि हो। तुमसे भी यही कहने आया हूँ जग्गू भाई कि जैसे हो, वैसे ही बने रहो—परिस्थिति तुम्हारे प्रतिकूल है लेकिन तुम झुको नहीं। अच्छी राह कभी सुखद नहीं होती। नया काम भयंकर विरोध झेलने के बाद ही शुरू किया जा सकता है।"

"यह सब आप क्या बोल रहे हैं ?"

"तुम्हारे मन की बात बोल रहा हूँ जग्गू भाई। तुम पढ़े-लिखे पंडित नहीं हो लेकिन तुम आदमियों में देवता हो। अपना देवत्व कायम रखना। बस यही कहकर जाता हूँ। मुझे जाना पड़ रहा है क्योंकि मैं सरकारी नौकर हूँ, मजबूर हूँ। किसी के प्रभाव में आकर, मेरे बड़े अफसर ने मुझे तुरन्त ही यह इलाका छोड़ देने का आदेश दिया है। मैं तुमसे वचन लेकर जाना चाहता हूँ कि तुम अनुराधा को कभी अकेली नहीं छोड़ोगे, शारदा को पथ-भ्रष्ट नहीं होने दोगे और तुम परिस्थिति के आगे झुकोगे नहीं। बोलो, वचन

देते हो ?"

'वचन'—यह शब्द सुनते ही जग्गू तिलमिला उठा, काँप उठा। एक दिन उसने बिसेसरसिंह को वचन दिया था और उसका भयंकर परिणाम अब तक भोग रहा था। 'न जाने क्या होनेवाला है'—यह सोचकर वह सिहर उठता। जग्गू ने बहुत-कुछ देख-सुन लिया था, अब अधिक सहने की शक्ति उसमें शेष नहीं थी। उसने 'न' करने के लिए मुँह खोला कि उसकी आँखें रामपाल की आँखों से मिल गयीं। रामपाल की आँखों में असीम विश्वास और आभा चमक रही थी, उसके होठों पर निश्छल स्नेह की मुस्कराहट काँप रही थी और उसके मुखमंडल पर जीवन के प्रति अखंड आस्था भासमान हो रही थी। जग्गू के मुँह से अनायास ही शब्द फूट पड़े—

"आप मुझ पर विश्वास रखिए, रामपाल साहब। बहुत से अफसरों को देखा लेकिन आप सचमुच ही ऐसे अफसर हैं जिनकी आज्ञा आशिष-जैसी मालूम देती है।"

"तो जग्गू भाई मुझे आशिष दो कि मैं लाख विरोध के बावजूद ऐसा ही अफसर बना रहूँ। शारदा को बहुत जोर का दर्द हो रहा है। मेरी गाड़ी के आने में अब देर नहीं है, इसलिए अब चलता हूँ। तुम शारदा के पास जाओ; और यह लो।"—रामपाल जेब से नोटों का एक पतला-सा बण्डल निकालकर जग्गू को देता हुआ बोला—"शारदा की सेवा-सुश्रूषा में आवश्यकता पड़ेगी। उसे शायद प्रसव-पीड़ा हो रही है। लो, रखो इसे !"

"लेकिन......"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। तुम चुपचाप जल्दी से शारदा के पास जाओ। मैं भी अब चलता हूँ।"

"चलिए स्टेशन तक छोड़ आऊँ !"

"स्टेशन जाने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। काम होना चाहिए—प्रदर्शन नहीं। और मैं जीने जा रहा हूँ—जलने या दफन होने नहीं कि साथ में पहुँचाने के लिए आदमी की जरूरत होगी।" रामपाल ने हँसते हुए कहा लेकिन उसकी आँखें भर आयीं। वह जल्दी से मुड़कर स्टेशन की ओर चल

पड़ा। जग्गू उसे हाथ जोड़े देखता रहा। क्षण-भर के लिए सुध-बुध खोकर रामपाल को जाते हुए निहारता रहा। लेकिन उसका मन, उसकी आँखों से बहुत दूर, उसकी अपनी गहरायी में ही ऊब-डूब रहा था जिससे उसकी आँखों के किनारे छलक आये थे। उसके कान में रामपाल के शब्द गूँज रहे थे कि उसे शारदा का ध्यान आया और वह घर की ओर भागा।

तीसरा पहर बीत रहा था। लेकिन गर्मी का सूरज अभी भी कनपट्टी पर चमक रहा था। खेतों में एक हल पड़ चुका था। सूखी मिट्टी का सोंधापन गरम हवा के थपेड़ों से मर चुका था और हरियाली के नाम पर कहीं-कहीं अरहर के धूल-अँटे पौधे मन मारे खामोश खड़े थे।

जग्गू पसीना पोंछता हुआ घर में घुसा ही था कि उसे शारदा के कराहने की आवाज़ सुनायी दी। वह बाहर ही थम गया। आँगन सूना पड़ा था। भीतर की कोठरी से कराहने की आवाज़ ज़ोर पकड़ती जा रही थी। ब्रह्मदेव का कहीं पता नहीं था। जग्गू ब्रह्मदेव की तलाश में एक बार फिर बाहर आया लेकिन वहाँ गरम हवा बहने लगी थी। वह फिर आँगन में आया। वहाँ शारदा के कराहने की आवाज़ सुनकर वह छटपटाने लगता तो फिर बाहर चला आता; और इस तरह वह कई बार बाहर-भीतर करता रहा कि अचानक शारदा बहुत ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगी। जग्गू से रहा नहीं गया। वह भीतर जाने ही लगा था कि अचानक उसके पैर रुक गये---सामने अनुराधा, कोठरी से बाहर निकलती हुई जग्गू को देखकर ठिठक गयी थी। लेकिन पल-भर बाद ही अनुराधा की चेतना जैसे लौट आयी और वह बिल्कुल सहज स्वर में बोली---

"ज़रा कल्लू चमार की घरवाली को बुला लाइए। जल्दी लौटिएगा क्योंकि समय निकट आता जा रहा है।"

जग्गू बिना कोई शब्द बोले कल्लू चमार के घर की ओर लपक चला। मुद्दत बाद उसने अनुराधा को देखा था। वह सूखकर काँटा हो गयी थी। उसका चेहरा पीला पड़ गया था और उसकी आँखें बड़ी हो आयी थीं। लेकिन जब वह ठिठककर खड़ी हो गयी थी तब क्षण-भर के लिए उसका

सहज सौन्दर्य जैसे सजीव हो उठा था—ऐसा जग्गू को लगा।

कल्लू चमार की पत्नी जब वहाँ पहुँची उस समय शारदा की प्रसव-पीड़ा दब चुकी थी। जग्गू बेचैनी में घर के भीतर-बाहर होता रहा। कभी-कभी उसे भानुप्रताप पर क्रोध हो आता—पता नहीं क्यों! रात हो आयी। शारदा का दर्द फिर उभर आया। जग्गू किससे क्या पूछे? क्या करे?—यही उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक ही अनुराधा उसके सामने आकर खड़ी हो गयी।

दोनों एक दूसरे को पल-भर देखते रह गये। दस बजे की गाड़ी गुमटी पर से हड़हड़ाती हुई गुजर गयी जिसकी धमक से सारा घर हिल उठा। जग्गू चौंककर होश में आ गया; और फिर वहीं पर चहलकदमी करने लगा। अनुराधा चुपचाप खड़ी रही। बाहर गाँव में कुत्ते लग रहे थे। शारदा की हृदय-विदारक चीख और उसकी भयावह कराह सारे वातावरण पर दुःख और निर्वेद का ताना-बाना बुन रही थी। वेदना और वैराग्य गहरा होता जा रहा था।

"आप मुझसे बहुत नाराज हैं?"

जग्गू चहलकदमी करता रहा। अनुराधा क्षण-भर बाद फिर बोली—

"कम-से-कम मेरा कसूर तो बता दीजिए।"

"जो काम आप करने आयी हैं, पहले उसे तो पूरा कीजिए।" जग्गू ने बेरुखी से कहा।

अनुराधा ने कहा—"वही तो कर रही हूँ।"

"फिर मुझसे कुछ पूछने की जरूरत नहीं है," जग्गू ने भर्त्सना के स्वर में कहा—"जाइए, शारदा के पास जाइए।"

अनुराधा चुपचाप खड़ी रही। जग्गू चहलकदमी करता रहा। रात बीतती रही। शारदा को होनेवाला 'झूठा दर्द' कभी दब जाता तो कभी उभर आता। बीच में दो-तीन बार अनुराधा शारदा के पास गयी और फिर वापस आ गयी लेकिन चुपचाप एक ओर दीवार से लगकर खड़ी रही। उस समय जग्गू के घर में धीरज की परीक्षा हो रही थी। तभी चमइन भागी

हुई आयी और अनुराधा को बुला ले गयी। जग्गू भौंचक्का-सा देखता रह गया। उसे लगा कि शारदा कोठरी में पछार खाती फिर रही है। देर तक शारदा चीखती-चिल्लाती रही। रात के साथ-साथ जग्गू की बेचैनी और वेदना गहरी होती रही। वह पसीने से लथपथ चक्कर काटता रहा। उसके दिमाग में तमाम बातें चक्कर काटती रहीं—गाँव की बातें, अनुराधा की बातें, शारदा और भानुप्रताप की बातें, बिसेसरसिंह की बातें और इन तमाम बातों के बीच से एक बहुत ही वितृष्णायुक्त प्रश्न कढ़कर जग्गू को झकझोर देता—'इतने कष्ट के पश्चात् उत्पन्न नादान मनुष्य आगे चलकर कितनी आपाधापी मचाता है, कितना कृतघ्न और अहंकारी हो जाता है ?'

अनुराधा ने आकर कहा—

"लड़का हुआ है।"

जग्गू के मन में हर्ष या विषाद कुछ नहीं हुआ। उसने अनुराधा को देखा। अनुराधा ने आँखें झुका लीं। दोनों के मन का तूफान खामोशी के वातावरण को असह्य बना रहा था। जग्गू ने सहज गम्भीरता से पूछा—

"अनुराधा, यदि मैं गाँव छोड़कर चला जाता तो तुम्हें दुःख भी होता ?"

"मैं अपना शरीर छोड़ देती ?"

"क्यों ?"

"यही तो मैं नहीं जानती।"

"फिर उस दिन तुमने भरी पंचायत में मुझे बेपानी क्यों कर दिया ?"

"अपने नेह और आपके सुख को जिन्दा रखने के लिए।"

"तुम पटना जाकर बोलना बहुत सीख गयी हो।"

"नहीं, मैं तो चुपचाप रहना सीख गयी हूँ। बोल तो आपको देखकर निकलता है। लेकिन आप समझें तब तो।"

"अब क्या होगा, अनुराधा ?"

"होगा क्या ? जैसा चलता है, चलने दीजिए।"

"नहीं ! ऐसे में तो मैं मर ही जाऊँगा। चलो, हम लोग भाग चलें।"

"छिः ! ऐसा भी कोई सोचता है ? हम लोग क्या चोर हैं जो यहाँ से भाग जायें ? ऐसा करने से तो हमारा प्रेम ही कलंकित हो जायेगा, और अब तो शारदा की जिम्मेदारी भी आप पर ही है।"

"मैं नहीं जानता शारदा को। उसने गलती की है तो फल कौन भोगेगा ?"

"यदि शारदा की जगह मैं होती तो ?"

"कैसी बातें करती हो ?"

"ठीक कह रही हूँ। दुःख झेलते-झेलते मुझे स्वयं दुःख से ही मोह हो गया है। दुखियों को देखकर मुझे अपना ध्यान आ जाता है। अब तो जग्गू बाबू, हम लोगों को यहीं जीना है या यहीं मरना है।"

"तो तुम मेरी कोई भी बात मानने को तैयार नहीं हो ?"

"और सब बात मानूँगी लेकिन भाग चलने की बात मैं सोच भी नहीं सकती।"

"सब बात मानोगी—ऐसा वचन देती हो ?"

"हाँ।"

"तो मुझसे शादी कर लो। मेरे साथ रहो।"

"शादी की रस्म तो सामाजिक स्वीकृति को प्रकट करने के लिए होती है और समाज हम लोगों के इस सम्बन्ध को स्वीकृति देने से रहा। हाँ, मैं साथ रहने को तैयार हूँ।"

जग्गू ने अनुराधा को देखा और उसके निकट चला आया। उसने पहली बार अनुराधा को रागात्मक भाव से स्पर्श किया—उसकी ठुड्डी उठाकर उसे ध्यान से देखा और वह तन्मय स्वर में बोला—

"तुम कैसी हो गयी हो ?

"तुम्हारे योग्य !" अवरुद्ध कंठ से अनुराधा बोली। सवेरा हो चुका था। तभी कल्लू चमार की घरवाली वहाँ आ धमकी और दोनों को उस स्थिति में देखकर किञ्चित् सकपका गयी, फिर सम्हलती हुई बोली—

"लड़का बचेगा नहीं।"

"क्यों ?" अनुराधा और जग्गू साथ-साथ बोल उठे।

"लड़का सतमासा है। न वह आँखें खोलता है और न रोता है।" चमइन रूखे स्वर में उपेक्षा के भाव से बोली—"अच्छा, मैं ज़रा अपने घर जा रही हूँ। थोड़ी देर में आती हूँ।"

चमइन के जाने के बाद अनुराधा शारदा के पास पहुँची। जग्गू भी प्रसूति-गृह के दरवाज़े तक गया। वहीं से उसने झाँककर देखा—शारदा सो रही थी—निष्प्राण। कोठरी में काफ़ी अंधेरा था, इसलिए वह शारदा का चेहरा स्पष्ट नहीं देख सका।

चमइन की बात सच निकली। दस बजते-बजते नवजात शिशु चल बसा। अनुराधा ने शारदा को सही बात का पता भी नहीं लगने दिया। उससे कह दिया गया कि बच्चा जनमते ही मर गया था; और जग्गू उस नवजात मृत शिशु को गोद में लेकर गंडक-किनारे मिट्टी के नीचे सुला आया। जन्म, जीवन और मृत्यु के इस भयंकर अनुभव का आकस्मिक बोझ जग्गू झेल नहीं पाया। वह देर तक गंडक के किनारे चुपचाप बैठा नदी का प्रवाह देखता रहा और उसकी आँखों से अविरल अश्रुधार प्रवाहित होती रही।

२१

जग्गू नदी-किनारे से सीधा घर पहुँचा। वहाँ गाँव की पाँच-छः बूढ़ी और प्रौढ़ स्त्रियों को देखकर जग्गू का माथा ठनका। जग्गू को देखते ही सभी औरतें घुस-फुस करने लगीं लेकिन जग्गू से किसी ने कुछ नहीं कहा। जग्गू चुपचाप उस कोठरी की ओर बढ़ा जिसमें शारदा रहती थी। कोठरी के भीतर दरवाजे के पास ही जग्गू अचानक रुक गया। वहीं अनुराधा अपने दोनों घुटनों में सिर छुपाये बैठी थी। पास में रूपनसिंह की स्त्री खड़ी-खड़ी अनुराधा को फटकार रही थी। जग्गू को देखते ही वह स्त्री चुपचाप एक ओर हटकर खड़ी हो गयी। जग्गू ने अनुराधा को देखा—वह सिसक-सिसककर रो रही थी। उधर शारदा भी रोये जा रही थी। जग्गू ने समझा कि यह रोना-धोना और जमघट शारदा के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए है। फिर भी उसने किंचित चिंता और दुःख के स्वर में पूछा—

"क्या बात है ?"

जग्गू का स्वर सुनते ही अनुराधा ने सिर उठाकर देखा। उसका आँसुओं से भीगा चेहरा और आँखें देखकर जग्गू किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। जग्गू को देखते ही अनुराधा फफक-फफककर रो उठी।

"अरे ! यह तो रोये ही जा रही है !"—जग्गू ने अपनी परेशानी छिपाने के लिए कृत्रिम हँसी में हँसते हुए कहा—"कुछ बोलोगी भी या रोती ही जाओगी ?"

"यह नाटक करती है नाटक ! कलमुँही, माँ-बाप-भतार को खाकर भी भूख से छिछियाती फिरती है। आग लगे ऐसी जवानी में !"—दरवाजे के बाहर खड़ी रूपन-बहू ने अपने हाथ झमकाकर घृणा के स्वर में कहा। स्थिति समझते ही जग्गू उस औरत पर चीख उठा—"चुप रहोगी या नहीं ?

कौन बुलाने गया था तुम लोगों को ? चली जाओ सबकी सब नहीं तो ठीक नहीं होगा !"

औरतों की घुस-फुस बन्द हो गयी। जग्गू की आकृति और उसकी गर्जना सुनकर सभी औरतें सहम गयीं लेकिन गाँव की ईर्ष्यालु औरतों से ही शायद प्राचीन नाटकों में स्वगत भाषण की परम्परा आयी है। वे औरतें जोर-जोर से अपने-आप भद्दी-भद्दी गालियाँ बकती हुई बाहर निकल गयीं।

कुछ देर के लिए घर में सन्नाटा छा गया। अनुराधा अभी तक सिर झुकाये बैठी थी। जग्गू का क्रोध पूरी तरह प्रकट नहीं हुआ था। ऐसे मौकों पर सरल व्यक्ति का क्रोध स्वजन पर तीव्रता से प्रकट होता है। जग्गू ने अनुराधा से आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा—

"इसीलिए कहता था कि यहाँ से चली चलो। यह गाँव अब रहने योग्य नहीं है। लेकिन तुम सुनो तब तो। तुम्हें तो मेरी बेइज्जती ही भाती है। यह तीसरा मौका है कि तुम्हारे चलते मुझे बेआबरू होना पड़ा है।"

अनुराधा ने कातर दृष्टि से जग्गू को देखा। जग्गू उस दृष्टि को देखकर मन-ही-मन पसीज उठा। उसे अपने अंतिम वाक्य पर आप ग्लानि हुई लेकिन ऊपर से वह ज्यों-का-त्यों कठोर बना हुआ बोला—

"मुँह क्या ताक रही हो ? अभी भी इस गाँव को छोड़ने के लिए तैयार हो या नहीं ?"

"जैसी आपकी इच्छा।"

"तो ठीक है, शारदा के स्वस्थ होते ही हम लोग यहाँ से चल देंगे। यह गाँव अब गाँव नहीं रहा, उचक्कों और गिद्धों का अड्डा बन गया है।"

अनुराधा की स्वीकृति से जग्गू को राहत मिली। लेकिन उसके मन के भीतर कहीं कुछ खलबली मच उठी, अज्ञात वेदना के बादल से उसका भविष्य आच्छादित हो उठा और न जाने क्यों आगत, अदृश्य घटनाओं के धुँधले संकेतों से वह आशंकाओं से भर गया। लेकिन ऊपर-ऊपर से सुदृढ़ और क्रुद्ध आकृति लिए घर के बाहर निकल आया। अनायास ही उसके पैर गुमटी की ओर बढ़ गये।

तीसरा पहर बीत चुका था। हवा का नामोनिशान भी नहीं था। मन को उबा देनेवाली ऊमस से मौसम बेजान हो रहा था। जग्गू अनमने भाव से भावों के तूफान में बहा चला जा रहा था कि गोपाल की आवाज़ सुन चौंक उठा—

"क्यों जग्गू चाचा, आप भी मेरी कमाई नहीं देख सके ?"

"क्या मतलब ?"—जग्गू चौंककर रुकता हुआ बोला—"तुम्हारी कमाई से मुझे क्या लेना-देना है ?"

"यही तो आश्चर्य की बात है।" गोपाल अपने दोनों हाथ अपने वक्ष-स्थल पर बाँधता हुआ चुनौती की मुद्रा में बोला। जग्गू व्यंग्य से हँसता हुआ बोला—

"तुम्हें आजकल कोई जवान पहलवान लड़ने को नहीं मिलता क्या जो मुझसे रगड़ लेने आये ?"

"आपसे ज़्यादा जवानी इस गाँव में और किसमें मिलेगी ?"

"बकवास बन्द करो, गोपाल !"

"अरे रे रे···आप तो नाराज हुए जा रहे हैं। मैं तो आपकी तारीफ़ कर रहा था। खैर, छोड़िये इन बातों को। आपने अपने बूते-भर तो कोशिश कर ही ली कि मुझ पर माटी-कटाई का गलत माप देने के जुर्म में मुकदमा चल जाये। लेकिन गोपाल उतना बुद्धू नहीं है जितना आपने समझ लिया था। उल्टे आपके रामपाल साहब ही यहाँ से दफ़ा हो गये। अब यह बताइए कि मिठाई कब खिला रहे हैं ?" गोपाल की बातें सुनकर और उसके ढंग पर जग्गू क्रोध से तिलमिला उठा। उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहे और क्या करे ! एक अदना-सा लौंडा उसे अपमानित करता जा रहा था और वह बेबस जैसा टुकुर-टुकुर मुँह देख रहा था। उसकी सहनशीलता को गोपाल कायरता और दुर्बलता समझकर बोलता रहा—

"आपके घर में तो, सुना, रोज़ जल्सा होता रहता है। लेकिन ऐसे मौकों पर आप अपने भतीजे को ही भूल जाते हैं !"

"यह सब क्या बक रहे हो गोपाल ? तुम्हें हो क्या गया है ?"

"उसे क्या होगा ? तुम्हारे सिर पर काल नाच रहा है जो गाँव की नाक कटाने पर तुले हो।"—रूपनसिंह ने आते ही तीर छोड़ा।

"गाँव की नाक कटने से पहले इनकी नाक काट ली जायेगी।" गोपाल ने रूपनसिंह की बात पर अपनी बात जड़ दी। जग्गू को वस्तुस्थिति समझते देर नहीं लगी। लेकिन वह अपनी मान्यता, अपने विचार और अपनी प्रेम-भावना का इतना कायल था कि उन लोगों की बातें उसे अनर्गल, अनैतिक और अपमानजनक लगीं। प्रेम की तीव्रता मनुष्य को जागरूक बना देती है। जग्गू क्रोध और प्रतिकार से अभिभूत होता हुआ भी परिस्थिति के प्रति चेतन बना रहा। उसने सहज स्वर में कहा—

"यदि तुम्हें अपनी नाक की इतनी चिंता है तो कौओं से सावधान रहो।"

"मैं तो कौओं के पंख ही काट देनेवाला हूँ।"—गोपाल ने दम्भ से भरकर कहा।

"इतना अहंकार तुम्हें शोभा नहीं देता गोपाल ! लेकिन तुम भी क्या करोगे ! समय, संगति और रुपया आदमी को पागल बना ही देता है। इसलिए मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम्हें जो मन में आए, करो।" यह कहकर जग्गू गुमटी की ओर जाने लगा कि गोपाल उसके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—

"जान छुड़ाकर आप भागना चाहते हैं सो भागने नहीं दूँगा। अब तक मैं आपका लिहाज करता आया लेकिन आपने हम लोगों की अच्छाई का नाजायज फायदा उठाया। गाँववाले आपको ठीक ही गुप्त गुंडा कहते हैं।"

"तो तुम भी कहो। कौन किसे रोकने जाता है।"—जग्गू ने विषादपूर्ण हँसी हँसकर कहा। जग्गू के धीरज ने गोपाल के दम्भ को और अधिक उभार दिया। वह अकड़कर बोला—

"लेकिन मैं कहने-सुनने में विश्वास नहीं करता। मैं तो जय या क्षय में विश्वास करता हूँ। आप अपनी गुंडागर्दी बन्द कीजिए।"

"मैं क्या गुंडागर्दी करता हूँ ! मेरी बातें किसी से छिपी नहीं हैं। मैं किसी के यहाँ डाका डालने नहीं जाता, बेईमानी नहीं करता, किसी को सताता नहीं—क्या ये सब बातें नहीं करना गुंडागर्दी है ? तुम होनहार

नौजवान हो, पढ़े-लिखे हो और साफ आदमी हो इसीलिए मैं तुमसे दो बातें भी कर रहा हूँ। जानता हूँ कि बिसेसरसिंह जैसे लोगों ने तुम्हें पथ-भ्रष्ट कर दिया है। लेकिन तुम्हें अपना विवेक नहीं खोना चाहिए।"

"अपना उपदेश अपने पास ही रखिए।"—गोपाल चिढ़कर बोला।

"अच्छी बात है।"—जग्गू फिर जाने को तैयार हुआ कि गोपाल ने तमककर कहा—

"आपने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया।"

"किस सवाल का ?"

"अरे बनो मत जग्गू ! गाँव को कटरा बना रखा है और ऊपर से पूछते हो किस सवाल का ?"—रूपनसिंह ने व्यंग्य से कर्कश स्वर में मुँह टेढ़ा कर कहा। तभी गोपाल भी उसकी हाँ-में-हाँ मिलाता हुआ बोला—

"आप अनुराधा और शारदा से अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लीजिए।"

"यह असंभव है। अनुराधा मेरी पत्नी है और शारदा मेरी बहन। यह बात मैं किसी के सामने भी कह सकता हूँ। साँच को आँच क्या ?"

"यह सब अनाचार इस गाँव में नहीं चलेगा।"—गोपाल ने कहा। जग्गू का धीरज जाता रहा। वह फुत्कार कर उठा—

"तो गाँववालों से कह दो कि मैं उनका दिया नहीं खाता। और तुम जो अपनी पहलवानी के घमंड में चूर होकर मेरा रास्ता रोकने आये हो सो क्या मुझे दूध-पीता बच्चा समझ लिया है ? तुम्हारे जैसे दो-चार लौंडे अभी भी मेरी भुजा में लटक जायें—फिर भी कुछ बनने-बिगड़ने को नहीं है।" यह कहकर जग्गू अचानक ही बायें हाथ से गोपाल को एक ओर धकेलकर गुमटी की ओर बढ़ गया। गोपाल ने ऐसी स्थिति की कल्पना भी नहीं की थी सो जग्गू के हाथ का झटका लगते ही वह लड़खड़ाकर दूर पुल पर जा गिरा। उसके सिर से रक्त की धारा फूट पड़ी। रूपनसिंह घबराकर चीखने-चिल्लाने लगे। लेकिन गोपाल शर्म के मारे अपना प्रतिकार लेना भूल गया। 'गाँववाले जब सुनेंगे कि जग्गू ने गोपाल को एक ही झटके में चित्त कर दिया तब वह कौन-सा मुँह दिखायेगा'—यह सोचकर गोपाल ने रूपनसिंह

को शोरगुल करने से मना कर दिया और थोड़ी देर तक वह वहीं पुल पर बैठकर साँस लेने लगा।

जग्गू गुमटी पर न जाकर, स्टेशन पर मुनिदेव की दुकान पर पहुँचा। मुनिदेव जैसे उसी की प्रतीक्षा कर रहा था, देखते ही बोल उठा—

"आओ यार, तुमने तो पूरे गाँव में धूम मचा रखी है। कहाँ तो ज़िन्दगी-भर ऐसे अलग-अलग रहे कि लोग महीनों-वर्षों तक तुम्हारा नाम भी भूले रहते थे और अब तुमने ऐसा पल्टा लिया है कि गाँव के बच्चों तक की ज़ुबान पर तुम्हारा ही नाम टँका होता है। आओ, बैठो।"

"इसी को दुर्गति कहते हैं मुनिदेव! पहले मैं हैरानी से हर चीज़ को देखता था और अब निश्चितता से देखता हूँ।"—जग्गू ने किंचित् व्यंग्यात्मक मुस्कराहट के साथ कहा। शायद अपने झूठ पर ही वह मुस्करा रहा था। मुनिदेव इन बुझौवलों से हमेशा दूर ही रहना चाहता। उसने चट पूछ लिया—

"सुना, रात अनुराधा तुम्हारे यहाँ आई थी?"

"क्यों, यह नहीं सुना कि शारदा का शिशु जनमते ही मर गया?"

"नहीं, ऐसा तो नहीं सुना। हाँ, लोग यह जरूर कह रहे थे कि शारदा ने अपना गर्भ नष्ट करा दिया।" यह सुनते ही जग्गू के दाँत कटकटा उठे। दबे क्रोध के अतिरेक से उसकी आँखें छोटी हो आयीं। मुनिदेव ने वातावरण की गम्भीरता को टालने के विचार से कहा—

"मारो गोली इन गाँववालों को! ये साले ऐसे ही बक-बक करते रहते हैं। वह देखो, बिसेसरसिंह आ रहा है।" दोनों मित्र इधर-उधर की बातें करने लगे। बिसेसरसिंह ने आते ही मधुर स्वर में पूछा—

"आजकल कहाँ रहते हो जग्गू भाई कि तुम्हें देखने को मैं तरस जाता हूँ।" ठीक उसी समय राघव भी कहीं से आ धमका और छूटते ही बोल उठा—

"बात यह है बिसेसर बाबू कि आप अपनी धुन में लगे रहते हैं और हमारे जग्गू भाई अपनी धुन में। दोनों में से किस को फ़ुर्सत है कि एक-दूसरे की खोज-खबर ले। यह सब काम तो हम जैसे लोगों के कंधे पर है।"

"ठीक कहते हो राघव। तुम ठहरे आजाद आदमी और हम लोग ठहरे गृहस्थ। बीस तरह के झंझट हमारे सामने खड़े रहते हैं।" बिसेसरसिंह सहज स्वर में बोले लेकिन उनकी आकृति और मुद्रा की अत्यधिक गम्भीरता, उनके मन में छिपी घृणा का संकेत दे रही थी।

"जी हाँ, आपको बीस तरह के काम तो होते ही हैं—एक-से-एक मुश्किल और एक-से-एक महान काम!" जग्गू ने व्यंग्य से कहा। मुनिदेव अपनी आदत के अनुसार झल्ला उठा—

"फिर तुमने बकवास शुरू कर दी?"

"अरे बोलने दो भाई। इसे भी अपनी भड़ास निकाल लेने दो। मेरा क्या बिगड़ता है।" बिसेसरसिंह ने हँसते हुए कहा। जग्गू सोच रहा था कि जहाँ वह जाता है, कोई-न-कोई झंझट उठ खड़ा होता है। राघव ने मुनिदेव को निमित्त मात्र बनाकर कहा—

"तुम बहुत ही ओछे आदमी हो इसीलिए बात-बात पर झल्ला उठते हो। *जरा बड़े-बड़े नेताओं के साथ घूमो-फिरो, उनसे नाता-रिश्ता बैठाओ,* फिर बात करने का ढंग सीखोगे।"

जग्गू इन लोगों की बातचीत सुनकर भी कुछ नहीं सुन रहा था। उसका ध्यान कहीं और था। देर तक राघव व्यर्थ ही बिसेसरसिंह और मुनिदेव से उलझता रहा। अन्त में मुनिदेव राघव को अपनी दुकान से निकाल बाहर करने में सफल हुआ। बिसेसरसिंह की जान में जान आयी लेकिन ऊपर से स्थितप्रज्ञ बनने का स्वाँग करते हुए बोले—

"पागल है।" फिर जग्गू की ओर रुख करके बोले—

"कुछ सामान खरीदने आया था सो इस झमेले में भूल ही गया। तुम तो अभी यहाँ बैठोगे?"

"हाँ।"

"तो बस मैं आता हूँ। फिर साथ चलेंगे।"

बिसेसरसिंह के चले जाने पर जग्गू ने मुनिदेव को उस दिन की सारी बातें बता दीं और यह भी बता दिया कि अब वह गाँव छोड़कर जल्दी ही

चला जायेगा। मुनिदेव ने बहुत समझाया-बुझाया लेकिन जग्गू अटल बना रहा। निदान, मुनिदेव ने पूछा—

"कहाँ जाने का इरादा किया है ?"

"पता नहीं।"

"शारदा का क्या करोगे ?"

"उसे उसके घर पहुँचा दूंगा।"

"और खाओगे क्या ?"

"यहाँ की सारी ज़मीन जायदाद बेच दूंगा और उसी पूँजी से कहीं छोटी-सी दुकान खोल लूँगा। कुछ न हुआ तो दरबान की नौकरी तो मिल ही जायेगी।"

तभी बिसेसरसिंह आ गये। जग्गू ने न जाने क्यों, किंचित् सहमते हुए कहा—

"बिसेसर बाबू, आप मेरा एक उपकार करेंगे ?"

"आज्ञा करो।" बिसेसरसिंह ने तपाक से कहा। जग्गू क्षण-भर कुछ सोचता रहा। फिर बोला—

"मैं अपना घर और ज़मीन बेचना चाहता हूँ।"

"क्यों, क्यों ? क्या बात हुई ?"

"यों ही। सोचता हूँ," तभी मुनिदेव ने आँखों से संकेत किया। जग्गू तथ्य छिपाता हुआ बोला—

"सोचता हूँ पता नहीं कब क्या हो जाये। मेरे पीछे उसे भोगनेवाला तो कोई है नहीं। इसलिए क्यों न अभी से छुट्टी पा लूँ। रुपया हाथ आयेगा तो ज़रा तीर्थों का भी चक्कर लगा आऊँगा।".

"ठीक है, जब कहोगे तभी हो जायेगा।" बिसेसरसिंह ने तपाक से कहा लेकिन उनकी मुद्रा से प्रकट हो रहा था कि वह किसी विचार में पड़ गये हैं।

रात हो आयी। बाज़ार में लालटेन, पेट्रोमेक्स और दिये जल उठे। थोड़ी चहलपहल बढ़ गयी। आस-पास के गाँव के कुछ छोटे रईस पान-पत्ती के लिए या यों ही चकल्लस के लिए बाज़ार में इधर-उधर नज़र आने लगे।

बिसेसरसिंह जा चुके थे। मुनिदेव ने मुस्कराते हुए पूछा—

"आज हो जायें ताड़ी की एकाध गोली।"

जग्गू का हृदय रो रहा था। वह राहत ढूँढ रहा था। द्वन्द्व से उसका मस्तिष्क फटा जा रहा था। व्यक्षोभ में मनुष्य प्रायः भोगवादी बन जाता है; क्योंकि व्यक्षोभ मानसिक शक्ति की अंतिम प्रक्रिया है या यों कहिए कि बुद्धि की विफलता का स्पष्ट संकेत है। ऐसी दशा में बड़े-बड़े सम्बुद्ध भी ढीले पड़ जाते हैं। जग्गू सम्भावित संघर्ष के निमित्त अपने को सशक्त बनाना चाहता था लेकिन उसका मन, उसकी बुद्धि और उसका संस्कार उसे हिला रहा था। मुनिदेव का प्रस्ताव अनुचित होते हुए भी जग्गू को स्वीकार कर लेने की इच्छा हुई और उसने 'हाँ' भी कर दी।

दस बजे की गाड़ी का सिगनल डाउन हो चुका था। मुनिदेव और जग्गू प्लेटफार्म पर चक्कर काट रहे थे। जग्गू ताड़ी के नशे में झूमता हुआ चल रहा था। उसे मौसम अच्छा लग रहा था। कुछ देर तक तो वह मुनिदेव के सामने रोया भी लेकिन फिर उसमें उत्साह और उमंग व्याप गया; और एक नयी स्फूर्ति और नयी उमंग लेकर वह मुनिदेव के साथ खुलकर बातें करता हुआ घूमता रहा। उस दिन उसके सामने से एक नया पर्दा उठ गया, एक नया दृश्य पनपता दीख पड़ा। गाड़ी स्टेशन पर आकर लगी ही थी कि मुनिदेव ने कहा—

"वह देखो मुनेसरा फस्ट-क्लास डिब्बे से एक बक्सा लेकर उतर रहा है। साला चारों ओर उचक-उचककर देख कैसे रहा है? निश्चय ही वह किसी पसिंजर का बक्सा मारकर भागना चाहता है।" मुनिदेव की बात पूरी ही हुई थी कि गाड़ी पूर्णतया रुक गयी और मुनेश्वर बड़े इतमीनान से चमड़े का बक्सा हाथ में लटकाए स्टेशन के दरवाजे से न होकर, उस ओर बढ़ा जिस ओर देसौरा गाँव की गुमटी पड़ती थी। जग्गू ने लपककर बक्सा-सहित उसकी कलाई पकड़ ली। ठीक उसी समय फस्ट क्लास डिब्बे से एक नेतानुमा बाबू चिल्लाता हुआ निकला और जग्गू की तरफ दौड़ा। जग्गू ने उस बाबू की ओर देखा ही था कि मुनेश्वर राघव से अपनी कलाई छुड़ाकर

भाग खड़ा हुआ। बक्सा जग्गू के हाथ में रह गया। जग्गू और मुनिदेव मुनेश्वर को पकड़ने के लिए दौड़े तब तक वह नेतानुमा बाबू 'चोर-चोर' चिल्लाता हुआ वहाँ आ पहुँचा। लोगों ने जग्गू को ही चोर समझकर पकड़ लिया। मुनेश्वर तब तक प्लेटफार्म के परे अंधकार में विलीन होचुका था जग्गू ने लाख समझाने की कोशिश की लेकिन शोरगुल के बीच उसकी सफाई उसी के विरुद्ध सबूत बन गयी।

गाड़ी स्टेशन पर रोक दी गयी। जग्गू को पकड़नेवालों की गवाही ली गयी, स्टेशन मास्टर की गवाही ली गयी, फर्स्ट-क्लास के बाबू का बयान लिया गया और गाड़ी के साथ चलनेवाली रेलवे पुलिस ने जग्गू के हाथ में हथकड़ी डालकर अपने साथ ही गाड़ी में बैठा लिया। जग्गू लाख सफाई देता रह गया कि उसने चोरी नहीं की है। लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। अचानक ही यह सारी घटना घट गयी। क्या से क्या हो गया!

दस बजे की गाड़ी स्टेशन से चल पड़ी---खटखटाती-छकछकाती। जग्गू खामोश होकर बैठा रहा और खिड़की से बाहर, अंधकार में, देखता रहा---गहरा काला धब्बा, नीला, कहीं-कहीं दूर पर हलकी रोशनी, छोटा क्षणिक धब्बा---तेजी से गुजरता रहा और जग्गू उन्हें एकटक देखता रहा। बीच-बीच में इंजिन चीख पड़ता---भयावने ढंग से---लेकिन जग्गू अंधकार में देखना बन्द नहीं करता। थोड़ी-थोड़ी देर पर हड़ाक् से कोई गुमटी, अंधकार के ठोस टुकड़े की तरह, नजर से निकल भागती। जग्गू फिर भी अन्धकार में देखता रह जाता।

जग्गू को छः महीने की सख्त सजा हो गयी। मुजफ्फरपुर जेल, शहर के बाहर स्थित थी। जग्गू उसी जेल में बन्द कर दिया गया। उसकी चेतना जाती रही। जो कुछ करने को उससे कहा जाता, चुपचाप उस काम में वह जुट जाता। एक भयंकर डाकू सभी कैदियों का 'मेट' था। उसी के जिम्मे निरीक्षण का कार्य सुपुर्द था। सभी कैदी उससे भय खाते, उसकी खुशामद करते और उसकी सेवा में जुटे रहते। जग्गू भी उसके अधीन था। लेकिन जग्गू ने कभी महसूस भी नहीं किया कि वह 'मेट' भयंकर है, बदमाश है या डाकू है। वह चुपचाप अपने काम में जुटा रहता। जग्गू थोड़ा पढ़ा-लिखा था इसलिए सभी कैदी उसकी इज्जत करते; उसे मौनी बाबू कहकर पुकारते। जग्गू इस तथ्य से भी अनभिज्ञ-सा रहता। वह कभी-कभी अखबारों में पढ़ लेता कि देश में क्या कुछ हो रहा है—गाँवों के सुधार के लिए स्कूल खोले जा रहे हैं, स्कूलों को बुनियादी स्कूल में बदला जा रहा है, बाँध बनाया जा रहा है, नदियाँ बाँधी जा रही हैं, सड़कें पक्की की जा रही हैं, गाँवों में बिजली उपलब्ध की जा रही है······और तब जग्गू के मस्तिष्क में, उसकी पुरानी छोटी-सी गुमटी उभर आती···वैसी ही नीरस, उदास, जड़ और एकाकी ! जग्गू स्पष्ट देखता कि गुमटी ज्यों-की-त्यों है, रेल की पटरी वैसी ही बनी है और उस गुमटी के आस-पास के तमाम लोग भी तन-मन से वैसे ही हैं जैसे पहले थे······

और जब अनुराधा या शारदा की याद आती तब उसका सिर चक्कर खाने लगता; उन लोगों की स्थिति की कल्पना करते ही जग्गू की आँखों के आगे अँधेरा छा जाता। एक-से-एक भयंकर, बीभत्स और हृदय-विदारक दृश्य अनचाहे ही उभरकर सामने स्पष्ट हो उठते और फिर अंधकार

तिरोहित हो जाते।

साढ़े पाँच महीने बाद ही जग्गू जेल से रिहा कर दिया गया। जेल के बाहर निकलते ही जग्गू को ऐसा लगा जैसे अब वह सचमुच ही निहंग हो गया। फिर भी, जाने क्यों, वह सीधा स्टेशन आया और वहाँ से अपने गाँव का टिकट कटाकर गाड़ी में बैठ गया। भयावह तस्वीरों और विचारों से जूझने में ही उसका रास्ता कट गया।

संयोग ऐसा कि मुनिदेव प्लेटफार्म पर ही खड़ा था। नजर उस पर जा पड़ी। दोनों का मिलन भी अजीब ढंग से हुआ। मुनिदेव दुःख, ग्लानि और हर्ष के अतिरेक से घुटा जा रहा था तो जग्गू आशंकाओं और जिज्ञासा के ऊफ़ान से बेचैन हो रहा था। दोनों ने एक-दूसरे से कोई विशेष बात नहीं की। स्टेशन के बाहर आकर जग्गू ने देखा कि बाज़ार में दो-तीन हैण्ड-पाइप लग गये थे, सड़क पक्की बन गयी थी और सड़क के एक ओर बिजली के खम्भे गाड़े जा रहे थे। मुनिदेव ने जान-बूझकर विहँसते हुए कहा—

"इधर इस इलाके में काफी काम हुआ है। अब तो यहाँ बिजली भी आ जायेगी। कुछ गाँवों का तो नक्शा ही बदल गया है।" जग्गू ने वेदना-मिश्रित मुस्कान से मुनिदेव को देखा जैसे पूछना चाह रहा हो कि तन का हालचाल रहने दो, मन का हालचाल क्या है? लेकिन जग्गू कुछ बोला नहीं। बाज़ार में कई जान-पहचानवाले मिले। जग्गू सबों से विहँसकर मिला। सबों को वह वेदनायुक्त प्रश्नवाचक दृष्टि से देखता—बोलता या पूछता कुछ नहीं।

आखिर मुनिदेव ने ही बात छेड़ दी।

"अच्छा किया जो ज़मीन-जायदाद नहीं बेची। अब तुम खेती-गृहस्थी में जुट जाओ।" जग्गू ने मुनिदेव की ओर कातर दृष्टि से देखा। मुनिदेव उस दृष्टि को सह नहीं सका और उसने आँखें नीची करते हुए कहा—

"जो होना था सो हो चुका।"

"क्या हो चुका?" जग्गू ने कृत्रिम गम्भीरता से पूछा। मुनिदेव किंचित् सकपकाकर बोला—

"यही नौकरी छूटने की बात कह रहा हूँ।"

"शारदा कहाँ है?"—यह प्रश्न सुनते ही मुनिदेव घबरा उठा और अपनी घबराहट छिपाने के उद्यम में वह उपेक्षा से बोला—

"शारदा? वह अपने किये का फल भोग रही है!"

"क्या मतलब?"

"भई, बात यह हुई कि·········"

"अरे जगदेव बाबू!" मुनिदेव अभी असमंजस में ही पड़ा हुआ था कि राघव आ पहुँचा—"कब आये? खबर भी नहीं दी?" राघव उल्लास-पूर्वक जग्गू के दोनों कंधों को पकड़कर झकझोरता हुआ बोला। कोई और अवसर होता तो मुनिदेव झल्ला उठता लेकिन उस समय राघव का आना मुनिदेव को देवदूत के आने जैसा लगा।

"सजा पूरी हो गयी तो चला आया।"—जग्गू ने हँसकर कहा लेकिन उसकी हँसी में वेदना सजीव हो उठी थी।

"कैसी सज़ा? ग़लत बात। मैं जानता हूँ कि चोरी किसने की। लेकिन अफसोस, मेरी किस्मत में हाथ मलने के सिवा और कुछ नहीं। दिन-दहाड़े यहाँ लूट और हत्याकांड मची हुई है लेकिन कोई देखनेवाला नहीं। तुम समझते होगे कि गुरुजी के घर में अपने-आप आग लग गयी। लेकिन वह सही नहीं है। अनुराधा को जलाकर मार डालने के लिए लोगों ने आग लगा दी और अनुराधा बेचारी उसमें तड़प-तड़पकर मर गयी। यह क्या आदमी का काम है? अरे ये गाँववाले आदमी नहीं—जानवर हैं जानवर! बल्कि जानवर से इनकी तुलना करके जानवर को अपमानित करना है। यह तो खैरियत हुई कि शारदा यहाँ से भाग निकली नहीं तो······" राघव ने अपनी बात पूरी भी नहीं की थी कि जग्गू चुपचाप उठ खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर कोई भाव नहीं था, आँखें स्थिर थीं, होंठ खुले हुए थे और अंग-प्रत्यंग अर्धशिथिल से हो रहे थे। मुनिदेव घबरा उठा। उसने दाँत पीसकर राघव की ओर देखा और फिर जग्गू की बाँह पकड़कर बोला—

"कहाँ जा रहे हो? बैठो न।"

"कहीं नहीं जा रहा हूँ। यहीं हूँ। जाऊँगा कहाँ?" स्वप्नवत स्वर में जग्गू बोला और दुकान से बाहर निकल आया।

शाम हो चुकी थी। बिजली के खंभे जमीन में निष्प्राण गड़े थे जो बड़े मनहूस से लग रहे थे।

इसके बाद बहुत दिनों तक''' न जाने किस उम्मीद में''''''

जग्गू दिन-भर, स्कूल के अहाते में बैठकर, बच्चों को देखा करता। उन्हें खेलते-कूदते, पढ़ते-लिखते देखकर जग्गू को, न जाने क्यों एक अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती। उन्हें देख-देखकर सब-कुछ भूल जाता—गुमटी, गुमटी में घटित घटनाएँ, सद्यःस्नाता शारदा के रूप, यहाँ तक कि अपना अस्तित्व भी और यदि कभी कोई बच्चा या बच्ची उसके पास चली आती तो वह महसूस करता कि जैसे भगवान ही उसके पास चले आये हों। वह विभोर होकर उन लोगों से व्यर्थ की बातें करता, उनके साथ हँसता-बोलता और बीच-बीच में उन लोगों से रूठ जाने का भी अभिनय करता। बच्चे तालियाँ बजा-बजाकर नाच उठते तो वह भी हँसने लगता''''''उसके घर में, जहाँ शारदा बैठा करती थी, वहाँ वह घंटों बैठा रह जाता, उसमें थोड़ा भी साहस नहीं था कि शारदा के बाबत कुछ सोच-विचार करे—बस वह प्रतीक्षा में डूबा रहा।

शाम होते ही वह, गुमटी के निकट, सड़क के पुल पर बैठ जाता और वहीं से घंटों गुमटी को निरुद्देश्य निहारा करता। गाड़ियाँ आतीं, चली जातीं, रोशनी के छोटे-बड़े टुकड़े बिजली की गति से उसके सामने से गुजर जाते, खट्-खटाक्, खट्-खटाक् की भयंकर लय जमीन को कँपाती हुई आती और क्षण-भर में दूर अन्धकार की असीमता में खो जाती। लेकिन छोटी-सी गुमटी ज्यों-की-त्यों गुम-सुम खड़ी रहती। अनुराधा की सरलता और संवेदनशीलता मूर्तिमान हो उठती। जग्गू उसे देखकर तादात्म्य-भाव में विभोर हो उठता। कभी-कभी तो अकारण ही, उसकी आँखों से, आँसू की धार बँध जाती। गुमटी की तस्वीर, विकृत होकर, काँपने लगती। मूर्तियाँ डोलने लगतीं—जैसे अभी बोलेंगी। जग्गू की आँखें बन्द हो जातीं, उसके

होठ काँपने लगते। आस्था और आशा की आभा से जग्गू पुलकित हो उठता।

गाँववाले उसे पागल कहते। बिसेसरसिंह के शब्दों में वह 'बेचारा' था। लेकिन जग्गू के लिए इन बातों का कोई अर्थ नहीं था। गुरुजी के घर की माटी की दीवारें रक्तिम और छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। उनमें जगह-जगह दूब उग आयी थी। रात को अंधेरे को भेदती हुई किसी की स्वर-लहरी हवा में काँप उठती—

जेहि बाटे कृष्णऽऽऽ गइले……………
दूबियो जनमी गइले, आहो–आहो कीऽऽऽऽऽ
सेही देखी जियरा मोरा फाटे रेनकी……

और तब जग्गू की आँखों से आँसुओं की धारा प्रवाहित होने लगती!